

प्रकाशक
मिन्न प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
इलाहाबाद ।

मूल्य
सात रुपये ५० नये पैसे

मुद्रक
बीरेन्द्रनाथ घोष
भापा प्रेस प्राइवेट लिमिटेड
इलाहाबाद ।

प्रकाशकीय

कश्मीर के सामक जयतीठ के प्रधान मंत्री रामोदर गुप्त इन 'बुद्धनीमन' नामक संस्कृत की श्रुतारूपक प्रबन्ध-नाम्य परम्परा का अमूल्य रत्न है। वेन ता काव्यभाष्य व काव्यमृत तथा अन्य सबों के आधार पर विरचित अनन्य श्रुतार-ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में उत्तररथ है परन्तु बुद्धनीमन की अपनी एक निराली विशेषता है जिसके कारण इस सब का इतनी लावण्यता प्राप्त हुई। ह्यार सब में अतिरिक्त अन्तर्गत के बावजूद इस सब की महत्ता में बाई कभी न आई और आज राष्ट्रीय पुनर्जागरण के दम युग में जब हम उत्तराधिकार में प्राप्त अपनी प्राचीन विधियों के पुनर्मुखावन में मगलम है। इस सब का हित में अध्ययन और मनन करने की उपायगिता स्वयन्तित है।

हमारे देश में प्रायः आदिवाल में ही एक एका बर्ग रहा है या कभी प्रतिष्ठित और कभी उदासित एक बहिष्कृत हुए हुए भी हमारे सामाजिक जीवन का अभिन्न एक अतिबाधक अंग रहा है। संस्कृत साहित्य में तो इसके अगमित प्रमाण हैं ही बौद्ध और जैन साहित्य में भी इनके प्रमाणा और उदाहरणा की कमी नहीं है। इस बर्ग विषय की गिनति उपायगिता अतिबाधका आदि के सम्बन्ध में हमारे आचार्यों के बार बार विचार विद्या है और उनमें मन का भी व्यञ्जन विद्या है। बौद्ध और जैन साहित्य में अथवा अन्त्याय बौद्ध्य में अथवा साध्य परन्तु प्रादेव युग में अतिबाधक मन में उमरी गिनति रही है और उमने हमारे सामान्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का प्रभावित विद्या है इसमें कोई संदेह नहीं।

यह बात भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि प्रायः अतिबाधक मन में हमारे देश में प्रदेव युग के सांस्कृतिक साधनीति और धार्मिक बन्ध बौद्धिक जीवन के भी महत्त्वपूर्ण बन्ध रहे हैं। बौद्धों की साधनीति अथवा हिन्दुओं की साधनी अथवा धर्म की कृता में आदि बाल में ही महाबहिष्कारकी नीतिगणनी व रूप में प्रतिष्ठित नहीं है परन्तु बड़ी बारी आदि बाल में ही बौद्धिक जीवन का बन्ध भी बनी गयी है। आज भी साधनी की यह दाता परम्परा गयी की त्या कायम है।

कवि रामोदर गुप्त के कर्ता के इन बौद्धिक जीवन का विचार तथा कभीर अध्ययन एक विचारमय विद्या था। प्रस्तुत ग्रन्थ का आधार कारागरी का ही बौद्धिक रत्न है। आरम्भ में ही कवि ने अथवा धर्म की प्राचीनता बन्धे हुए कहा है—

न अयं सिद्धं संकल्पयते रतिबुद्धयन्तश्चुम्बकस्य च ।

यथावदुत्पन्नमनसापयनात्तद्विभोर्विषयं बर्तते ॥

[जिसका निवृत्त-वृत्त अनुगत की उत्पन्ना के तथा के अन्तर्गत का निरीक्षण है अन्तरी आनी रति व सुलभनी बन्धन की बुद्ध के बाला और नवयुवक मन में उत्पन्न वर (अन्तर्गत) कायदेव विद्यते है]।

कवि ने ही कर्ता के बन्ध कारागरी की उत्पन्न कारना कवि ने आरम्भ बौद्ध के लक्ष्य विद्या। इतने बाद कवि का आरम्भ बन्ध है व कवि ने अन्तर्गत वि—

नवयुवक कारका आनन्दकले इतीतिथी उत्पत्ति ।

विशेषकेन्द्रेणैर्बहिर्मुखं आन्तरी भाव ॥

(उस बाराबसी में मनसिख की घरीरवारिबी शक्ति-रूप में समस्त बेरवाओ में भूपन ही माळती नाम की एक बारांगना निवास करती थी) ।

माळती सर्वगुणसम्भवा भी परन्तु उसको इस बात का सोम था कि वह समुचित रूप से पर्याप्त सख्या में कामुक तन्त्रा को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाती । माळती ने सोचा कि क्यों न वह इस विषय का सम्पूर्ण ज्ञान रखने वाली बूढ़ा कुटुम्बी विकराळा से बाहर अपनी शक्तियों का समाधान करे और प्रेमियों को आकृष्ट करने का उपाय पूछे । माळती विकराळा के घर गई और उसके सामने अपनी समस्या रखी । उत्तर में विकराळा ने वैशिक जीवन की सफल बनाने के उपायों से माळती को अवगत कराया । कवि रामोदर गुप्त ने विकराळा के मुह से उदाहरणों और प्रमाणा से पुष्ट जो उपदेश दिखवाये वही इस ग्रन्थ का बर्णन विषय है । इसमें कोई संदेह नहीं कि विकराळा ने माळती को वैशिक जीवन को सफल बनाने के लिए जो उपाय बताये वे मनोविज्ञान एवं घरीर विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त पुष्ट और स्पष्ट थे । कवि रामोदर गुप्त ने तद्बिषयक प्रश्नों एवं श्रुति-वाक्यों का बर्णन अनुशीलन किया था । इसीलिए विकराळा इतनी कुसलतापूर्वक स्त्री पुरुष के यौन-सम्बन्धों और वैशिक जीवन से सम्बद्ध बारीक से बारीक प्रश्नों का उत्तर दे सकी । इस ग्रन्थ काव्य में काव्य का विषय यद्यपि वैशिक जीवन ही है तथापि प्रसंगगत सर्गीत मुरम एवं नाट्य कला पर भी सम्मक प्रकाश पड़ा है । काव्य की दृष्टि से तो रामोदर गुप्त की यह रचना अत्यन्त उत्कृष्ट है ही । तत्कालीन सामाजिक जीवन पर भी इससे प्रखर प्रकाश पड़ता है और हमारी जानकारी इस सम्बन्ध में बढ़ती है । विकराळा जब अपना उपदेश समाप्त कर लेती है तो कवि का सर्वमनसाकाशी हृदय परावक चौक उठता है । उस लज्जा है कि अब तक के रसरत्नपूर्व बर्णन से वही पाठनमग्न पवप्रष्ट न हो जायें और वे वैशिक जीवन के मोहक पास में आबद्ध होने के लिए लाभाहित न हो उठें । रामोदर गुप्त को यही अपने कवि बर्णन की याद आती है और अन्तिम श्लोक में वह कह उठते हैं—

काव्यनिर्भं यं श्रुते सम्मकाम्यार्थपाठनेतस्ती ।

नो बन्धयते कदाचिद्विद्वेष्याकूर्णकुटुम्बीनिरिति ॥

[इस काव्य को जो व्यक्ति काव्यार्थ का सम्मक प्रकार से पाठन करते हुये (रक्षण करते हुये) धवन करता है वह कभी भी विट वेद्या बृष्ट एवं कुटुम्बी से पोषा नहीं लाता] ।

यह कुटुम्बीमग्न काव्यम् काव्य की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है । साथ ही तत्कालीन सामाजिक जीवन के अध्ययन की कुंजी भी है । इसमें बचानों उपबन्धनों एवं अन्तर्बन्धनों का सहारा लेकर कवि ने शास्त्रीय दृष्टि से इस समस्या पर विचार किया है और विकराळा के मुन से विज्ञान सम्मत् उपदेश दिखवाये हैं । ग्रन्थ की उपयोगिता स्वयंदिष्ट है इसकी लोकप्रियता निर्विवाद है ।

मूल के नाथ भाषानुवाद एवं आबस्मक टीका टिप्पणियों के कारण हिन्दी पाठकों के लिए भी यह ग्रन्थ बोधगम्य हो गया है । आया है किन्न समाज में प्रस्तुत एवं समादृत होना ।

भूमिका

उपक्रम

कुट्टी घर का विविध प्रकार विनया गुराना है यह बचपना बड़ा बलि
है किन्तु मापन रूप में इस कुट्टि का उपयोग मानव इतिहास में मुझ हुआ है।
यह गुराना गुराना अथवा है विनया गुराना यौव-जन्मपी वैदिक क्रम्य है जब कि
उत्कृष्ट वासाधार पर किसी प्रकार का बचन अथवा निरवग हीनार कर लिया
गया। वैदिक मूल्य सामाजिक जीवन के परिधान है। प्रत्येक जाति और युव
का समाज किसी न किसी प्रकार के वैदिक क्रम्य का स्वीकार कर मन के बाद
आने का मुकुट एवं गुणधन समाने लगा है। बरन्तु आत्मसाधक तरह उगरे
भीतर में आने काय उत्पन्न हो जाते हैं। अन्तर्गत मनुष्य की प्रवृत्ति
दुर्लभात् तथा परिस्थिति अन्य प्रवृत्तान् स्वर्तिका प्राचीन का प्रकाश करने के
लिए समर्थ हो जाती है। कुट्टी कम उमर का एक प्रकार उदाहरण है विनया
मानव वासाधार अथवा वेदानुति में है।

समाप

कुट्टी अथवा कुट्टी घर के स्मृतिस्मृत्य अर्थ सम्य
'कुट्टयि मातायि स्त्रीणां कुलम् इति कुट्टी
अथवा 'कुट्ट स्त्रीणां कुलनाम वर्तमानाय अति आया

है। छिद्र 'कूट' शब्द का एक अर्थ है कँठब। कुट्टनी-कर्म भी इसी कोटि का है। इसके द्वारा नायक-नायिका का सौम्य सुमन हो जाता है। इसके पर्यायवाची शब्द हैं खंभसी माधवी अर्जुनी कुमवासी बभेवना और रबमाता।

सन्दर्भ

'कृषा सत्सामर' के द्वितीय अम्बक में बृहसेन और देवस्मिता की कृषा आती है जिसमें परिश्रमिका योग-नरदिका की सिध्दा सिद्धिकरी का प्रयोग आया है। इस सिध्दा के द्वारा कुट्टनी जैसे हैं, किन्तु यहाँ पर कुट्टनी शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। खेमेन्द्र के 'नसाविज्ञान' और 'समय मातृका' में यह शब्द आया है। बरहूत के 'भुवोपदेश' में भी इसका प्रयोग मिलता है। विष्णु शर्मा कृत 'द्विहोपदेश' के मित्रलाभ प्रकरण के अन्तर्गत इस शब्द का प्रयोग वेदान्त में आता है। लोकोक्ति में भी कुट्टनी का प्रयोग हुआ है।

वैश्यावृत्ति

कामाचार और वैश्यावृत्ति में सम्बन्ध है। कामाचार में रति सुख प्रधान है, जब कि वैश्यावृत्ति में अर्थोपार्जन प्रमुख है। 'कामसूत्र' में कहा गया है कि पुत्रयो की प्राप्ति होने पर वैश्याओं में रति और जीविना नैसर्गिक छ ही है।

वैश्या का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ

'विप्रमर्हति वैशेन वीभ्यति आचरति वैशेन पच्ययोगेन जीवति वा' है। इस शब्द के पर्याय हैं रण्डी बार-रुबी गणिका धुआ धुआ सज्जिका बन्दुरा कुम्भा बर्बटी भोग्या मुनिष्या बार-बडू मगरबडू पतुरिया

- १ निधुक्-तापस बहुविधपुष्पकला द्वीपदसंतकला च ।
जिज्ञा कलातिबध्द्या पर्यन्ते कुट्टनीकला वैश्या ॥ ४ ॥ ११
- २ व्याधीव कुट्टनी यत्र रक्तपातामिर्विधी ।
भास्ते तत्र प्रगभवन्ते बन्धुका इव कामुका ॥ १ ॥ ४१
प्रविष्या कुट्टनीहीनपूर्ह लीनपटा विदा ।
मावा कठन्ति पावन्ति व्यपत्रविभक्तविताः ॥ १ ॥ ४४
द्वारापदतकर्त्तानु प्रहृषयहनेप्ताया ।
कुट्टनीपु तुलापास्तेऽप्युमुजीपु मुहुर्नुह ॥ १ ॥ ११
- ३ कुट्टयाः पुनस्तत्रदोल्बदभिर्ष तत्रास्तप्यास्तपन्नतं
मत्प्रासादुतिरेकेव सकले रत्नाकरं कामिनि ॥ ३३
- ४ कतानुपत्तिको लौक कुट्टनीमुपदेशिणीम् ।
प्रनाभवति नो धर्मं यथा योग्यतपि द्विजम् ॥ ५७
- ५ कुट्टिग्यरत्नपुरकथा नवभररोगाः (बतुर्मापी पृ २५८)
- ६ वैश्यानां प्रव्याभिन्ने रतिन् तिरच सर्गत् ॥ ६११

पश्चात्तदा स्पर्शात्वात् वासुदेवस्य स्मरणीयत्वात् एतन्मयी मर्मरत्वात् वासुदेवस्य
 चारु विस्मयिणी चौर भवद्दृष्टिनिमी आदि । मापारकत पर-मुद्रय-गामिनी भारी
 को बेरया कउन की परपरा है । बह्य बर्तन पुराय' में भारी के भर का इस
 प्रकार स्पष्ट किया गया है —

पतिप्रतापेवयन्ती द्वितीये कुस्तटा स्मृता ।
 तृतीये बयिणी जेया षण्णये नुबचतीस्मृता ॥
 बेरया च पंचमे बळे युष्मी च सप्तमेऽप्यमे ।
 अथ उद्भवमहाबेदयाताम्पुत्रयात्तवजातिपु ॥ प्र ए ३१ अ०

व्यपत्ति

वेदाङ्ग के मन्त्रों में महाभारत के आदिपर्व की दीर्घतमा बानी परपरा
 पत्र कया वा स्मरण हुआ जाता है । इस कया में बेरयावृत्ति की उररति का विवरण
 दिया गया है । दीर्घतमा एक मय अर्पि वे । मर्मरत्वात् म ही उन्हें नाम दिया
 मिला था । उनही माना वा अपने देवर में अनुचित मर्मरत्वात् या क्रिमका प्रभाव
 दीर्घतमा के मन्त्रों पर पडा । अब के बड हुए ता उनका विवाह रूपवती प्रद्वी
 में हुआ । बरत्र अर्पि म मोगमय (वामपनु पुत्र) ने पनुबन् वामाचार्य करन
 की निष्ठा प्राप्त की और उसे व्यावहारिक रूप देने लग । इस आचरण स ब्रह्म
 हाकर अग्राय्य अर्पि-मुनिपा ने उन पर वैजिब नियम भग करन का आगे
 कयाया । इन्होंने यद् भी निश्चय कि दण्डवत्कय उन्हें आधम में बाहर किया
 जाय । प्रद्वी भी जान पति के प्रतिबन्ध हुआ गई थी । उमन कहा कि पति का
 पसं है पत्नी का आवाग और भावन देना तुम इसे पूरा करन में अयमर्ष है ।
 मैं तुम जैसे अमाप का पालन नहीं कर सकती । तुमका अब मैं अपने पाग नहीं
 रखूगी । इस उक्ति में शुण्य हाकर दीर्घतमा ने पारित किया कि "आज से मैं
 ममार क निष्ठा यह नियम बनाता हूँ कि जो पत्नी आचरण बेवक एक पति की
 हाकर रहती है चाहे पति मर ही क्या म जाय वह सभी पर-मुद्रय का मुंह न
 बनेगी । किन्तु कुमारी हो अथवा विवाहिता पर-मुद्रय क पाम जानेवागी
 अरग्यिनी होकर जातिपुत्र हुआ । ऐसी स्त्री यदि पर-मुद्रय क निष्ठा जाय
 ना उस पुत्र को जातिपुत्र कि बट विरय जाय वा मूय्य बचाये ।" यह लेबर
 उमन करान की प्रया वा आरभ उगी दिन में हुआ गया ।

मन्त्रार्थ

अधर में उरमा द्वारा वाम पीटा का उच्छ्रय आया है किन्तु बेरयावृत्ति
 क अतिव्यक्त वा मरुत मिकता है । किन्तु यह कतना बर्तित है कि उम वामाचार्य
 में मर्गोत्तरित का उद्देश्य विग माना म निर्मित था । हमारे अग्राय्य वाच्य भी
 ही मरने है । इस मन्त्र में व वाम प्रया वा भी नाम दिया जा मरना है । उरमा

१ Johann Meyer : Sexual Life in Ancient India P 125-6

२ यत्र युष्मा अयातो यस्या साचार्य्येव बरुतो विहितः ॥ ११६७ ॥ ४

ईश में बार पति^१ तथा अवीच सन्तान^२ की भी वर्णा है। स्मृति क्या मे कामाचार और बेव्यावृत्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं^३ जिनके लिए प्रायश्चित्त करने का विधान प्रस्तुत किया गया है। समाज की स्थिति इतनी बिगड़ी हुई थी कि कुछ सोच अपनी पत्नी तक का उपयोग ब्रह्मा रूप में किया करते थे। आतिथ्य सत्कार के लिए विविध कसबा में निपुण नारियो का उपयोग किया जाता था।^४ यह प्रथा अग्याम्य वैशा में भी प्रचलित थी।^५ महाभारत के आदि पर्व में बाल्वाही के गर्मबत्ती होने पर घृतराष्ट्र के लिए वेदवा की व्यवस्था होने का उल्लेख है।^६ उद्योग पर्व में युधिष्ठिर द्वारा कौरवा की वेदवाओं को पुनःकामना भेजने की वर्णा है।^७ उद्योग पर्व में कौरवा के दरबार में भीष्म के आगमन के अवसर पर वेदवाओं द्वारा स्वागत किये जाने का वर्णन है।^८ उद्योग पर्व में ही यह भी कहा गया है कि युद्ध-यात्रा के समय पाण्डवों की सेना क साध वेदवाओं भी गई थी।^९ इस सम्बन्ध में वनपर्व और वनर्ष पर्व भी द्रष्टव्य हैं। वेदवागमन के लिए अग्न्य 'प्राजापत्य' प्रायश्चित्त का नियम है। नारद स्मृति में कहा गया है कि यदि युद्ध स्वीकार करने के बाद वेदवा भोग-कर्म करने स इनकार कर दे तो उसे बण्ड का भागी बनना पड़।^{१०} मातृबल्य स्मृति तथा मत्स्य पुराण^{११} द्वारा भी इसका समर्थन होता है। मत्स्यपुराण के ७ वें अध्याय में वेदवा धर्म का उल्लेख है। अग्याम्य कई पुराणों में प्रकारान्तर स वेदवाओं की वर्णा पायी जाती है। स्कन्द पुराण पद्म पुराण वामन पुराण ब्रह्म पुराण और भविष्य पुराण इनमें प्रमुख हैं।

१ ऋग्वेद १। ६६। ४; १। ११७। १८; १। ११४। ३

२ बही २। २९। १

३ बोधायन (२) २४—३ मनु ८—३६२ ४—२ ९ ४—२१९;
९—२५९ पात १—८१ २—४८ २—२९०—९२।
नारद १२—७८ स्त्रीपुत्र ७८—७९। भीतन २२—२७

४ महाभारत २। ६१। ८

५ Molennan Primitive Marriage, P 96

६ पाण्डवा की विलम्बमानापासवरेण विवर्षता।

घृतराष्ट्र महाराज वेदवा वर्षवर्तित्क ॥ ११५। ३९

७ उद्योग पर्व ३। ३८

८ बही ८६। १५

९ बही १५१। ५८

१ युद्धं युहीत्वा पथ्यत्री वैजयन्ती द्विस्तदापुमान्।

मप्रयच्छस्तदा युत्वाचनुभुयुमान् त्रियम् ॥ वैतनवातवाचमं—१८

११ मत्स्य पुराण २२७। १४४—४५

काजगन्धी महिला' में ब्रह्मावृत्ति की पद्य के रूप में स्वीकार किया गया है। विष्णु स्मृति संज्ञा में इस विस्मयकार के योग्य ठहराया गया है। फिर भी जातका में इस हम उदाहरणीय स्थितियाँ नहीं पाते। विनी-विनी ब्रह्मावृत्त में ठा पाँच की एक विधिवाले करने की बर्षा है^१। वहीं-वही ता इनके प्रति स्मृताधिक सम्मान भी प्रदर्शित किया गया मिलता है। 'अनुत्तर विवाह' में मत्त बापिगञ्जा का उल्लेख है। बहूपोष की व्याख्या के अनुसार इसका अर्थिप्राय 'मनुस्म विवाह' में है विमल दास-वामिना के साथ अन्य नर-नागिणी सम्मिलित समझी जा सकती है। बहुराज्य में रूपवर्ती ब्रह्मावृत्त का गणित करने की प्रथा प्रचलित थी। काजगंध में इसकी परंपरा बहुत पुरानी है। अपिवाही विद्याता के अनुसार इस कृति का सूत्रपाल गमात्रा राजपुत्रा तथा धृष्टिया जैसे लोग म समझा जाना चाहिए विमल माया म विस्मृत हाकर म उक्त कृति का अर्थाने के लिए बाध्य थी^२।

यदिता का एक तात्पर्य मन्त्राव्या की उक्त मुद्ररिया म भी हा मन्त्रा है विमल अर्थ मन्त्रय अपिवाकर राज-पुत्रा तथा पत्त बुधरा म हुआ करता था। इस मन्त्र में बामुदेर हिंडी का 'मपदानयमि बाधक' तथा बाग्म्यायन का बामगुन^३ उल्लेख है। मूल गार्हस्पिवाद का 'विमल वस्तु भी उल्लेखनीय है जहाँ आप्तगार्ही का पगाही की गणमाय्य कहा गया है। नायायम्म कहा म ब्रह्मा की गणित की बर्षा है या बीजक ब्रह्मावृत्त म निष्पात है और गृहार बना म का है। बह बहृभागावित् है और उस कई बाधिया का सम्मान है। यजिया का बर्धिरण म बँठकर उत्रपागिणी और बामग्यागिणी बनन का भी योग्य प्राप्त था या राजकीय सम्मान का प्रतीक था। बह बँठित रिद्या में भी निजुन हुआ जाती थी^४। इसका प्रथम मूल गार्हस्पिवाद के 'विमल वस्तु' तथा दु नीमल म भी आया है।

ब्रह्मा परिवर्तमान में ऐसी ब्रह्मावृत्त का भी परिषय मिलता है या अरुनी पगम का तावत जाती है। 'बहृभागा' ब्रह्मा गते स्वीकार की है। ब्रह्म विवाह म उक्त आप्तगार्ही का भाव उल्लेख कर दिया है। पार्थिविजुन की बाला

१ Law Woman in Buddhist Literature P. 221

२ अमल विवाह १ पृ ३८

३ Law The Life and work of Buddhagosa

४ Barua Introduction to History of Indian Prostitution by Saha and Barua

५ पृ ११ (५) पृ ८१ २ (३) पृ १०१

६ पृ ८१ पृ १३

७ अ वि विवाह पृ १५५ और भाग का भागपालय अन्वय २३

और उपकोता ऐसी ही हो यथिकाएँ भी जिनमें से पहली का प्रेमभाव स्वसमर्थ के प्रति था और दूसरी का बदबि के साथ। उज्जयिनी की देवदत्ता भी ऐसी ही एक यथिका थी जिसका अनुराग पाटलिपुत्र के मुबराज मूलदेव के प्रति था। उसने राजा के पाठ जाकर बहु प्रार्थना की थी कि वे मूलदेव के अतिरिक्त अन्य किसी से सम्बन्ध स्थापित करने की उसे बाध्य न करें। 'मृच्छकटिक' की बसंत-सेना और 'कथा हरिश्चन्द्र' की प्रतिष्ठात निवासिनी महनमाला भी अपने वैभवपूर्ण जीवन के लिए प्रसिद्ध हैं। इस प्रसंग में विष्णुमती की कथा भी उल्लेखनीय है जिसने अपनी सरवप्रियता से राजा की बाप ही पसन्द की थी।

प्रेरणा और प्रभाव

कामाचार के साथ अर्थापारम्भ का लगाव हमारे समाज की उक्त स्थिति की ओर संकेत करता है जब कि व्यापार अस्तित्व में आ चुका था। आदान-प्रदान का माध्यम इन्ध बन चुका था। इसलिये अस्तमव नहीं यदि पूर्वजों में विदेशी व्यापार-केन्द्रों में जाकर वैश्यागमन सीखा हो। पाषा सप्तमती^१ से भी हमें वैश्या बनने का पता चलता है। कौटिल्य अर्थशास्त्र^२ में यथिकाश्वश का विधान है। काम मूर्खों^३ य तो इनकी अर्था है ही नीति शास्त्र^४ भी इनके विषय में सुनर है। बालास्तर में इनका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया कि बाल्य और कला में भी इन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया। यथिका वृत्त सचह^५ इष्टम्भ है। बौद्ध और जैन साहित्य भी इससे अछूने न बने। जब ये समाज में विन्ध्य नहीं समझी जाती थी। 'ममसामुली' इनकी एक सजा बन गई। यहाँ तक कि बार्मिक देव में भी इन्हें सम्मान प्राप्त होने लगा। देवदासी प्रथा इन्हीं की उपज है।

वासी

शब्द 'वासी' शब्द का प्रयोग भी विचारनीय है। इसका सामान्य अर्थ

१ अथर्वसु नुरजगृहस्तुष्टुवहुराई सजतसोअरत ।
 अतुई अथर्वसुविधिभिज्जिआई वैताई वैश्याई ॥२॥१५६॥
 के उज्जयिनी के इह न लज्जिआई के न लतपुवविहवा ।
 अहुराई वैतिमिजो यजवादेहा जब अहन्ति ॥१५॥१०४॥

२ अध्याय २७

३ अथर्वसुविधि अह्नी अथर्वसुविधिभिज्जिआई तस्यो वैश्यायामिव
 यजववृत्तवर्जिन्यावपि न अर्थवीही हरिष्यति वृत्तमूर्तिवम् ॥

—वातपायन वातसूत्रम् १५॥१६

४ राजा वैश्या यजववृत्तवर्जिन्यावपि मावकी ।

वर दुर्ब न अर्थमिति अष्टबोपाय वंदव ॥

—वाचस्पय नीति १८॥१९

शाका-श्या के अर्थ में हाता है। 'मिदिनी कौग' म 'दामी बाकाभुत्रिप्ययोः
 क्त गया है। बरमीर तरेम जवापीड के प्रधान मत्री शमागर की रचना
 'कुटनीमत म 'दामी कामुकी लवबम्भमा" मूचिन बिया गया है। एम
 पप म दामी बिपदक लबाप मय प्रयाग भी मिलत है जा इसी अर्थ की पुष्टि
 करते हैं। वैशम्पती के अनुसार 'बेनी बिष्मिणी दामी क बठलाया गया है।
 बपाररम पाणिनी का शक्या कामुब' द्वारा बडाबिज् इमी आर मकेत है।
 मुबग्यु इत 'वामबदना' में 'कामुक जमानुबम्भमान दामी का भी अभिप्राय
 कुछ ऐसा ही प्रतीत हाता है। शमागर प्रतीत 'बपूत मजरी' म बिदूषक छोले
 का "आ दामीण पुत भुत्पस्तत्रागामि' कह कर अपना रोप प्रकट करता है।
 'मूषण्टिक' का शकार भी समत सेना के मन्त्रम म "वालीए भीए पास
 पनिरत बड द्वारा अपने मनोमात्र व्यक्त करता है। उमी म बगल सेना पर
 कड होकर बिदूषक "ता मादाक दामीण धीमलए पनिकाल् कुहुंनि वेकिरतलं कह
 कर अपनी मनारणा का परिचय बना है। एम जैम जडाहस्या द्वारा यह स्पष्ट
 है कि दामी पाण का प्रयाग 'बेव्या' के अर्थ म अधिकतर बिया जाता रहा
 है।

शपदामी

पाम्नु दबरागी का बन्धन यत्थावृत्ति मर ही मीमित नहीं रहा है। उम
 एक मय दायिब का भी निर्वाह करता पढ़ता था। उमे बबाल्या म मेका-बाई
 भी करता पढ़ाया था। मारण स्मृति के अनुसार पछनि दामिया का कोई पुत्रक बर्द
 नहीं है कपानि दबरागिया का है। यह एम माग्नीय शम्नु बिया की बिपिया
 पर दिवार कर ता पना कडया कि 'नादुयानाए' मन्त्रि का एक बिदिष्ट
 भाग हुआ करती थी जा आपुनिक 'करता क ममान थी। जानानर म यह
 अनुबक बिया जान मया कि दवा-दबराभा क मका-कमार्म पूजा-अर्चन एव राज
 भाग के अनिश्चित मय प्रकार की थी व्यख्या हाती थाहिए। दबरागी प्रभा
 का रिता एमी ही प्रथा का परिणाम समझता थाहिए। गिर-गुराण क
 अनुसार गिर-मा दरा म बहूमत्यक देगु-बीगा बाइन में प्रथम पुग्ता क साप
 "उतम त्री-अहर्माइब मृपदेवविगारई" की भी व्यख्या की जाती थाहिए।
 एवम पुग्ता क प्रयाग मरुत में भी गिर-मन्दिर म मायल बाण्ड क बीच
 "बा-बीनुर इारेन लमाबीम विपमरक्" का बर्णन आया है। कौटिल्य
 अवेगाण में भी देव दमा का उल्लेख है। एम प्रकार शिन्दु मन्दिरा में एम प्रभा
 का प्रकान मखर हुआ। एम प्रथा के प्रचलन में बाण्ड प्रभाव भी ममक हा मरता
 है काहित मर प्रभा इसी एम की लवाग विचारता ली है।

पौराणिक बन्धन

दबराभा और बाराणनाभा के मखर का उल्लेख मतामान क मर बर्द
 में मिलता है। एक स्थल पर उरपी द्वारा अर्चन में बहलगा दया है कि "एम

ती देवताओं की बारांपनाएँ हैं। तपस्वा से ही हमारा रमण संभव है। अरबघोष
कृत 'सौन्दरानन्द काम्य' के अनुसार देवताओं के यहाँ बेरवाएँ भी रखा करती
थी जो 'सदा मुखायै महर्षेण कार्या' जैसे श्लोकों से सम्पन्न थी। वैसे बौद्ध काल
में मन्दिरों का अधिक प्रचलन नहीं रहा है जिस कारण बौद्ध साहित्य में यह
सम्बन्ध अति स्पष्ट भाषा में उपलब्ध है जो कुछ है भी वह अपवाद स्वरूप।

प्रश्न उठ सकता है कि देवताओं के सम्पर्क में रहने वाली देवदासियों का
बर्णहीन होना क्यों समझा जाने लगा था। इसका कोई स्पष्ट उत्तर हमारे पास
नहीं है। फिर भी यह अनुमान करने का आधार मिल जाता है कि बर्ण रूप से
देवदासियाँ वास्तव में दास-कन्याएँ थीं। इसलिये उन्हें बड़े सम्मान मुक्त न
हो सका जो आमिजात्य बर्ण की कन्याओं के लिए उपयुक्त समझा जाता था।
पुरातन काल में दासी को भोग्य सामग्री समझने की परंपरा थी। महाभारत
में द्रुपद का एक श्लोक पर अर्जुन की है कि "दासीभावेन द्रुप्याम्ब
भोग्युक्त्याः सुतास्तव । हेमाद्रि के 'चतुर्वर्ण चिन्तामणि' के द्वावगण्ड में एक
ऐसे मंत्र की उद्धृत किया है जिसका उच्चारण दासी-कन्या के द्वाह्यम को भेंट
किये और जाते समय करना चाहिए—

इयं दासी मया तुभ्यं दीयते प्रतिपादिता ।

तथा कर्मकरी भोग्या यथेष्टं महामनुते ॥

देवदासी का सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख हमें पुराणा में प्राप्त है। 'पद्म पुराण
के मृष्टि खण्ड में ब्रह्मावान माहात्म्य का बर्णन एक ऐसे ही संदर्भ में किया गया
है—

मुनीनां प्रियतीं नारीं युक्तीं वपसातिनीम् ।

सालंकारीं सद्रूप्याम्ब दत्त्वात्सकलं कर्मम् ॥

अनयोश्च कलं तुभ्यं भुवती ब्रह्मवोरपि ।

एकाक्षराय दत्त्वा अपरा द्वाह्यपाय तु ॥

कीता देवाय दत्त्वा भीरेव विलष्टं कर्मजा ॥

वत्पदार्थं भवेत् स्वर्गं नृपो दासी महापनी ।

प्रति ब्रह्म कर्मेतेव भुवती वरर्षिणीम् ॥५२।१७—१०

'राग्य पुराण' के अद्वायम्ब माहात्म्य के महेश्वर खण्ड में बतलाया गया
है कि—

प्रदर्शनाख्यो नृवतिर्प्रीतिम् देवव्यकाम् ।

अक्षयिपतिर्पार्थं कुर्वन्ती सादरीजनकम् ॥

सकाम् वपिमुनो जातो मन्त्रिभिरुचिता नृप ।

ब्रह्मण्य तां पुनश्चाम्याः प्रादादक्षन्भुते ॥

ततराक्षन्भुतो जातः प्रातारादक्षन्भुते ॥६।५४—५६

इसी गण्ड में मारकण्डेय ऋषि में कहा गया है कि—

मया च शम्भुसम्पद्य वृताम्घातुनिसम्भवाः।
तप्त कव्या वरारोहो वृषार्ष विनियोजिता ॥६॥१३६

इसी प्रकार राजा वर्यांगदेव ने विषय में कहा गया है कि—

सोमव्यंघ्रातिनीरसम वरिवार वर्यंगिताः।
तेषां च शोचनावस्य वसुधां वीषवर्गाम् ॥२४॥१२

त्रिविध्य पुराण में निर्योत है कि—

वैद्यपाददम्बर्धं यस्तु वृषात्सूर्याय भक्तिगुः।
त मण्डलत्वरत्वं त्वत्वं यत्र तिष्ठति भानुमान् ॥९३॥१६७

बभ्रुवर्ष विष्णुमण्डि में हेमाद्रि के 'वाडालर त्तत्र वा उद्वग्न दिया है—

योऽन्वहृद्य त्रिप्रयं शम्भोरुत्तमां विदिदेवदेन्।
सोऽन्वमेवस्य यत्रय वत्तं घातगुच लभन्।।
मुचिनीनां त्रिप्रयं वानी भक्तवार्त्तं विदेवदेन्।
वरमेवस्य यत्रय वत्तं घातयत्तं लभेत् ॥ पु ६४१—२

उत्तुवा उद्वग्न में हमें कुछ निष्पन्न निष्पन्नने वा आधार मिल जाता है। 'यद्युगम वा रचना वात्त श्रीदी गताम्नी है और गमवत्त इमरी रचना मारागण म हुई थी। इस पुराण में विमी पटना का टीक-टीक पता नहीं बताया किन्तु यह केवली प्रवा की मारागता अवश्य बताया है। इसमें विरहीत माता। एरी की रचना 'तत्र पुराण निष्पन्न पटनावा वा विवग्न प्रस्तुत बताया है और इसमें मयवत्त म पत्तगता वा उद्वग्न बताया है। हेमाद्रि द्वारा 'वाडालर त्तत्र वा प्रस्तुत उद्वग्न आवेत्तगतां वा पश्चिमावत्त है। इस मन्त्र में 'वा भी उद्वगनीय है कि 'त्रिविध्य पुराण' वाले उद्वग्न वा उद्वग्न अथ वा मयवत्त त्तत्र में है और तत्र अविगत दाधिगाया द्वारा माय्य देवता है। 'तत्र प्रवा वा उद्वग्न वावाचित् अमयमाय्य के समीपग्न निवासिता म कतावा वा 'तत्र' म प्रवा वा प्रवा प्रवर्त्तित थी। इसमें दाधिगाया वा मयवत्त लमटी माराग वा वावत्त लभत्त भी था। यद्यपि वरिवार विद्वानों में इस पर आधिक्य लभत्त तत्र मयवत्त वा प्रवा देवता है। उत्तुवी वावत्त के अन्तिम वावाचित् उत्तुवी गतां नहीं है किन्तु दाधिगा वावत्त के। अतएव उपर देवतावा प्रवा वा प्रवा वा भी मयवत्त वरवती प्रवर्त्तित जाया है।

तथा वा है कि देवतावा वरवत्त के अन्ति मभी धेत्तित तत्र प्रवा वा लभेत्त वावत्त थी। यती पर पर भी वरवत्त देवे वावत्त है कि मयवत्त एरी लभत्त वरिवत्त ही दाधिगा वावत्त जाया वा। इस मन्त्र में राजा प्रवर्त्तित वानी पटना मयवत्त है।

बौद्ध और जैन साहित्य

यह प्रया दाक्षिणात्यों में बौद्धों एवं जैनों के अतिरिक्त प्रचलित रही है। परन्तु 'बम्मपद' की टोका म बुद्ध कस्मप के प्रतिमा-स्थापन के प्रथम म एक राचक बर्णन आता है जिसके अनुसार अमुबा (मुक्तिवा) बनने के निमित्त एक जामीण ने अपने पूरे परिवार को देव-पूजा के नाम पर अर्पित कर दिया। इसी प्रकार देवदत्ता नामक एक कुबड़ी वाली कन्या ने अपने को जिन की प्रतिमा की सेवा में लगा दिया जिसका उल्लेख वैकोबी के महाराष्ट्रीय प्राकृत कथाका में पाया जाता है। इस कथा का सम्बन्ध जजैनी के राजा पञ्जाया और उदयन से है। फिर भी सामान्यतः इस प्रकार की किसी प्रथा को ये प्रथम बोलते नहीं जान पड़ते। कदाचित् इसी कारण जैन साहित्य इस प्रश्न पर मौन है।

शिखरालेख

ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी की जोषीमारा की गुफाका के शिलालेख म भी देवदासी प्रथा के अस्तित्व का पता चलता है। यह गुफा देवदासी सुतनुका के आदेश पर निर्मित हुआ था और इसका उपयोग उनके विधात-गृह के रूप म होता था यद्यपि वा काफी प्रसार आयमवाल इस निष्कर्ष से महमत नहीं जान पड़ते।

तबोर के राजमन्दिर में भी एक ऐसा शिलालेख है जिसके अनुसार दमबी प्यारुही गणी के सुप्रसिद्ध शीलराजा ने शिव-पूजा के निमित्त चार सौ देवदासियों के पालन पोषण के लिए कुछ भूमि दान-स्वरूप भट की थी। यह दान महागणीय 'जातकोट' के अनुसार १ ४ ईसवी म दिया गया था। इसी प्रकार 'इति प्रैदिका वर्नाटिका' म महामण्डलेरवर चामुण्ड रायरम का उल्लेख है जिन्होंने मन्थेरपर और मन्दिर में मन्वड कुण्डराज की छोटी बहुत बीजा बग्गी का कुछ भूमि दान म दी थी।

ऐतिहासिक सन्दर्भ

ऐतिहासिक तथ्य के रूप में देवदासी प्रथा का प्राचीनतम उल्लेख हमें मागधी शानी के चीनी विद्वान युवान च्याव के यात्रा-विवरणों म मिलता है। जब वह 'मु—मो—मान—मुको (मुक्सयानपुर—मुस्तान) स्थित सुप्रसिद्ध शूर्य मन्दिर को दलन गया तो वहाँ उसने लगातार दाने बालियों का पाया। ये दाने बालियाँ ममबत देवदासियाँ रही हानी। 'प्रचित्य पुराण' म भी इसका समर्थन होना है। इस सम्बन्ध म आठवीं-नवीं शानी के अरब भूगोलवेत्ता इब्न-इद्रिमी और अबू बैद-अब् हमन आदि के उन बर्णनों का भी उल्लेख हा आता है जहाँ पर उन्होंने अरब आक्रमणकारी मुहम्मद बिन इब्नायिफ के विन्ध आक्रमण के प्रथम में उदयन मन्दिर का उल्लेख किया है। आठवीं शानी की रचना 'बुट्टनीमत' में भी एसी कथ्याका की चर्चा है। जिन मूर्तियों की पूजा की जानी थी उनको 'बोद' अथवा 'बोड' कहने की प्रथा थी जो बड या बुन का भी समानार्थी है। कथना है। क्योंकि ईरान में बड मूर्तियों के ही आचार पर बत करने के प्रथा

काय निराली। बन्धुमृत 'राजतरंगिणी' में कश्मीर राजा जसलक का यह वर्णन भी प्थान देने योग्य है जिसमें उसने प्रथम होकर अपने रजिवाग के सौ शिष्या की हवताओं व सम्मान में मान-जाचने का आदेश दिया था। यही यही राजा कनिशासिन्ध (बाठवी राजा) के मरुतमें व भी मूर बड़ेमान बाल की एनी ही का देवतामिया का उल्लेख है।

मध्यकालीन मन्दिर

गह्वरी राजा के मुस्लिम इतिहासकों में आ सामनाह मन्दिर पर आक्रमण के समय मरुत राजा व नाम व लिखा है कि जन्हाज एनी पाँच सौ माने-जाचने बाटिया का देगा आ मूनि व समय बगबर गानी-जाचनी की। तारीख ए-अल्जी' व भी इन मन्दिर का वर्णन है जहाँ पर बतमाया गया है कि "इस मन्दिर के नीचे सौ गरीब और पाँच सौ बलवियाँ सम्बद्ध है। यह यहाँ को प्रया है कि भारत के राज-परराज नर अपनी बग्याका का मन्दिर देवा के लिए भज दिया करने है। इन प्रकार एव समय एका भी जाया कि दक्षिणाप मन्दिर के प्रभाव में दक्षिण में लेकर उत्तर तक व देवतामी प्रया प्रचलित हुआ है। इतना और भी स्पष्ट हो जाता है कि इन प्रया का प्रसार अफिगनर गिब एव मूय मन्दिर तक ही सीमित रहा। बार्मावर मूल सिगित 'बुट्टनीमन के आचार पर काफी विचाराह मन्दिर की बीनी शिष्या तक का परिचय मिल जाता है। कामन बुगय का कानी-वर्षन १३ बसन व बन्दुग साम्य रगता है।

परन्तु यही उनका निरी ग्दार्थ का मन्दिरों का नहीं जब कि सामाबार और एकर आगराग के देव-अपारों में उनमें सम्बद्ध मन्दिरा का भी ह्दार्थ निर्दिष्ट था बीगा कि अब जैद आर हुमन ने मूर्धिन दिया है। फिर भी 'मूनि बीमूनी के प्रसार पर एके बार्थों व मिरू वेरुम शिष्या की निवृत्ति नहीं होती थी। बुगयो व भी यही को जाती थी—

आनिशेव लभानुवां वाह्येष्वर्धनात्मनि ।

योग्यो देवपुरे राजा वर्धनकर भीरवा ॥ ५० ७३

के लिए वे उन्मुख हैं। इनका कल्पित विवाह सम्भव जयप्राय से हुआ करता था किन्तु छपबेस में पुजारी वर्ग राजकाश में इनका उपयोग करता था।

ऊरिस्ता में बहमनी राज्य के संस्थापक सुल्तान असाउदीन बहमनी (शौवहवीं शती) के कर्नाटक विजय के प्रसंग में लिखा है कि उस सुल्तान ने चार सौ मुरखियों को हस्तगत किया था। इसमें सन्देह नहीं कि उसने उन्हें अपने हarem में रख लिया होगा।

बिदेसी पर्यटक

बिदेसी यात्री मार्कोपोलो (तेरहवीं शती) ने लिखा है कि 'मालावारी सर-नारी' (शिव-शक्ति) के प्रतिमा-पूजक हैं जिन्हें वे अपनी कन्याएँ अर्पित करते हैं जो महदा अथवा पुजारियों के आदेशानुसार मूर्ति की प्रसन्नता के हेतु गार्ती-नाचती हैं। इटालियन यात्री निकोलो काप्टी (पन्द्रहवीं शती) ने भी विजय नगर में रथ-यात्रा के समय मूर्ति के समक्ष लबी-सभायी मारिया द्वारा स्तुति-गान करने को जबा की है। एक अन्य बिदेसी यात्री प्रैप्रोवासी के अनुसार विजयनगर राज्य के निवासी धार्मिक उमन में अपने माता पिता द्वारा अर्पित स्त्रियाँ जो मूर्ति पूजा में समग्न रहती हैं। मूर्ति-पूजा की व्यवस्था और अपने धरम-पालन के लिए अपना शरीर बँकती हैं। विजयनगर के एक स्थान पर ऐसी चार सौ बेश्याएँ निवास करती हैं। इसकी पुष्टि सोलहवीं शती के पूर्वगामी यात्री रोमियो पेरे के विवरण में भी हुंती है जिसने बारबार के किमी मन्दिर की चर्चा इस सम्बन्ध में की है। सोलहवीं शती के अंत में धर्म पिता ड विन और रिमियो ने त्रिमूर की उम यात्रा का देखा था जिसमें बीपवाहिनी बीम मर्तकिया का उल्लेख है जो गायको तथा चारवा के साथ अविवाहितावस्था में मूर्ति-सेवा करती हैं। अग्यत्र यह भी कहा गया है कि इन मन्दिरों की बड़ी आय है जिनमें से कुछ की आय गमी स्त्रियाँ की अर्पित भावना के कारण बड जाती है जो इन हेतु बेश्यावृत्ति तक में उतर जाती हैं। छेब यात्री बनिवर (सत्रहवीं शती) ने भी अपनी यात्रा यात्रा के प्रथम में कुछ ऐसा ही वर्णन किया है।

ज्ञानकोश

महाराष्ट्रीय 'ज्ञानकोश' के अनुसार शाहभाह औरपडेब ने औरंगाबाद के प्रथम-कास में अठारह के लडोवा मन्दिर में प्रचलित हिन्दुओं की मुरखी प्रथा (देवदामी प्रथा) के विरुद्ध विरोधार्थक बानून लगा दिया था। इन प्रकार शक्ति में यह प्रथा उम समय भी प्रचलित रही जब कि उत्तर भारत में इसका विलोप पना गही चलता। शक्ति बालों में बालाम्बर विवाहिता के अलाव अविवाहिता कन्याओं को ही देवदामी बनाने की प्रथा चल गई और वे गाने नाचने वाली मखियाँ लबीन बिद्या की संरक्षिका समझी जाने लगीं। कहा जाता है कि अंगरुजी शती में डीपू मुन्नाम ने जाना पिता द्वारा मन्दिरों के लिए बालक

वादिशास्त्रों का अंगित करने की प्रथा का निराप कर लिया था। वं वाक्य
वादिशास्त्रा का मातावार धन में वृत्ति-वम वजन के लिए परीर लिया करता था।

प्रभार

वन्दई में देवशानियों का एक नाम 'भाविन' भी प्रचलित रहा है।
भावंत्रनिष्ठ रूप में उनका गाना-बजाना वर्जित रहा है। 'भेज' विधि के अनुसार
वृत्ति का माय कुमारी बम्बा का विवाह कर दिया जाता था अर्थात् देवता द्वारा
पारण विधे हुए विनी अन्तहार के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ था। ये
अधिकतर मराठा सरदारों की शानिया द्वारा उत्पन्न बम्बार्ण हुआ थी। इसका
विहीन 'मुरफी' मराठा गुज जाति की थी। एगी प्राणिया में भग्दारी कुनबी
पायड़ भीर नायक आदि का नाम गिनताप जाते हैं।

अमम प्रदेग में देवशानियों प्रथा की भांति 'होद-बनी' अथवा 'देव-पानी'
प्रथा प्रचलित रही है जिसका सम्बन्ध देव-मन्दिरों में रहा है।

प्रथम में देवशानियों का दीक्षा-मन्त्रार्थ विविध रीति में हुआ रहा है।
आरती द्वारा आरम्भ हुआ वृत्तारी द्वारा हार जैनी विनी वस्तु के दिय जान था
उसका सम्मान हुआ रहा है। देव-युक्त के कल्पवृक्ष उम अम-वम और आवास
की शिन्ता में सुनिम निम जानी रही है। पूर निपाठित वाक्यता के अनुसार बट
एक गादि में विनी एक ही 'ऊँच छबीने' के साथ अकसायिनी हा मजनी थी।
उसके द्वारा अंगित आय का या ता बँटवारा हो जाता था अथवा मन्त्र के
अधिकाधिकों द्वारा बट हतगत कर लिया जाता था। यह प्रथा वर्तमान के
गुण्यापुत्र शानों में ही प्रचलित रही है। अगुत्या के हातेल और मर प्राणिया
में तथा मन्था अधिक रही है। यहाँ पर उन्हें 'जागी' कहने की परंपरा है।
एनी प्रकार ऐतयाता में वे 'बमबा' कहला कर प्रसिद्ध हैं। 'बेममग' (बी।ग)
के रूप में प्रसिद्ध प्राणिया में यह प्रथा रही है कि वे अपनी उभेष्ट बम्बा का अन्तुमनी
हाद के पुत्र ही विनी मन्दिर का भेद कर दिया करने में।

एक मन्त्र में यह एक रोचक उच्य है कि टिन्दुबों की देगा जैनी अश्रिय
मन्त्रिक सम्प्रदाय में भी देवशास्त्र प्रथा को विनी-अ-विनी रूप में जाना लिया
जिन्त् मन्त्रिक में अगुती करते रहे हैं। उनका स्मारक स्वरूप उम मगर की
एक एनी अगुती एनी कहला कर प्रसिद्ध है।

उत्तुवत् विगुन विवरण तथा विवेचन में यह प्राणित अन्तरि न हाती वादित्
कि कुटनी-वर्ष अथवा वेदावृत्ति वाले बहु वादिध धन में ही वरों में अन्त हा
आरतीय मन्त्र की एवाग्न विगुता है। इसके विरहित मगर के अधिका
वृ माय में यह प्रथा विनी-अ विनी रूप में आज भी प्रचलित है या अरुने अन्त में
गामादि एव वादिध मन्त्र की एक विद्वता है।

धी अन्तुवत् वाक्य में सामारर वृत्त कुटनीवत् वाक्यम् का सम्प्रदायिक

हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया है और पाठ टिप्पणी तथा अनुवादीय द्वारा अन्य आवश्यक बातों को सूचित कर दिया है। विज्ञान पाठक इनसे अवगत हो कामाग्नि होये। मैंने अपनी भूमिका द्वारा उन तथ्यों का उत्पादन करने का यत्न किया है जिनकी पृष्ठभूमि में विषय-बोध सुगम हो सकेगा। हमें आशा करनी चाहिए कि इस अनुवाद द्वारा देश के सामाजिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन को नयी दिशा एक प्रेरणा मिलेगी। भूमिका तैयार करने में जिन रचनाओं से मुझे सहायता मिली है उन सभी के लेखकों के प्रति मैं हतब है।

नागपत्नी

२ १७

मर्मदेवर चतुर्वेदी

काल्य रसिक
डॉ० नगन्द्र को
स्नेह

अनुवादक की ओर से

दुर्लभता आनी पताही के बरसी के बरि भा सामाज्युत बा परमात्र
उत्पन्न एवना है। बरस की 'संसारगिरी' व अन्याय सामाज्य गत
बर्गीय के गता बरसी (७७ — ८१३ ई) व आधिप बरि और प्रपात
परी व। बरसी व बुध गुरुं और अत म बर बिगमिता म बरन बुध
बर बर ये त्रिमता बरि व मन पर बिगद प्रमात्र पाना स्वाभारित या और
बर्नीयत के निर्माण वा मर्य बरग्य करी गमता वा गतता है। येना वि एक
बाम्य मे बरि-बिबम है उगत बिदिता हुआ है वि मर्यादीय भाग्यीय गमात्र
और बिबन बर बर्यीय अनार बरन बिबनी हा एना वा। बिगमिता उर
आनी बरम बिदि मे बुध करी है मर उनमे दगाचार व्यभिचार अनाचार
भा मरुत उरुद मरुत हाव गामात्र अनरीचन वा शर्य बर देन है। एनी
बिदि मे बिनी भी ममात्राप्य वा बरिय हा जाना है वि बर बिगद ए
गमात्र की मुपात्र और अनरीचन की उरुत बरन वा प्रान्त बर। बर्नीयत
बाम्य के निर्माण की बुधमि प्राय करी हा गतनी है। एम गाम करी वि
एनवा बरिदिता बरि हादे के गाम गमात्र व बिबन प्रमात्रना वा दिबन म
निरीणन बरन बाग्य व्यभि व। ऐनी बिदि म अने बरिदि वा मर्यम
बना बर मरिदिबना गमात्र की मरुई बरना ये अरिण वा। बरन
बर्नीयत की एवना है।

काव्य जागिर काव्य होता है। समाज-शास्त्र नहीं। समाज के सामने काव्य के माध्यम से जो कुछ रखा जाता है वह निश्चय ही समाज शास्त्र का भी लक्ष्य होता है परन्तु दोनों के माध्यम में मूलतः अन्तर है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने इसीलिए काव्य को काव्यशास्त्रित उपदेश' माना है प्रमुखमिथ और सुहृत्समिथ उपदेश काव्य के विषय नहीं। इस दृष्टि में जाति से अन्त तक इस काव्य में काव्यत्व की रक्षा की गई है और पर्यन्त में सिर्फ यह कह कर समाप्त कर दिया है कि—

काव्यमिथ यं धृषुते सम्यक् का व्याख्यानमेवमस्ति।

नो ब्रह्मन्ते कश्चिद् किञ्चेत्पाचूर्तकुटुनीभिरिति।।

अर्थात् इस काव्य को काव्यार्थ का सम्यक् वाचन करते हुए जो भव्य करेगा वह बिट बेव्या पूर्व और कुटुनी से रुमी बन्धित नहीं होगा।

सबसे एक ओर अपने काव्यत्व की पूर्णता से और दूसरी ओर निश्चयत्व की समग्रता से कुटुनीमठ एक प्रकार का बिल्मन्न निर्माण है। यह आकाश-दीप की भाँति सस्कृत-साहित्य के स्कीत आकाश में अपनी विभिन्न मोहक रबीनिय को लिए जलममाता हुआ एक ओर सहृदय को अपने कान्तिभर से आह्वान भी करता है दूसरी ओर उस सजय और सतर्क भी बना देता है।

काव्य का आरम्भ मनबाम् अर्थात्वीर्य कामदेव की जलकामता से हुआ है और दूसरे ही स्थाक में जनि अपना बिलय करने के बहान सहृदय का काव्य के परिभा जाति बोधा की ओर ध्यान न डिकर मुचसेस की ओर दृष्टि देने के लिए प्रार्थना करके प्रस्तुत वर्षा में लन जाता है। इसमें प्रमुख एकमात्र छन्द आर्या है जो छन्द शास्त्र के अनुसार बहुमेदवती होन पर भी वही परिमित ही प्रमुख है।

कुटुनीमठ के प्राप्त होने और प्रकाश में आने का इतिहास भी यहाँ उल्लेखनीय है। यह शक सचिवों से अप्रप्त होने के कारण मन्-तन् के उत्पृत स्काई माष से विज्ञाना को विहित था। वह पीठमन महालय को १८८३ ई. में मुजरात के बाम्बन्धित शास्त्रिण मन्धिर से पुस्तक भाण्डार में ताड़पत्र पर आनुभासिक बमोश्च शनाप्ती में लिखित प्राप्त हुआ। मन्धिरा की चिरप्रगुप्ति में बाह जागरित हानर भी यह अगुर्ण एव अमुक' होने के कारण विज्ञाना के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय बना रहा। १८८७ ई० में अणुपीय महाभूताम्भ्याय बुपाप्रसाद में इन शक के और भी प्राप्त दो बाल्पुक्तिवियों के आचार पर निर्णयवापर प्रन बम्बई में 'काव्यशास्त्र' के तृतीय मुच्छक में इसे प्रकाशित किया बसपि नि पुरीण कुटुनी इम सत्करथ में उपमहूत न ही पाई। पीठमन की प्राप्त पाण्डित्यि में शक का नाम 'वाम्बमीमनम्' था लेकिन अणु प्रतिपा में 'कुटुनीमठम्' शीर्षक था जो खीरन हुआ। क्योंकि रात्रतरपित्री में बम्भण में इन काव्य को 'कुटुनीमठम्' के नाम से ही स्मरण किया है और बाद में प्राण हुई पुन एवं मुक

पाण्डित्य में यही शीर्षक मिला। कौन क अनुसार 'कुट्टनी' और सम्मली होना पर्यायवाची शब्द है। 'कुट्टनीमठ' का हि अर्थात् कुट्टनी (परसुराम के साथ गवाह कर के शिवों का शील हल करने वाली) स्त्री द्वारा ही हुई मन्था या उदये।

१८९७-९८ ई में महामहाराष्ट्रप्याय हर प्रसाद शास्त्री ने मेराल यात्रा की और वहाँ उन्हें ११७२ ई में प्रतिमिगित इसकी एक पूर्ण पाण्डित्य लेखारी लिपि और प्राचीन अगल बसाहर में प्राप्त हुई। उनक बचमानुसार इसम पुराना कई बसाहर प्राप्त नहीं हुआ है। उन्होंने इस ग्रन्थ का बगल क एगियाटिव सोमाटी को दिया जहाँ से एक बन्नीरी बिद्वान् गिण्य धीमपुसुहन बोल के मन्थाहरण में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।

एक बम्बई के एक बिख्यात गुजराती बिद्वान् श्री तनमुराराम मन्मुराराम त्रिपाठी ने एगियाटिव सोमाटी के मन्थाक शील प्रतिमा काप्यमाया क गभिल मन्थरण और बानी के पबिलत रत्नगागाल भ्रं द्वारा रचित 'रत्नीगिरा' नाम की टीका का अवलम्बन करके एक मन्थुर्न मटीक मन्थरण की रचना की। अब एक प्राण मन्थरणा में यह ग्रन्थ सबन उतरावी और मन्थ बटा जा सकला है।

इसने रचयिता की सामाहर मुल में अरना परिचय नहीं मही दिया है। बवल 'सामाहरिणी' का यह बन्नाक इस मन्थ में पाड़ा सा निदय बगला है—

स दामोदरमुत्तमं कुट्टनीमतकारिणम्।

कवि कवि कलिरिष पुर्व पीतचिबं व्यपम् ॥४९९

और कुट्टनीमत के अन्त में यह लिखा है—

इति श्रीबन्नीरमहामन्थकमहीमन्थन राजबपावीर-भक्तिबवर दामोदर मुत्तकविरचिबं कुट्टनीमन्थं समाप्तम्।

एक दाना में इनका ही बिदित होना है कि कुट्टनीमत के रचयिता श्री सामाहर मुल बन्नीर के राजा बपावीर के संबो थे। बन्थ में कवि क जीवन का घटना का कोई उल्लेख नहीं किया है। बन्थभदेव ने अपनी 'मुभागिनामनी' में सामाहर मुल क नाम में बार बन्नीका का उल्लेख किया है जो कुट्टनीमत में नहीं मिले। सम्भव है कवि ने कोई अनिश्चय निर्माण भी किया हो। इसमें मन्थे मही कि कुट्टनीमत कवि के परिचय बवल की रचना है बराबि इसम कवि के बिदित कारण में अने व्याहर पाण्डित्य का परिचय दिया है।

बन्थ क अनुसार बपावीर का राज्यकाल ७५१ ई में ७८२ ई तक टरला है। मेरिन आपुनिब शोध ने अनुसार यह बात निदय दामुर्न है। उनका राज्यकाल ७७९-८११ ई म्नु का जैसा कि एन मन्थान न राजागिणी की कृपिका में बगला है। श्री दामोदर मुल के इस मन्थ में बिदयान होने में कोई संदेह नहीं होना चाहिए।

- वामन—अक्षकारमूत्र व रक्षयिता और वाणिज्यारम्भ इत्यादि १११।
 राजवत्स, बटक और सन्धिमान—इनका अन्वय व। उ १११।
 भीमामार गुण व कृष्णमीमा म प्रणवत्ता इन कागा वा उ १११।
 कोहल (८२ ८७१)—गणित और नाट्य व अन्वय। मर्मगत मात
 वं छात्रैव ये इनका उल्लेख किया है। इनकी रचना जब पर अन्वयम् १।
 ब्रह्मा (७५)—नाट्य के प्रथम रक्षयिता।
 मारु (७५)—सभीत के आचार्य। मारुही गिद्या और गणित व
 भी मारु की वृत्ति के रूप म समझे जाते हैं किन्तु इनस इम मारु की प.
 टीक नहीं।
 वात्स्यायन (७७ १२१)—कामसूत्रा के रक्षयिता।
 वृत्तकार्य (७७)—नामसूत्रकार, इनकी रचना अज्ञात है।
 भरत (८२, १२४ ८०६ १ ९)—नाट्यशास्त्रकर्ता।
 सदानोदय, वृत्तक, विटपुत्र और राजपुत्र (१२१)—नामशास्त्र
 ब्रह्मणश्चित्त आचार्य।

१ श्रीराधिकाशम्भविद्योशाभ्यायान् सम्भृतधृतः।
 बुधं सह मयी बुद्धिं स जयापीडपण्डितः ॥४८९॥
 विद्यान् श्रीनारदस्यै प्रार्थयं वृत्तवेत्तम्।
 मूत्रोन्मूत्रवदस्तस्य भूमिभर्तुं तत्रापतिः ॥४९५॥
 मनोरथं धीनरदावददः सन्निवृत्तया।
 वन्दुः वचनस्तस्य वाक्पापात्तव भविष्यः ॥४९७॥

विरासिद्ध (१२८)—कलाओं के लेखक। काव्यासकार-सूत्रवृत्ति (१। ७। ७) में इनका उल्लेख है।

वृत्ति (१२४)—संगीतशास्त्र के रचयिता। इनकी कोई रचना अभी तक प्राप्त नहीं। वे कोहल के शिष्य कहे जाते हैं। धार्कुरिण के संगीतरत्नाकर की टीका में चतुर कस्तिनाथ ने इनकी रचना से उद्धृत किया है।

व्यास (२४७)—महामारु और अष्टादश पुराण के कर्ता।

मर्तग (८७७)—संगीतशास्त्र के एक पुराने रचयिता। धार्कुरिण और डूमेरे लेखों द्वारा उल्लिखित।

इनके अतिरिक्त कवि ने हर्षिण (अनमहर्ष) का नाम लिया है (८) और त्रिनकी सुप्रसिद्ध रचना रत्नावली के प्रथम अंक को आपा छन्दों में अभिनय के रूप में प्रस्तुत किया है (८८१—१२८)।

अपने निर्माण के पश्चात् कुट्टनीमत प्रकार प्रसार की दृष्टि से किसी से कम न था। मध्ययुग के कविगण और साहित्यकार इस काव्य से पूर्ण परिचित हो चुके थे। आचार्य मम्मट ने अपने प्रतिष्ठित निर्माण 'काव्यप्रकाश' में इस काव्य के दो श्लोकों (१ ३ १९७) को सहाय्य स्थापन किया है। इसके अतिरिक्त गुणाधिरावली कविकथासरण पञ्चतम दुर्बलवृत्ति मंत्रकोश टीका कवि बचन-समुच्चय सुक्तिमुक्तावली सप्तवार सर्वस्व शीर स्वामी की अमर कोष टीका आदि ग्रन्थों में इस काव्य के श्लोक उद्धृत मिलते हैं। इन ग्रन्थों में कहीं रामोदररेख नहीं मट्ट रामोदर गुण्य नहीं कपिसरामोदर इत्यादि नामों से कवि का परिचय दिया गया है। पद्यधी मा पद्यधीजान नामक बौद्धपण्डित (१ म ११ वा सतक) के 'नायरसर्वस्व' नामक काममास्त्रीय ग्रन्थ में भी कुट्टनीमत का उल्लेख है।

आप चल कर सम्भवत देखेंगी पताथी से इस ग्रन्थ का मूल अस्तित्व विरोधित हो चला वनाकि काव्य प्रकाश के तत्कालीन टीकाकार माधिरावण्य आदि ने उद्धृत श्लोक के रचयिता का नाम अपना कोई परिचय नहीं दिया है और अनेक टीकाकारों ने इन्हें अन्य कविद्वय कह कर मूल भी की है।

कुट्टनीमत की कथा

पाठयत्री की मास्त्री नामक महिला ने किसी के वचनानुसार अपने को वामुक पत्नी के रूप में स्वीकार करने में असमर्थ अनुभव करके विचारामा नाम की कुट्टनी के पास जाकर उपवास पूछा। विकरासा मास्त्री के शर्मद्वय मुख की प्रशंसा करके बोली कि वह मट्टपुत्र (चिन्तामणि ?) की आदृष्ट करने का प्रयत्न करे। महिला को बाह्य कि वामुक के मन में विद्यमान इन चारणा का किने टप होती है, उनका रूप इष्टिम होता है। दूर रहे और इस अदृश्य में मट्टपुत्र का सन्धिपि सन्धार करके मास्त्री यह कथा सुनाए—

कुमुदपुर (पाटलिपुत्र) के पुरन्दरसेन नामके एक ब्राह्मण का एकका मुन्दरसेन अपने मित्र गुणपात्रिण के साथ वेसाटन के उद्यम से मित्रता और अपनी यात्रा के प्रथम म अर्बुदाचल (जाबूपर्वत) पर पहुँचा। उस पर्वत की रमणीयता से मोहित मुन्दरसेन ने वहाँ एक उद्यान म हारलता नाम की एक सुन्दरी गणिका को देखा। दोनों के बड़े तत्काक मयनसमयक के फलस्वरूप दोनों एक-दूसरे को अपना दिव्य दे बैठे। मुन्दरसेन उस गणिका क साथ एक बर्ष तक आनन्दपूर्वक रहा। गुणपात्रिण न चाहते हुए भी मित्र के प्रति गाढ स्नेहार्थ के कारण मुन्दरसेन के साथ रहा। तत्पश्चात् पिता के मेल हुए दूत ने मुन्दरसेन को पत्र दिया जिसमें उसकी कमबोरी के प्रति विचकार के साथ धीम्र लौट आने और परिवार का भोजन सम्हालने के लिए निर्देश था। पिता की आज्ञा मान कर मुन्दरसेन अपने मित्र के साथ चला। उसके साथ कुछ दूर तक वियोग-विह्वल हारलता चली। नगर के बाहर जब वह हारलता ने विदा हुआ और कुछ दूर चला गया तब पीछ से आते हुए किसी गणिक ने पूछने पर बताया कि कोई महिला बरमर के पेड़ के नीचे निरचल पड़ी है। हारलत के सिध्दाण हू जाने के इस समाचार से रोता-पीटता वह लौग और उसके मृत शरीर के समीप पहुँच कर देर तक विलाप करता रहा। अन्त में उसके शरीर का अभिगमकार सम्पन्न कर मित्र के साथ सम्भाषी होकर निकल पया।

विकराला ने कहा कि इन कथा से गणिकाप्रा के राय का प्रमाणित करके तू अपन की बटपुत्र से उसके परिवारका के बीच राय लेने की प्रार्थना करना। इस प्रकार जब उनका विरवात तुम पर जम जाय तब विविध प्रकार की मान भूषक ईर्ष्या की जाने करना। जब वह तुम पर रुद्रराग हो जाय तब अपनी माता के साथ सिध्दाणकह करना। माता तुमसे बने कि वीने शरचने बालो का छोड़ इसके पीछे गया पड़ी है! गणिका जना के लिए राय छोमा नहीं देता। तू माता की बात न मानना और अपने प्रिय के लिए सब-कुछ छाड़ देने को उठाक ही जाना। एसा करने से वह तुमसे अपना सर्वस्व अपित करके सम्पुष्ट करने का निरचल करेगा तेरे विविध कामधर्मक उपचारो को शराहेया।

दगना होन पर यदि वह प्रमावित न हू तब तू यह प्रवट करना कि तेरे माते सहने चोरा ने मायें मे लट लिए। यह प्रपञ्च रचना भी यदि कथा सिद्ध हो तब तेरे आदमी मे प्रेरित हो बतिया आकर यह बहे कि तुमने द्वार जो मिरली रणी है उसे वीना बागन करके लौटा ले। तू बटना कि द्वार जिनी विचवात के टहुराये बाय पर तू ही रण से और जो वीना बचगा उसे पीछे दे रूँदी।

यह प्रवट रचना भी जब ध्यर्ष मिद्ध हो तब बटना कि जब तुम बीमार पड़ गए य तब मैंने देरी को बनि बजाने की मतीनी मान ली थी। लेकिन सामथी के अभाव में जो पूसा नहीं कर पायी हूँ उसके कारण मन में चला चली रहनी है।

यह भी स्पष्ट हो तब अपना घर तामी करके उठम जाग समा देना और यह करना कि मरा सब कुछ जक गया।

इन उपाना स कामुक को खोखला कर डाखना और तब उनके छोड़ने क उपाना (पदपापचार) काम म लाना। बहुत कहन पर भी यदि वह बारमी के बाजार वाला पदु मही ममम तब कहना कि मेरा दिल तुममे ही लुग होना है मकिन क्या बन्द माना की बात टाक मही नकती। "मकिण कुछ रिता के लिए तुम बस जाओ फिर आना तो तुम्हारे ही साथ रह कर दुनिमा के मजे लेंगी। यह कहने पर वह बसा बाय और कुछ रिता के बाद उनके पाम बन एकज हा बाय तब बुन उठे मिला लेने का प्रमत्न (प्रिममत्पान) करना।

इसी प्रमग म विकराका ने मालती का एक कथा सुनायी—

राजा निहमट का सड़का राजकुमार समरप्रट अपन परिवारकी के साथ बामी बिस्वनाथ के दरान क परचाव् बही बेरपात्रा मामनाबायी बनिगन/ तथा मय्य विविध प्रचार के लोगो मे मिला। सभी लया ने उन मम्मालित किया। बही उनन नृत्योपदेनाक बाचान से स्थानीय संगीत क मन्त्रप म प्रमन किया। उनमे मलिना बना की स्थापार-परायपठा के विविध उदाहरण बते हुए ह्यदेविशिष्ट "रत्नावली" के अभिनय करने बाछिया म मञ्जरी नामक बेरपा का परिचय कराया। राजपुत्र ने मञ्जरी को हृष्यत मरी निमाह मे देखते और 'बया यह है! बहुत हुए बेबरण्ड स स्पय किया। इसी प्रमग म उसके मलिना ने बेरपात्रा का ठिरस्कार करत हुए परकीयाप्रम की प्रघटा की। तब मञ्जरी की माता ने अपन पक्ष स सचिव क बाग्यास का मदन किया। मर्नबाचारी ने राजपुत्र स "रत्नावली" का एक अक देखन क लिए प्रार्थना की। उनकी स्वीकृति क बाद पूरा प्रथम अंक खला गया। राजपुत्र ने उस नाट्य का बह्य पमन किया और रत्नावली की भूमिका निभान वाली मञ्जरी क प्रति मनुरक्त हा गया। फलतः उन मलिना म अपन विविध बिलामो मे उसे कोष कर उठवा छय कुछ के किया और उन रजपरिचयो करके छाड़ दिया।

यह कथा सुना कर कुटुनी विकराका ने कहा कि जो कुछ मैंने कामुक क बन एउने के उपाय बताये उनक प्रयोग से तू मही ससुद्धि प्राप्त करेगी।

मास्त्री ने यह उपनेय शक्य कर विकराका का चरय-रपय किया और मन्मुट ही अपने घर गई।

यदि अन्न म लिनता है कि इस काम्य को जा बाप्यावपासन पुर्बक शक्य करेगा वह कभी बिट बेरपा पुन और कुटुनी मे बम्बित मही हाया।

"म माबाण्ड और बहुत अम मे मरू और पीन कयानक का यदि ने अपन बचिअ का प्राजाडाडा पदना कर बहुत ही मजदार और रिक्कण्य बना दिया है। पुत्र की दृष्टि से प्रवाह और मापुय को लकनता से निमाया है और मय-उम

स्वेषानुबन्ध परिमंस्या उपमा व्यतिरेक आदि अत्यन्तसिद्ध आलंकारिक प्रयोगों का पुट डेकर इसके गाम्भीर्य की सुरक्षा भी कर बी है। यद्यपि इस काव्य के रसाभ्यासन में इन प्रयोगों के कारण बाधा-सी महसूस होती है किन्तु इनकी सरलता और स्वाभाविकता के कारण इस काव्य के प्रति कुछ ऐसा प्रसन्न मन पैदा हो जाता है कि सहृदय का मन नहीं लीजता। पारश्चात्य हम के आलोचकों ने इस काव्य को Erotic-comic (अर्थात् प्रेम-हास्य-सम्बन्धी) काव्य कहा है और बहुत जगह में Satiric (वर्णनपूर्व) कहा है। वस्तुस्थिति ऐसी ही है। हम कह सकते हैं कि कवि को इस काव्य में एक घास डग की सफलता मिली है जिसका दूसरा उदाहरण संस्कृत-साहित्य में नहीं है। खेमेन्द्र आदि ने भी इसी विषय पर विभिन्न रचनाएँ (समयमत्सुका आदि) की लेकिन कुट्टनीमठ की सफलता अपूर्व है।

वैदिक जीवन का मौखिक वैशिष्य इस काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य है। इस जीवन और कला से सम्बद्ध शास्त्र का निर्माण वास्त्यासन के कामसूत्र (पठ-प्रकरण) और भरत-मुनि के नाट्यशास्त्र में बहुत पहले हो चुका था। वास्त्यासन में पठ 'वैदिक-अधिकरण' को बारह प्रकरणों में विभक्त किया — (१) सहाय-यम्यागम्य चिन्ता (२) गम्यकारण (३) उपावर्तनविधि (४) वास्ता नुवर्तन (५) अर्थात्मयोग्य (६) विरक्तालय (७) विरक्तप्रतिपत्ति (८) निष्कासन-मकार (९) विधीर्षप्रति सम्भान (१०) साभविषेप (११) अर्थात्मनुवन्त्यगणयविचार और (१२) वैश्याविषेप।

इन विषयों में स बहुत को कवि ने काव्य की व्यावहारिक भूमि में साकर उन्ह व्यक्त रूप में समझा दिया है। समाज में वैश्याजीवन के आरम्भ के सम्बन्ध में कोई निश्चित तथ्य प्रस्तुत करना कठिन है। स्कन्दपुराण आदि में वैश्याओं की उत्पत्ति के कथानक मिलते हैं लेकिन उन्हे वैज्ञानिक बुद्धि के माध्यम तथ्या के अनुसार अधिकतमनीय समझ लिया जाता है। इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि वैदिक व्यापार, जो मुख्यतः मूल्य-संपीठ पर आश्रित माना जाता है स्वयं में विघाम करन वाली अन्तराज्य के अनुकरण पर यहाँ के विभासिता प्रदान जीवन में आरम्भ हुआ होगा और आगे चल कर इसमें विभिन्न समाजविराधी वासनारथक तरह शामिल होने लगे। आचार्य भरत ने वैश्याओं की निम्न और उच्च कोटि की वर्णों में कहा है जो वैश्या वर्णों से अन्वयित और रूप-नील-सुधाग्विता हुली है वह 'गणिका' इस नाम से अभिहित हाकर जनतन्त्र में स्थान प्राप्त करती है—

आभिरम्पिता वैश्या रूपशीलगुणान्विता।

सन्धये नदिरामर्श स्वार्थ च जनतंसदि।।

बुद्धिमान् में गणिकाओं के व्यावहारिक जीवन में बहुत कुछ संगोपन हुआ प्रतीत होता है। उनका लिए वास्त्यासन में 'जनपदकन्याधी' शब्द प्रयुक्त

हुमा है। जन्तु बुद्धनीमत उन्ही बध्माजीवन के समावधिगरी तस्वों को मरिचिक रूप म प्रस्तुत करता है।

इसका बधि कथानक क उतार चडाव में नही उलझता बल्कि बस्तुस्थिति का वाक्य के रूप पर प्रस्तुत करने के लिये निगन्तर जागृत रहता है। यद्यपि यह बानी प्रबलमान प्रतिभा का रोकर कथानक म आ जाता है तथापि फिर बहा बाग हा जाती है। आरम्भ स अन्त तक इस वाक्य म वैदिक जीवन क विविध उपायों को हम मौलिक रूप में उपनिबद्ध पाते हैं। बुद्धनी बुद्धनी क बूह पर स्थित जनममुखाय कामुक कामुक का वैभव-विलास उसक आचरण क विभिन्न उपाय और, मानुषकण्ड पर्योत्थार भिन्नमधान बभोक्ति प्रयाग कथित-प्रयाग आदि आदि। इनके अतिरिक्त वैदिक जीवन मे उपस्थित होने वाले कामुका के विविध चरित्र वेदयात्रों की परम्पर बानधीन उनका परम्पर विधानाच और बभह मे सब मस वाक्य के बभन ही वैदिक प्रयोग हैं।

आचार्यों द्वारा परिमणित वाक्य के प्रकाश मे बुद्धनीमत को लक्षुवाक्य या लक्षुवाक्य कहा जा सकता है। बभारम्भ की दृष्टि म आचार्य हेमचन्द्र ने 'वाक्या-मुपासन' में इसे 'निदानकथा' माना है^१। इस वाक्य मे मूक्तियों की परम्पर है और काव्योक्तिवा भी मत्र-अत्र बभरवारपूर्व बन गई है। एक उदाहरण लीजिए—

कौमारकं बिहन्तु रतिमये बहनसैवायाः।

इच्छामि किन्तु तस्या भ्राजाजीव प्रमार्ति बहनम् ॥३५॥

कोई बिह रहता है कि मैं चाहता हूँ कि रति-मय मे मन्मथना के कौमारक (कथारण) का हरण बभे मविन उमकी माता ने बूह म्याग कौमा दिया है। 'बूह का ज्यादा कौमा देना' यह वैदिक जीवन का नाम प्रयाग था जो अब भी हिन्दी में सुरधित है।

जीवन की गहराई तक पहुँचने वाले पदों की इस वाक्य म बनी नही है। मूत्रक क 'मूच्छकटिक' की एक उक्ति मे प्रमार्ति गमिका के मूल म विठना और मिय में रूप म बधि ने प्रस्तुत किया है—

धीवनचापकमेनद् यम्मादुति कीनुकं भवनाम्।

यन्तु मुनमनधगीत तस्य स्वार्त्तं निजा वारः ॥४६॥

और जहाँ ममिका अपनी आर मे तक उपस्थित करती है—

सौमद्रध्ये हेतिनि द्वारा अपि बाहरेय बभन्ने।

बिभुनादानकरता गरीरपबबुत्तयो वास्यः ॥४७॥

येऽपि पनस्यहोर्ष बभ्यन्ति बडा बिलातिनीउत्तेये।

प्रष्टव्यास्ते बभता बिमहृतकमिपुष्यया वारः ॥५॥

१ निराचाननिराधा का वेष्टानियत्र कार्यमकार्य का निरधीयने तस्यञ्च तस्यारिचन्तु बूर्नचिद नीवत-अपूर-आर्जातिववरव निरर्दानम्।

पश्चिका के सफल होने के लिए कुट्टनी का सबसे मुख्य उपदेश है कि वह किसी को अपना बिल न दे बैठे रायहूत न हो याय क्योंकि इसका परिणाम उसके पक्ष में बुरा होता है—

सद्मात्रमाप्सुरक्ति र्भ हि बर्ष्य पम्बनारीषाम् ॥

इसलिए वह अनर्हित व्यक्ति का विरस्कार कर दे अधिक सम्पत्ति वाले पुत्र का गौरव करे क्योंकि उसके रूप का निर्माण ही अनर्हति के लिए हुआ है—

अवपीरव मनविकर्तं हु पीरवमकृषधाम्पव पुतः ।

अस्मापुत्रो हि मुझे अनर्हतिपूर्ण रूप निर्माचम् ॥२७८॥

इसमें स्पष्ट नहीं कि दरिद्र ब्रह्म म भी बिल से अनुग्रह करने वाली पश्चिका नहीं रह जाती कपासीया होकर भी वसतसेना ने दरिद्र सार्ववाहपुत्र आरवत न अनुग्रह किया और इसी प्रकार के नि स्वार्थ अनुग्रह का कुट्टनीमत न हारकथा और मुन्वरतेन के कपालक के रूप में उग्रवच उदाहरण देस किया गया है फिर भी इसमें मात्र आदर्श है, भावस्मिबता है। बौद्धकाल म रायहूत होने वाली पश्चिका वय परिचाम में बहुत कष्ट उठती है यहाँ तक कि मछी-बद-गली भीष माँवपी है—

वास्ये तावदयोप्या वदचारपि बुद्धभाषपरिभूता ।

तास्ये रागदूता बधि पश्चिका जन्तु तद् भिजाम् ॥ ५४४ ॥

हय कह चुके हैं सन्तुत में अन्य कई काम्य ग्रन्थ पश्चिका जीवन पर स्वतंत्र रूप से लिखे गए हैं। इसरूपको में 'भाष विषय रूप से पश्चिकाओं के जीवन से सम्बन्ध साहित्य है। 'जनुर्वापी' के नाम से प्रसिद्ध काम्यतग्रह भाष-साहित्य वा उल्लेखनीय निर्माच है। आचार्य शैल्य ने समयमातृका ऐषाणदेश नर्ममाला और कलाविताम आदि ग्रन्थ प्रदान रूप से पश्चिकाओं के सम्बन्ध में लिखे हैं। इन ग्रन्थों में भारतीय पश्चिका जीवन के अध्ययन करने वालों के लिए पुनः काम्यी विषयगत है। ये ग्रन्थ सामग्री की दृष्टि से बुद्धकटिण जनुर्वापी और कुट्टनीमत से वय महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इनके अतिरिक्त अस्तुव वा मुग्धोपदेश भी एक महत्त्व काम्य है। सन्तुत के महावाक्या सप्तमतिषा और विभिन्न प्रकार के अनुवाच्यों में स्फुट रूप म पश्चिका जीवन सम्बन्धी वच बहुत लिखे गए हैं या मार्गिक हूच एव आचरणीय है। इधर एव विश्वाम् में सामदिव्यो को विषय की दृष्टि से विमलन करने अपन के रूप में 'पश्चिकाजुतगवह' नामक वच प्रस्तुत किया है।

कुट्टनीमत के नाममात्र सरकारण के अर्थन में और अनेकी अनुवाद बहुत पढ़ने हो चुके हैं। नाच ही शैल्य की समयमातृका के भी अनुवाद हो चुके हैं। अम्पाना भी विविधनाचरण में कुट्टनीमत वा वचना अनुवाद 'बनुवनी-साहित्य बन्दिर' बलवता से प्रकाशित किया है। इनका प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद

सहित संस्करण मुख्यतः तनसुखराम त्रिपाठी के सम्बन्ध वाले संस्करण के आधार पर तैयार किया गया है। हिन्दी अनुवाद में कवि के अस्तित्व को हिन्दी की प्रकृति के अनुसार तदनुसृत प्रयोग में उपस्थित करने का प्रयत्न है। भाव के निलार के लिए उर्दू के प्रचलित प्रयोगों को भी निःसंकोच भाव से रखा गया है। विषय पर टिप्पणियों में कवि के घास्त्रीय और लोकीय संकेतों को बोधवन्म बनाने का प्रयत्न है और विषय को सम्बद्ध और स्पष्ट करने के लिए मैंने उर्दू के साम्य सैलक मिर्जा रसबा (मख्तूम) लिखित उपन्यास 'उमराव आम' को धन-धन उसी रूप में उद्धृत किया है। उमराव आम बड़ा लखनऊ की एक विदुषी गमिका थी जिसके जीवन की घटना को उसी से मुक्तकर उसी के संदर्भों में मिर्जा रसबा ने यह अनमोल प्रन्वरत्न प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में भी कुट्टनीमत के समान ही वैद्यजीवन के शाश्वत तथ्यों और विविध उपादानों का काव्यात्मक और व्यावहारिक चित्रण है।

प्रस्तुत हिन्दी संस्करण में मैंने विभिन्न प्रतियों के पाठ-भेद को उद्धृत करना इसमिए आवश्यक नहीं समझा कि अब प्रायः तनसुखराम के संस्करण को बहुत कुछ प्रामाणिकता मिल चुकी है जो इस संस्करण का आधारभूत है। आवश्यक पाठभेद को मैंने प्रायः नहीं छोड़ा है।

कुट्टनीमत में अनुवाद करते समय नहीं नहीं जो मुझे कठिनाई हुई है वहाँ अपनी सीमाओं के कारण संकेतिकर प्रस्तुत करना मैंने उचित न समझा। किसी प्रामाणिक व्यक्ति के अभाव में 'सीखतान' का आशय सेना पड़ा है और बोहे में टिप्पणी में कठिनाइयाँ व्यक्त कर ही हैं। इसके बावजूद मैंने जहाँ तक विश्वास है यह संस्करण कुट्टनीमत के स्वरूप तक पहुँचने का एक उपयोगी और अपेक्षापूर्वक माध्यम होया। मुझे प्रसन्नता होनी कि कोई सहृदय विद्वान् अब मेरी कृपियाँ को संशोधन मुझे सूचित करने का कष्ट करेंगे। जहाँ मेरी गाड़ी अटकती है उसका उद्धार का भार विद्वानों पर है।

मैं करने आदरणीय मित्र श्री रामचंद्र जी भट्टाचार्य का अतिशय अनुसूचित हूँ जिसके कारण यह कार्य पूरा करने का मुझ अक्सर मिला। इसके लिए उन्हें धन्यवाद देना औपचारिकता मात्र होना। भट्टाचार्य जी ने कामगुरास के और कुट्टनीमत के बाराणसी वर्जन की बहुत अंश में मिलता-जुलता दिखा कर मुझे समझाकर दिया इस सूचना के लिए उनका मैं उपकृत हूँ। बाराणसी के विश्वनाथ पुस्तकालय के अध्यापक श्री इच्छान्त जी गार्हियाचार्य ने अनुसूचित करके तनसुखराम की टीका वाले दुर्लभ संस्करण को मेरे इस कार्य के लिए बहुत बाल तक मुक्त किया इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। महेश्वराम के मेरे अमिय मित्र

श्री श्रीधराम पाठक ने अनुवाद की पाण्डुलिपि तैयार करने में अनेकित सहयोग दिया है, मैं उनका आभारी हूँ।

मैंने इसमें बिन टीकाकारों (विशेषरूप से लक्ष्मणराव मन्सुखराम त्रिपाठी) विद्वानों और कवियों के नाम का उल्लेख किया है उनका मैं आभारी हूँ।

हालन्टनबम (पम्पामू)

अगभाय पाठक

२-९-९१

भीमखेराय मम

कुट्टनीमत काव्यम्



स जयति संकल्पमवो रतिमुखशतपत्रधुम्बनभ्रमर ।

मस्यानुरक्तसलनानयनान्तविलोकिन्त वसति ॥१॥

किसका निरासम्भान अनुपगन्भरी शलनाम्ना क मेरी क अयत्न का निरौक्षण है, अनो माया रति के मुग रूपी कमल को धूमन वाला मीठा, सङ्कल्प-रूप मन्त्र से उन्मत्त बर (अगत्यसिद्ध कामदेव) विजया हो ॥१॥

१-मस्तुत काव्य के प्रारंभिक भारतीय केंद्र का जीवन पर आधारित होने के कारण प्रेम क देवता भगवान् अक्षयशीर्षे कामदेव क प्रति कविद्वारा बहु जप जपकार मरणा प्रायश्चित्त है और अस्मिन् मी । अमेरु अर्थात् कवियों व भी अपन कविता कालों में कामदेव की ही वन्दना की है ।

'अनुरक्तसलनामकमन्त्रविक्राकम्'—यहाँ 'शलना' शब्द विराय रूप से जीवन चरना का पुरुषोत्तम स्त्री का शब्द है अर्थात् बरवाले । क्योंकि इन्हीं क कवियों में काम का विषय शब्द रूप से अभिव्यक्ति होता है बरवाली प्रकृति-मास अवपद् यद्युक्तों के 'अस्मिन्मात्रमिच्छ' शोचों में प्रीति की स्मरणता के विषय और बरवा मित मरणा है ।

अथवीर्यं दोषनिचयं गुणलेशे संनिवेशय मतिमार्या ।

कुट्टन्या मतमेतद्दामोदरगुप्तविरचितं शृणुत ॥२॥

शत्रुना, द्वार अथगुप्ता पर ध्यान न देकर एवं गुप्त का लक्ष्य रहा कर।
मी हा उठमे अरनी मति को प्रकृत कर दामोदर गुप्त द्वारा विरचित 'कुट्टनी'
क मत' (उपदेश) रूप म काव्य को सुन ॥२॥

अस्ति सलु निश्चिलभूतनभूपणभूता विभूतिगुणयुक्ता ।

युक्तामियुक्तजनता नगरी वाराणसी नाम ॥३॥

समस्त भू-भयवृत्त का अस्तित्वभूता परबन्ध क गुणो मे युक्त अज्ञानी अ र
विद्वानो मे सन्धि वाराणसी नाम की नगरी है ॥३॥

अनुभवतामपि यस्यामुपमांगान्कामत शरीरवताम् ।

शशधरखण्डविभूषितदेहलय बिल न दुष्प्राप ॥४॥

त्रिभु नगरी मे शरीरवारी अस्तित्ववृत्त समस्त उपमांगों का अनुभव करत
है तथाकि उन्द अश्र-परव न विभूषित शरीर (अथवा अथवा शत्रु) मे सीन
होना कुलभ नहीं है ॥४॥

अत्रविभूषितदेहा भूतिरता सद्गुणपरिवारा ।

धारस्त्रियोपि यस्यां पशुपतितनुत्स्यतां याता ॥५॥

१- 'पुत्रवर्ति शरीरों शीतं वा सा' इस अनुपलित क अनुसार जो सम्बन्ध होकर
पराई स्थितियों वा पर-वृत्तियों के साथ संबोधन करके शीतलदाय करती है यह ही
'कुट्टनी' कट्टनी है सम्बन्ध अथ प्रकृतित करव शत्रु है। कुट्टनी का अर्थ
पचाय 'शम्भुली' है अथवा सुग्रीव की मन्त्रे की बाल करने वाली मारी (श सुग्रीव
भसने)। पाठान्तर के अनुसार इस काव्य का 'शम्भुली मत' भी कहते है।
मापरी अथवा, अथवा की पुत्रवर्ती मन्त्रेयरा रत्नार्थी कुट्टनी मन्त्रेयमानुष
आदिभी कुट्टनी के पचायवृत्त शत्रु-वर्ती मे और अश्र-परव वर्णों मे प्रयुक्त
मिलते है।

२- वाराणसी क सम्बन्ध मे का पाठिक सिद्धय बहुत प्राचीन-काल से
इस देश मे प्रकृतित है कि वहाँ क विद्यापीठ नगरीय द्वारा अथवा मुक्ति का लाभ करत
है तथा शत्रु क बार अथवा मन्त्रे मे भीक हा जाल है। अथ के अर्थो प्रकृतित
आत्मिक मान्यता को इस काव्य मे उपविबद्ध किया है।

चन्द्र स विभूषित शरीर बाली, भूति स रत्न भुवङ्गा के परिवार स मुख
 पारंगन्यां भी यहाँ शिव जी की देह का सादर्य लाभ करती है ॥५॥

प्रतितुङ्गसुरनिकेतनशिलग्नसमुत्क्षिप्तपवनचलिताभि ।

मञ्जरितमिव विराजति यत्र नमो वैश्रयन्तीभि ॥६॥

यहाँ बहुत ऊँचे इक्ष-मन्दिरों के शिखरों पर पहराह हुईं घोर हवा न लहराईं हुईं बज्रबन्धियों (पटाकाइयों) स आकाश सञ्चलित हुआ जमा शक्ति
 दाता है ॥६॥

प्रविरतसंभ्रदबलाचरणलालक्तकद्रवाणितम् ।

स्यन्नकमलवनीलदमो विभक्तिं समुघातल यत्र ॥७॥

यहाँ पृथ्वीसन्त निन्दार प्लवती-विपती हुई अक्षलाद्या के गण-भङ्गा के
 आसपास के इक्ष स आश्रित होकर स्वयं कमलों की बाँसों की शाना धारण
 करता है ॥७॥

यत्र च रमणीभूपणरवधधिरितसकलदिङ्मनोभागे ।

शिष्याणां नाचार्यैरवधमवधार्यते पठताम् ॥८॥

और यहाँ रमणियों के गहनों की आकाश से समस्त दिग्भाग और आकाश
 इस प्रकार भर जाते हैं कि आचार्यजन गलत उच्चारण करते हुए अपने
 शिष्यों का धारण नहीं कर पाते ॥८॥

दिव्यधराधरभूरिव या राजति मत्तवारणापता ।

वह्नुलनिशोभवतीय प्रोज्ज्वलभिष्णघोपशोमिता या च ॥९॥

आ नगरी विन्ध्य पर्वत की बन-भूमि के समान शोभित है शिष्याचल की
 बन-भूमि मत्तवारण शक्ति (मत्तवारणों) स मरो है और यह मत्तवारणों धर्यात्

१-शिव जी की देह चन्द्र में विभूषित है केरवायें 'चन्द्र' नाम के चन्द्र
 पार स विभूषित देह बाली है; शिव भूति धर्यात् भग्न हमले है केरवायें मूत्र
 चक्रात् पेरन्यै में रत रहा करती है; शिष के शरार में भुङ्गों (पटा) वा परिवार
 बना रहता है केरवा के यहाँ भुङ्गों (फिरो) वा जमपट रहता है ।

२-इस प्रसंग में 'ब्रह्म पुराण' आप्याय तीन के धारणगी-कण्व का शम्भु
 पक्ष और ब्रह्मपुराणों की टीका में समता देना पर धारण्य दाता है । मन्मथ ह
 सुदृशनीय के लक्षणा स सिद्ध उम्प में परिधान करके यहाँ प्रसंग का से मिया
 है । उद्गहरण के शिष्य यह श्लोक पचाण होगा-

विभासिनीनां रशनास्वनन श्रुतिस्परा भाक्षणं सुशानाम् ।

शुषिस्वरत्नं सुरशो निराम्य हास्वान्विताः रत्नि सुदुसुहस्ता ॥११॥

(इस गूचना के लिए मैं अपने बहुत-से मित्र भी राम जीवर महाचार्य वा
 अनुशरील हूँ ।)

के
 १-
 २-
 ३-
 ४-
 ५-

छत्रों से युक्त है तथा जो कुण्ड-पत्र की राशि के समान शोभित है, राशि बमबमावे हुए नक्षत्रों में और यह दीप्तमान मन्त्रों में जगत् मन्त्र कर रहा है ॥८॥

यतिगणगुणसमुपेता या नित्यं छन्दसामिव प्रविति ।

वनपंक्तिरिव सशाला सुरुष्कसेनेव बहुलगन्धर्वा ॥९०॥

जो नगरी छत्रों का प्रविति (छन्दस्यात्म) के समान है, छत्रों की प्रविति यतिवा (पाद विष्णु के लयातुमूल स्वता), गन्धो (जगत्-मन्त्र आदि गन्धों) के (समुचित स्थानों में उपयोग आदि) गुणों से युक्त है और यह यति-गणा (सन्त-बहात्मा आदि) के गुणों (शान्ति आदि गुणों) से युक्त है। जो नगरी वनपंक्ति के समान है, वनपंक्ति शाला नामक वृक्षों से युक्त है और यह शालाघो (मन्त्रों) से युक्त है, एवं वृक्षों अर्थात् वृक्षों की सेना के समान है, सुरुष्क-मना में बहुत से गन्धक अर्थात् खेड़ होते हैं और यहाँ गन्धक अर्थात् गन्धक पत्रों का पाहूप है ॥९॥

तारागणोऽशुलीन प्रियदोषा यत्र कौशिका सततम् ।

गद्ये वृत्तध्ववन परगृहरोधस्तथाऽप्येषु ॥९१॥

जहाँ (सब लोग कुलीन अर्थात् राजधानी है) केवल तारागण अशुलीन (कु = पृष्ठी पृष्ठी में लौन वाशित नहीं) है। जहाँ (कोई शरीर = बुराई से भय करन पासा नहीं है) केवल उलूक पक्षी (कौशिक) दोष (राशि) के लता प्रती है। (जहाँ कोई व्यक्ति वृत्त अर्थात् लताधार का भङ्ग नहीं करता) केवल गद्य में वृत्त (= छन्द) का मंग होता है। तथा जहाँ बुराई के पर पर कोई रोष का रोष नहीं लगता केवल अथ बोद्धा (पत्ता बँक कर बुद्धा के श्रेष्ठों) में बुराई के पर अर्थात् परों, लाने का रोष होता है ॥९१॥

शूलमृतो व्यालस्या पदवेदिषु यत्र धासुवादित्वम् ।

सुरतेज्ज्वलनाक्रमणं दानच्छेत्ने मदध्वृतौ करिणाम् ॥९२॥

प्यानी लीग जहाँ शूल (विशाल) धारण करते हैं (न कि कोई शूल रोग धारण करता है)। जहाँ केवल वैशम्पय लीग मू आदि धातुओं के लम्ब में विराट् करत है (कोई भी वहाँ लय आदि धातुओं के लम्ब में वाद-निवाह नहीं करता)। जहाँ केवल सुरत के प्रमत्ता में अन्तर्गत आश्रित होती है (न कि कोई वल के अभिमान में अशुली-निम्नों पर आश्रित करता है)। जहाँ यह के उतर जाने पर केवल हाथियों के दान (मद-जल) का भङ्ग रहा है (न कि कोई दान-भाव का मंग करता है) ॥९२॥

तोन्नकरत्नं भानोरविवेको यत्र मित्रहृदयानाम् ।

योगिषु दण्डग्रहणं संघिच्छेदः प्रगृह्येषु ॥१३॥

जहाँ केवल स्वर्ग के कर (किरयें) तीव्र (तील) हात हैं (न कि राजा के कर = देव माग तीव्र अपात् व्यादा होते हैं) । केवल मित्रजनों के हृदयों के सम्बन्ध में विवेक (किसी प्रकार का भेदभाव) नहीं है (पर लोगो में विवेक वा विचार है) । जहाँ केवल सभी लोग दण्ड ग्रहण (कष्टिभारण) करते हैं (न कि निरपराध प्रजाजन कोई दण्ड प्राप्त करते हैं) । जहाँ केवल प्रपञ्चों (संस्कृत व्याकरण के प्रथम संज्ञा वाले शब्दों) में सन्धि (सन्धि आदि सन्धि) का भग होता है (न शीरो हाय सन्धिच्छेद अपात् शतों में सँप का मारना होता है न लोगों में मेची का भग होता है) ॥१३॥

सुन्दरप्रस्तारविधौ गुरवो यस्यामनार्जवस्वितयः ।

वीणार्या परिवारो द्विजनिलमेवप्रसन्नत्वम् ॥१४॥

सुन्दरी की प्रस्तार विधि (सपु, गुद बसों का जानने में निमित्त बनए गए विधान) में केवल गुद (गुद बसों) जहाँ अनाजन शृङ्गाररहित - इस प्रकार की टेढ़ी स्थिति में रहते हैं (परन्तु जहाँ के निवासी आश्रम-सूत्रा-करते हैं) । वीणा में ही जहाँ केवल परिवार (बीया बजाने का श्रंगुटीनुमा तार, मित्रराज) होता है (परन्तु लोगो में परिवार अपात् अरवाद-नित्या नहीं होता) । जहाँ केवल आश्रमों के शतों में अग्रजप्रता (अपत् प्रसन्न = मरिच का अपात्) रहती है (न कि किसी में अग्रमन्ता दिग्गार होती है) ॥१४॥

अनुस्मृतमटना सत्कविकृतस्मक्यु लोके च ।

रमणीयवने यस्यां माधुर्यं काव्यवन्द्ये च ॥१५॥

जहाँ कवियों द्वारा रचित रूपकों (दृश्यात्म्या) में अनुस्मृत कृष्णों की पटना अपात् अमुकार्य के शिष्यों के अतुरूप अभिनव होता है और लोगों में अनुस्मृत कृष्ण पटना अपात् एक रूप व्यपहार होता है । और जहाँ मातृक (मिथस, अपरा मापुत्र मामक मुष्) रक्षियों के बचन में और काव्य में होता है ॥१५॥

यस्यामुपवनवीथ्यां तमालपत्राणि युवतिवदने च ।

मत्तरप्रहाररहितं संनीवाद्येषु सुरतफलहेषु ॥१६॥

जहाँ तमालवन (शरीरों के पत्ते अपवा मरिच का निजक चिर) उपवन की वीथि में और युवतियों के मुग में रहते हैं । जनों के प्रहार की अपराज शीघ्रा आदि तन्वी वाय और मुग के कन्द दोनों में होती है ॥१६॥

नन्दनवनाभिरामा विबुधवती नाकवाहिनीजुष्टा ।

अमरावतीव यान्या विश्वसुजा निमिषा जगति ॥१७॥

इन्द्र की नगरी अमरावती जिस प्रकार नन्दन वन से अमिराम, विबुधो (श्यवाओ) म अशुषि, नाकवाहिनी (दबीसेना) से सविध है उन्ही प्रकार जो नगरी आनन्दप्रद बना स अमिराम, विबुधो (विद्वानों) स अशुषि, नाकवाहिनी (स्यग की नदी गङ्गा) से सक्ति होने से विषाणा के द्वारा उमार में माना दूसरो अमरावती बना दो गई है ॥१७॥

समुदास वाररामा मानसवसते शरीरिणी शक्ति ।

निःशेषवशपोपिद्धिभूपणं मालती नाम ॥२०॥

जब वाराणसी म मन्मित्र की शरीर धारिणी शक्ति रूप में ममसा पेश्याद्या म भूयस्य मी मामनी-नाम की एक वाराणसी निवास करती थी ॥ ।

तस्यां रागपतितनुरिव विलासिनी हृदयशोकसंघननी ।

आङ्गुष्ठेश्वरहृदया प्रालेयनगाधिराजतनयेव ॥२८॥

जिस प्रकार गङ्गा की दूध की दूध कर विलासिनी (विल मं निराम करो वाली अर्थात् मर्गों) क हृदय में शोक उत्पन्न हो जाता है उन्ही प्रकार उसे देखकर विलासी बना (कामुने) का हृदय शोक-मन्त्र हो जाता है । जिस प्रकार, दिवालय की पुत्री पामनी न ईश्वर (शिव जी) के हृदय को धारण कर लिखा था उन्ही प्रकार उमन भी ईश्वर (धमरवरो) क हृदय धारण कर लिया है ॥२८॥

गंसत्तभोगिनेत्रा मन्दरधरणीमृतो यथा मूर्ति ।

उपरि गता शूनानामधासुरगाश्रलेषेव ॥२९॥

(मनुष्य क मयन क समय जिस प्रकार मन्दरापन भोगी (नय, कामुदि नाम) रूप गण (मयन की दौर) म समस्त (कंसा) था उन्ही प्रकार मागी (रिवागी) बना क नय उमक प्रति ममक गहन है । जिस प्रकार अभासुर की गांध लगा शूनानाम (शिव जी क तीन शूलों वाले आसुर) के ऊपर स्थिति में उन्ही प्रकार यह शूनानाम (बिषयामी) की निरमौर की ॥२९॥

। तार अर्थात् मयु की स्त्री । मर्गिका पेश्या वाराणसी आदि शब्द भी उसके अर्थात्वाची है । इसके अतिरिक्त मन्मालवारी केाबोचिन मदिन उम कर् विलासी का न शब्द भी वरणा के अर्थ में प्रयुक्त होत है । य मय क अर्थान तापक है । अर्थात् जिस धर का मयन में निवास करती है उसे केा कहते हैं (केा अर्थात्नाश्रय-धमर) 'गन्धि' भी गण का ममक काजी स्त्री कहलाती है । 'मन्मालव' अर्थात् मय क द्वारा जी बना बनान काजी स्त्री । अर्थात् जो 'मय' काजी अर्थात् वाराणसी की कहते हैं अर्थात् जो वरन का विनय की कर्तु होती है ।

पेशनवचसा वसतिर्लीलानामावर स्थिति प्रेम्णः ।

भूमि परिहासानामावसयो वक्रकपितानाम् ॥२१॥

यह भी सुन्दर बचनों की बगति लीलाओं का आलम, प्रेम की स्थिति परिहासों की भूमि और वक्रोक्तिबाँ का निहास-म्यात ॥२१॥

सा शुश्राव सदाच्छिद्रवलालयपुण्ड्रदेशमधिस्था ।

केनापि गीयमानां प्रसङ्गपतितामिमामार्याम् ॥२२॥

किन्ती समय जब यह श्रवण उरग्वज मयन की छत पर पेंठी हुई थी तभी उसने शिरो के द्वारा श्रवण पर साँस आनी हुई प्रसङ्ग मान उस श्रावण को सुना ॥२२॥

‘यौवनसान्दर्भमदं दूरेणापास्य वारवनितामि ।

यज्ञेन वेदिसव्या कामुकहृदयार्जनोपाया ॥२३॥

“अपने बीवन और कमनीयता के मन् की दूर ही से तब कर वेस्वाया का कामुकी के हृदय आरपित करने के उपाय मालम करन आदिष्ट । ॥ २३॥

श्रुत्वाय विपुलजघना मनसि मासती चकार चिरम् ।

प्रतिसाम्प्रतमुपदिष्टं सुहृदेवानेन साधुना पठता ॥२४॥

विशाल जघनों वाली हस्त मासती आर्या का मुन कर देर तक मन में यह गुन्ती थी कि आर्या का पदत हुए हम मले आर्या ने मित की तरह ठीक मोठ पर उपदेश दिया है ॥२४॥

१- इसी मन्त्रक की चतुर्थी की 'वाहस्य' करने है । 'आपा ममगाता' में माधुर्ये स्थिति है -

अन्वमुत्तं दुर्वादो य विषयजन सा एव परिहासः ।

इतरन्वन्वन्मा वो धूमः सोऽयुग्मवो धूमः ॥२१॥

अपान् धूमरे के सुगंध को 'धुँबन' कह जाता है वही अगर मित के सुगंध नियमे तो 'परिहास' की आख्या प्रदण करता है ।

२- यौवनी होगा य व कह कर सुना कर पही गई बल का 'अपानि' कहत है । निमी बल का वाक्यात्मक होगा य कहत वो यौवनी अमन्तर अन्वज करती है बल इमे वाक्य का प्राण कहा है (अनोक्त वाक्यार्थितम्) । धूम यौवनी का उर में 'अपानेवर्त' कहते है ।

उदगत्वा पूच्छामो विकरालां कलितसकलसंधाराम् ।

यस्याः कामिजनौघो दिवानिधो द्वारमध्यास्ते ॥२५७

तो संधार के वृक्षान्ती को जानन वाली उक्त विकराला से जाकर पूछनी
है शिखरे द्वार पर रात-दिन कामुक जनों की मीढ़ लगी रहती है ॥२५७॥

इति मनसि सा निवेरय द्रुततरमवतीर्य धेरमनं शिखरात् ।

विकरालाभवनवरं परिजनपरिवारिता प्रययौ ॥२६॥

इस प्रकार मन में ठीक मकन के शिखर से कूट उतर, परिजनों से थिरी
पद विकराला के घर गई ॥ २६॥

अथ बिरलोत्सवदशनां निम्नहनुं स्पूलधिपिष्टिनासाग्राम् ।

उत्त्वणधुचुकलक्षितशुष्ककुचस्थानशियिलकृत्तितनुम् ॥२७॥

मालती ने आसन्दी (गरेदार आसन) पर बैठी हुई विकराला को देखा ।
उसके दाँव प्रायः गिर गए थे और छाग के बच्चे हुए बाल मुँह में बाहर निकल
आए थे कुहूनी मुड़ी हुई थी, नाक का अग्र भाग मोटा और बिरका हुआ
था, पंखे बड़े धुचुका से उसके लम्बे हुए स्तनों का पदा लगता था जिनके
स्मान का थम मूल रहा था ॥२७॥

गम्भीरारक्तदृशं निर्भूषणलम्बकर्णपालीं च ।

कृत्तिपयपाण्डुरचिकुरां प्रकटशिरासन्ततायसग्रीवाम् ॥२८॥

उसका आँख भीतर बही हुई और लाल-लाल थी । उसके कानों की
लकड़ी नूपुरहीन और लम्बी थी । कृत्तिपय केश पक गए थे । ग्रीवा लाप
दिगारं पड़ती नगी से भरी और अर्पिक रेखी हुई थी ॥२८॥

मिनधौतवसनयुगलां विविधौषधिमणिसनाभगलसूत्राम् ।

तन्वीमंगुलिमूले तपनीयमयी च द्यालिवां धयतीम् ॥२९॥

उसके दोनों वस्त्र उज्ज्वल और धुले हुए थे । उसने अमक प्रकार
की औषधियों और मणियों से बना गल रूप धारित्र के रूप में डाल रखा
था तथा पर अर्धुनिमूल से लान की बनी फाली मुदरी पहने थी ॥२९॥

१-पाचार्ये 'वेमेन्द्र' ने भी 'ममबमानुष' ने डीक इत्ये विपत्त-वृत्तता
वृद्धी का चित्र खींचा है—

अस्त्रियमग्निशिततन्त्री मीमात्रोदरदृष्टिच ।

शुष्कशर्भमन्तरङ्गाद्गातेष कल्पतमा ॥

गणिकागणपरिकरिता कामिजनोपायनप्रसक्तेश्याम् ।

प्रासन्ध्यामासोनां विलोचय्यामास विकरालाम् ॥३०॥

यह गणिकाओं में पड़ी थी । उसकी आँखें कामुकजनो द्वारा धरति उन
द्वारा में लगी हुई थी ॥३०॥

भवलोचय सा विधाय क्षितिमङ्गललीनमौलिना प्रणयिम् ।

परिपृष्टुश्लवाती समनुजातासनं भेजे ॥३१॥

मालती ने विकराला की जर्मीन पर फिर रत्न कर प्रशाम किया । विकराला
ने कुराससम पूछा । फिर मालती ने विकराला की आँखा में आसन प्रदत्त
किया ॥३१॥

अथ विरचितहस्तपुटा सप्रथयमासनं समुत्सृज्य ।

इदमुचे विकरालामवसरमासाद्य मालती वचनम् ॥३२॥

तब मालती अक्षर पाकर अगन आसन की छान हाथ जाड़ विनय
पूषक विकराला से बोली ॥३२॥

विदधासि हरिमकीस्तुभमहरिं हरिमगजनायममरेन्द्रम् ।

अद्रविणं द्रविणमिति नियतं मतिगोचरे पतितम् ॥३३॥

नित्यव ही तुम्हारे बुद्धिबाल में आकर यह हरि अपने कौस्तुभ रत्न को
गुण करने रथ के पोहो की, इन्द्र क्षय्य पेरारुठ की और कुबेर अगन पन की
द्वारा बैठे हैं ॥३३॥

अथमेव बुद्धिविभवं हृतविमवस्ते पटञ्चरावरण ।

वामुकमोकं वययति सत्रागारेषु भुजान् ॥३४॥

यही कामुक जन अगन विमव के (तुम्हारे द्वारा) हर लिए जाने में यह

बहनीं मुचहुच्छिद्र शरीरं चर्मवपनम् ।

अर्भगतजगद्भ्याजशित्ताशुभिषधरम् ॥

मुच्यदृष्टदार्पोपदशना भीषसाहतिः ।

प्रमबन्तुधन संस्थितास्त्रिता शुनी ॥

उज्ज्वलदना अक्षमीषा माजारलोचना ।

निमिता प्राणिनामहैरिष नित्यविराप्तिनाम् ॥

(चतुर्थं समय)

पुरा। कथं म तन नृक कर अन्न फं सुत्रा (सत्रागार) १ में मीजन करतं बुध
 नृशर बुद्धिमय की प्रथमा करतं है ॥३४॥

उपसंहृतान्यकर्मा घनवर्मा नमदाद्रियुगलस्य ।

सकन्नसमर्पितसंपद्यदुपेत पादपीठस्वम् ॥३५॥

जो कि घनवर्मा घन काम-काम छोड़ प्यं पर की सारी सम्पत्ति वा
 अर्पित कर नमशा (नाम की गणिका) के ठोना चरणा का पादपीठ^१ या
 चूड़ा है ॥३५॥

यदुपगतौ नयदत्त सागरदत्तस्य मध्यम पुत्र ।

प्रीणाति मदनसेना विधाय पितृमन्दिरं रिक्तम् ॥३६॥

जो कि सागरदत्त का मझला सन्तान नयदत्त पिता का पर मुना करत
 मदनसेना या शुभामद करता है ॥३६॥

यस्तीक्ष्णवर्णितचरणा मंत्रयति मृदुपुत्रनरसिंह ।

परितोषं व्रजति परं मृदु मृदून्पाणिमुगलेन ॥३७॥

जो कि मृदु का पुत्र नरसिंह मन्त्री के लीला म अर्पित चरणा का अरु
 दातो मे पीरे-पीरे सहसावा तथा परित्रोष का अनुभव करता है ॥३७॥

यस्मिन्निषेधितविभवो दीक्षितभवदेवपुत्रशुभदेव ।

निभरिसंतोषि नोऽभ्रति केशवसनागृहद्वारम् ॥३८॥

जो कि मन्त्रविषेधित का मन्त्रा शुभमय अन्तान पन दीक्षित पंडित कर
 नृकारे जान पर भी केशवसना या दरवाजा नहीं छोड़ता ॥३८॥

अन्या अपि कामिजनं साधारणयोपितो यदाक्रम्य ।

विदधति वर्षंशेषं त्रिभुवनमेतन्मवोपशानाम् ३९॥

जो कि साधारण अंगुल भी कामुकता को पीठपर उभे कपट्योप (मिक
 तन अन्त का करदा भर शरीर पर पचा हुआ) कर आसती है पर नर गुहारे
 उपद्रवां का ही समकार है ॥३९॥

१-पादपीठ-मूक प्रसार । मयन या संप्र पराजित्वात्मना । आश्रयण
 रूप प्रसार के बाद के लिए 'मन्त्रार्थ' प्रथम जग ह । आश्रयण। उपे संश्री व नि
 मणिर है ।

२-पादपीठ-मूक प्रसार की पीछीनुमा गुणगुण म चया । कथं पर्यग के
 मोक्ष रानी जाती थी । कामुक चरणा । साधो गणिक वि गणिका का मम मन करके
 उमशा कारीर कन बुद्धि । अर्थात् वर्णन पर अथ उमके गाय वीर्य क कथपना
 नहीं रहा बल्कि कथं कारीर क अंग पर पचा रहता है ।

ह्यनान्वयजमानो गुणहीना रोगिणो निराकृतयः ।
उपसेविता मयापि प्रबन्तीकृत्तरागसाष्ठवं पुरुषा ॥४०॥

मैंने भी जीव कुत में उनमें गुणहीन यही सब ब्रह्मन् पुरुषों की
मया प्रम का सिखाया करने की है ॥४०॥

मात किं विदधामो हतवातुर्त्रिमतामियोगेन ।
नासादयाम इष्टं निजतनुपथ्यप्रसारकेणापि ॥४१॥

हे माता, क्या करें मुझ विधाता की एसी उच्छ्ठी चाल है कि अपनी ज
को याज्ञार में (विद्यी के सिद्ध) उद्धाने पर भी हमें इस का मान न
होता ॥४१॥

तत्कुरु मातरनुग्रहमिषत्स्व ममापि वहिनो भोग्यान् ।
तपो च बेशषेष्टितमर्नासिजशरजालपातनोपायान् ॥४२॥

तौ हे माता मुझ पर अनुग्रह करा मर भी हीन पुरुषों की तथा उन
पथ और छात्ररत्न एक काम्येव के वाग्नी के जाल में उन्हें गिरान के उपाय
जाओ ॥४२॥

इति गिरमुदीरयन्तीं सप्रेमामृश्य पाणिना पृष्ठे ।
रुधिरखयो विकराना रुधिरावृत्तिमानतीमूचे ॥४३॥

मैं विपराजा मनाहर छाहृति वाली मापती में प्रमदबद्ध जमी वीर
मपा करके बोली ॥४३॥

अथमेव तपमानस्मरनिर्गतघमघर्निजाकार ।
चिकुरभरत्स्व मुञ्चति धामिजनं विशरीरुते ॥४४॥

"मुझी जन्म हुए नाम्द के शरीर में निवृत्ती हुए प्रमदका की
छात्रर वाता तम यही पेशनाग कामुत्रन का श्रमना शक बना लेता
ह ॥४४॥

अथमेव ते पृथोत्तरि मन्दोत्तमितभ्रुविभ्रमाधार ।
अथरीवगेति घोरा मधुरस्मितमृभगवाणितविशेष ॥४५॥

हे जीव उदर कभी ह लक्ष्म ज्जगति भांगी कानी शृद्धर सेनाओं में
मरी भीती मुझमें के साथ एक नाम हय की गरी मीनद विमान वि
जनों का भी भूषण गी ह ॥४५॥

इयमेव दशनकांती रतिकान्ताकूसमतितरा कुस्ते ।

श्रुतिपयमप्युपयाता नियतं तव कामिनां मनसि ॥४६॥

यही ठरे मुक्त की कान्ति की कृपा भवण करके कामुकजन मयनाकुल हो जाते हैं (दिलने के बाद की स्थिति क्या होगी पता नहीं) ॥४६॥

इयमेव दशनपंक्ती रुचिराचिरकान्तिधाम समकांति ।

उत्पादयति नितान्तं तव ममयदाहृवेदनां पृसाम् ॥४७॥

मुम्बर पिबली की लड़ी के समान कान्ति वाली यही ठरी दन्तपंक्ति पुरुषों की कामजनित दाहवेदना की अधिक-अधिक उत्पन्न करती है ॥४७॥

इदमेव समुक्षपितं लीलावति विजितपरमृतध्वनितम् ।

तव निश्रोपमुर्जंगव्याकथणसिद्धमंत्र उच्चरितम् ॥४८॥

द हीसाआ वाली, कोकिल के स्वर को फगप्रित कर देने वाली यही ठेरी आवाज समस्त मुञ्जला (धरों) श्लेष से विरजनी) की अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए उच्चरित सिद्ध मंत्र है ॥४८॥

इदमेव मकरकेतननिकेतनं स्तनयुगं तवामोगि ।

भोगवति भोगसाधनमपरोपायग्रहा व्यर्थम् ॥४९॥

* है विहासश्लोक, कामदेव का निवातभूत यही ठेरा विशाल स्तनयुगल मुन्नों का साधन है, अब दूसरे उपायों की मदद करना व्यर्थ है ॥४९॥

इदमेव बाह्ययुगलं मृणालसुन्दरं तवामोगि ।

यस्य न जनयति मदनं क्लृप्ताङ्गवभूषणं सुतनु ॥५०॥

दे भेष्ट भाषों वाली है सुतनु, कमलनाल की भाँति कामल, बलपथारी यही ठेरा बाह्ययुगल किमफ काम की उत्पन्न नहीं करता ? ॥५०॥

अयमेव मध्यदेशं कन्दपविशरकरणाचतुरस्ते ।

प्रकृशोऽपि शरीरवती दशमीं प्रापयति ममयावस्थाम् ॥५१॥

कामदेव की आवाज के वासन में चतुर यही ठेरा बहिर्भाग अधिक धीन्य होकर भी शरीरपथी का काम की दशम अपग्या (अर्थात् मृत्यु) तक पहुँचा देता है ॥५१॥

१-अर्थात् जिन प्रकार अधिमुचिदक का मरेरा मन्त्रोपचारण के द्वारा मनों को आकृष्ट कर लेता है उसी प्रकार वह तेरी आवाज विरजनी को आकृष्ट कर लेती है ।

इयमेव रोमराजि संकल्पजचापयष्टिगुणशोभाम् ।
 दधती विदधाति तव स्मरसायक्यत्यविक्रवान्पून ॥१२२॥
 कामदेव की चापयष्टि के गुण (शोष) की शोभा धारण करती हुई यही
 सेरी रोमपंक्ति जबाना का कामदेव के बाणों से ब्याकुल कर डालती है ॥१२२॥ ।
 इदमेव च पूयुजयनं कसघौतशिलातलाभिरमणीयम् ।
 तव तरणि घशोकरणं यतिसंयतिनाशकारि करमोव ॥१२३॥

इस क्रम (हाथ का कनीनिका की ओर का हमली का किनारा या सूई) के
 समान ऊँच वाली, सुवर्ण के शिलातल की भाँति रमणीय एवं विशाल यही
 तव जपन जबाना का कशीकरण और यतिवना के सयम को भंग करने वाला
 है ॥१२३॥

इदमेव तवोख्युगं रम्मास्तम्भोपमं मनोहारि ।
 वद सुन्दरि नामिमत्तं मदनज्वरशान्तये कस्य ॥१२४॥
 हे सुन्दरी तू ही वह केले के लम्बे त्रेखा मन को हर लेने वाला यह तेरा
 ऊँखुगल कामज्वर के ताप के शमनाय किने अभीष्ट नहीं है ! ॥१२४॥

यौवनकल्पतरुस्ते क्लकलताविभ्रमं सुवृत्तमिदम् ।
 जंघायुगलं नेच्छति कामफलप्राप्तये क इह ॥१२५॥
 तरे यौवनरूपी कल्पवृक्ष की क्लकलता रूप यह पछे हुए तरे जंघायुगल
 को यहाँ काम रूप फल की प्राप्ति के लिए कौन नहीं चाहता ! ॥१२५॥

निर्जितदाडिमरागं विप्रितस्थलकमलिनीविलासमिदम् ।
 तव घरणस्तरौजयुगं कस्य न मानसमलंकुस्ते ॥१२६॥
 हे तरुणो, दाडिम की लाली को जित लेने वाला एवं स्थलकमलिनी क
 विलास की पराजित कर देने वाला यह तरा घरणयुगल किन्तु मन का झलटन
 नहीं करता ! (अर्थात् सब तरे तरुणों को अपने मन में धारण करते हैं, नित्य
 स्मरण करते हैं) ॥१२६॥

१-५३ से ५५ तक के तीन पद्यों में जबन ऊँखुगल और जंघा इव का अर्थ
 है। 'जबन' ली का अर्थोपद (करपणी पहनन का स्थान) होता है अर्थात् जा
 करि या करार कीसे पुरीकर्ता प्रवेश है वद 'जबन कदलाता है। 'ऊँख' पर के मोद
 वाले रत्न के ऊपर का भाग है और जयम कीसे का मुख्य पपम भाग जंघा कह
 जाता है।

ह्येषयति वारणोद्भ्रं हसं हसति प्रयातमिदमत्र ।

तव लीलावति ललितं यूना हृदयानि मन्नाति ॥५७॥

३ लीलावती बाली यही तंग गमन परासन का ललित करता है, उस की खिल्ली उगता है और बालों के हृदय का मंत्र चलाता है ॥५७॥

तदपि यदि ते कुतूहलमवधानं संविधाय तनुमघ्ये ।

भ्राकणय नथयामि स्वदुष्टिविभवानुसारेण ॥५८॥

३ हीन का भाग बाला तथापि यदि तुम्हें कुतूहल है तो प्यान रख मुन, मैं अपनी दुष्टि के विभव के अनुसार काठी हूँ ॥५८॥

स्वीकृत्य नाथप्रथमं नृपसेवकभट्टमूनमतियज्ञात् ।

स्वाधोनामतिविपुलां यदि सम्पत्मीहसे सुतनु ॥५९॥

३ मुनयु यदि नृ प्रथम धन-सम्पदा का सम्पत्त करना चाहती है तो पहले राजकर्मचारी का काम के को फोड़ना शुरू करना ले ॥५९॥

प्रत्यासन्नग्रामे स्वयं प्रभु पितरि नित्यनटकस्थे ।

भट्टसुतरिचन्तामणिराकृष्टो भवति नियमेन ॥६०॥

(नसका) पितृ भट्ट हमेशा राजा की छावनी में रहा करता है और पर नारायण के गाँव में सुत मार्गिक बन गया है (इत्यभिष्ट) बटी भट्ट पुत्र रूपी चिन्तामणि निरन्तर ही निरन्तर आयागा ॥६०॥

शृणु तस्य चाच्छासिनि वंशप्रहृषणं च चेटितं वैध ।

निपतति न यथा तूण प्रियसुरभिकुसुमधारासनप्रसरे ॥६१॥

३ सुन्दर इतने बानी, शिस्त रि यह भट्टपुत्र शाय ही धमन्त के मग्य कामदप के धनु के मोड़ में आ गिरगा उमरक पप धार धानरग्य पहती ह मुन ॥६१॥

स्यूलम्थापितधुलकधचागुसमात्रकेभविन्यास ।

लम्बध्रवणनिवशिनारपयकधन्तिदन्तपक्षिरच ॥६२॥

गमन धान निर की बोरी का मारी प्राग मर्षी परफ र ता है उगके बान परिधान में पाँच उगली मरफ है मर धरगा गिर गाँवों पर ग

१-निरुत्तरा का नामक है कि भट्टपुत्र को दामिल करता उग चिन्तामणि का पात्रा है उग २ मारी इत्यर्थे पूरी हो जाता है । प्रकृत (चन्तामणि) भट्टपुत्र का नाम है ।

रुम (आयुष्य) वन हुए शतां याला 'पंक्ति' नाम का अलङ्कार लगाए रहता है ॥६॥

करशास्त्रार्पितमुद्रिकचामीकरकण्ठमूत्रिकामण ।
परिमृष्टगात्रकुंकुमकिचित्पिजरितसर्वाङ्ग ॥६३॥

रुम का उगालना म अगुनी धार कर म मुषणय वर गयता र
अंगों में कुमुम क उषटन लग हान क कारण उअर मर अंग दूछ-वट
विज्ञान (रुगीत) गत है ॥६३॥

प्रविलम्बिकुमुमदामकगलमण्डनजानरूपकृतशोभ
अन्तर्निविलसिकथकतीरजिकवृम्भिकात्त्रिचणत्र ॥६४॥

पुला की याला उमक रल म लयता रहत ए एष मुषण क गतन र
शामिल रहता है। उअर उगान क भीतर शोभ धार मुषण गयती यनी नाम
धार्मि पसुए है ॥६४॥

नानावर्णविवेष्टितवहलशापाशत्रद्वन्द्वकथ
एवस्मिन्सखीटकमपरम्भिन्मीसपत्रकं वर्ण ॥६५॥

रग-विरग धुशों को धर कर बनाय गय बदन म उमन ध्यान काल री ग
रगा है। उसके एक कान पर 'दलवीरक' धा दूसर कान पर 'मानव' नाम
क अलङ्कार है ॥६५॥

उच्चण्डनकगर्भितकुंकुमपिजरितवस्तिपरिवान ।
स्यूलतरकाधवर्तकमाना ख गले दधानेन ॥६६॥

उसरा कर क पहनावा समरुधर मुनदला धार कुकुम क कारण विज्ञान
(नाम-पीला) रहता है। उसके पीछे-पीछे टनना नइ उअर याला कान्मूल मरु
बादक (पानगान से चलन काला पुषण) धरन गले में मोती शोभा की शोभा
की याला धारण क्रिये हुए रहता है ॥६६॥

१ अथवा 'मुष्ण' कथान 'शादक' नाम म प्रसिद्ध शिखारम उमर गता।
निर्मित लपनद्वय 'और लड' है अथवा 'महासु'पति' के अनुसार धूम विजय
विजय बना हुआ लपन द्वय धरों 'और लड' पर म समित न ट।
२- व दोनों कगामरण कथ कथमिद दो शूर है। मममल 'अग्नीट'
पान क धारें जैसा धार मीमपधर किता हुए क वर जैसा लसुधर हो। निरवय
ही व दोनों लसुधरों क रीति नाम है।

वृश्चिकरंजितकरच्छकरमूलनिबद्धशसचक्रेण ।

प्रथमवयस्त्वं भक्षता ताम्बूलकरंक्वाहिनानुगत ॥६७॥

उसके मूल में 'मैदरी' (वृश्चिक) लगाने से लाभ रहते हैं और वह अपने बाहुमूल में शङ्ख-चक्र बांध रहता है ॥६७॥

श्रेष्ठिवणिग्विष्टकितवप्रधानरञ्जस्य सुमहृतो मध्ये ।

शूलापालस्थापितकतिपयवध्रोस्वीठिकासीन ॥६८॥

सुम्य रूप से मेठों पत्तियों बिटों और धूर्तों की बड़ी महफिल के बीच में बेरयाप्यञ्च (शूलापाल) द्वारा साफ़ रूप हुए मोटे-मोटे गहरे पर बह मड़ का पुम बैठता है^१ ॥६८॥

उत्संगाफितसङ्करैयथातथभापिभिर्मदीदृत्यम् ।

विभ्राणैरनुजीविभिरविष्टित पंचपै पुरुषै ॥६९॥

उसके पास पांच छ छादमी अपनी कमर में तलवार लोते, म्यम की बकबास करने एवं अग्निमान से चूर लड़े रहते हैं ॥६९॥

१-सतसुन्दराम न इय कुरवक माला है । काय-धमाण क धमाव में सिक रूप बर्ण होने से कुरवक को 'वृश्चिक' मानना चिन्त्य है । एक पुनर्महास भी इसरी बहचान उगी मकर है । मैदरी क धर्ष में कुरवक का बह प्रयोग धर्ष के मूलत होने पर भी नि संदिग्ध बर्ण कहा जा सकता, क्योंकि मैदरी का प्राचीन महद्विष में उल्लेख नहीं मिलता । सम्भवतः मैदरी मुमसमानी पुग से भारत में आया बिदेसी पौधा है ।

२-यहाँ से कामुक की महफिल का एक चित्रण आरम्भ है । इसमें उपस्थित होने वाले दो प्रकार के लोग हैं एक तो व्यापारी जैसे मठ बनिध और दूसरे बरवागुरों के आश्रित रहने वाले जैसे बिद, क्लिष आदि । दोनों का अधिपत्य कामुक को पोट-कुम्भवा कर पच बँद सेवा है । महपत्र के बर्णन से कह सकते हैं कि यह प्राचीन काल के बरवागाामी शक्तिधर्मों का प्रतिनिधित्व करता है । हम आया के 'शूलापाल' शब्द का धर्ष सतसुन्दराम क अनुसार 'परयाप्यञ्च' है । इसका आगे भी हमें अन्ध में उल्लेख है किन्तु बंग डीकार भी बिदिबनाप राव से हमें 'रत्रयाप्यञ्च' कहा है । मरी समय में यह शक्ति मुत्र की तैयारी में अपनी आर से मत्राचट-बनार करन जाता है जो डीक पर मच बेरयाप्यमें में बहूँच कर मच को मच तरह की भीग मारपी प्रस्तुत करन का काम करता है ।

चतुरतरसेवकार्पितपृष्ठपरिक्षिप्तपूर्वदेहांश ।

मन्तव्यं तताम्यूलश्चोच्छ्वनकपोलकलितकरपर्णं ॥७०॥

यह पालाक नीसर क लिय हुए ठाकिए पर आय शरीर को डाले रहता है । मुग क भीतर साभूल रगन से उमक कपोल अर्धिक फूल बात है फिर यह अपने हाथ मल होता है ॥७०॥

अनपेक्षितप्रसङ्गं पुन पुन पठति सोमप्रतभ्रूकं ।

गाथां श्लोकप्राया भावितचेता यथातथाधीताम् ॥७१॥

प्रथम का प्रयास न करके आनन्दमय्य हा मीरे उठाकर प्रिये-नीम अर्पित गाथा-श्लोक क श्लोकों को बार-बार पढ़ता है ॥७१॥

विस्मयलोलितमौलिं पान्धु गतांस्ताडयन्साधेगात् ।

हा कट्ट साध्वसि वादैरन्तरयति परमुभापितग्रथणम् ॥७२॥

आश्चर्य से तिर डिलाता है, बगल बासों का रसावग क कारण ठोकरता है और 'हा' 'कट्ट' 'साधु' आदि शब्दों में मुभापित अर्थ प्रकृत हुए श्लोकों की विभ पर्तु-ता है ॥७२॥

इदमुक्तो रहसि स्या तातेन नृपो नृपेण सातोऽपि ।

इति पितुराविष्कृत्यो महीमृतं प्रणयविश्वासी ॥७३॥

श्री आ जी न एकमत में राजा म यह कहा और राजा न भी श्री आ जी म कहा इस प्रकार अपने शिवा और राजा क प्रति परस्पर प्रेम और विश्वास प्राप्त करता है ॥७३॥

पत्रच्छेदमजानन्मानन्वा भीशलं कन्धाविपये ।

प्रकटयति जनसमाजे विभ्राण पत्रकर्तृर्ये सततम् ॥७४॥

पत्र काट कर विपकारी करने की कला (पत्रच्छेद) का जानना अथवा न जानना हुआ वह अपने हाथ में हमसाराच काटने की कौशली लिए हुए यह लोगों में प्रकट करता है कि यह कला के विषय में कुशलता रहता है ॥७४॥

ब्रह्मोक्तनाट्यशास्त्रे गीते मुरजादिवादने चैव ।

अभिभवति नारदादीन्प्राचीण्यं महृपुत्रस्य ॥७५॥

महृपुत्र का कौशल ब्रह्मा क द्वारा^१ करे गए नाट्य-शास्त्र में, गान में एवं मुरंग आदि वाद्यों के बजाने में नारद आदि गान्धर्व शास्त्र के रचयिताओं को अभिभूत करता है ॥७५॥

वसुनन्दिचित्रवण्डकमुक्तायुधखड्गधेनुबन्धेषु ।

व्रजति पुरतोऽस्य नित्यं मार्गवर्ता परशुरामोऽपि ॥७६॥

वसु,^२ नन्द, चित्र, वण्डक (आदि कुस्ती के दास-पैठों में तथा) पर आदि मुक्तायुध और तलवार, खुरी आदि (अमुक्तायुध) के प्रयोगों में इनके सामने निश्चय ही परशुराम अपने मार्गवर्त (मृगवंश में उत्पन्न होने का अभिमान) छोड़ देते हैं ॥७६॥

वात्स्यायनमयमबुधं वाह्यं दूरेण दत्तकाचार्यम् ।

गणपति ममयसंज्ञे पशुसुख्यं राजपुत्र च ॥७७॥

बद कामशास्त्र में वात्स्यायन को अग्रिमत्त दत्तक आदि आचार्यों^३

१—यद्यपि वात्स्य शास्त्र के रचयिता भरत मुनि हैं तथापि मूल रूप में बद शास्त्र महा जी से ही भरत को प्राप्त हुआ वैसे कि स्वर्ग भाव्य शास्त्र में भरत ने कहा है—

‘भात्स्यशास्त्रे प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा पदुदाहृतम् ।’

२—परिष्कृत महाकाल अध्याय इन्द्र मुनि के पीतरे क समय में वसु आदि का उल्लेख करते हुए तबम्परास्य ने कोई प्रमाण उद्धृत नहीं किया है। इनका बर्ती-भेद के अर्थ में भी उल्लेख प्रमाणित नहीं है।

३—वात्स्ययन (मन्त्रभाग) कामशास्त्र के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं इन्द्र (इच्छित ?) कामशास्त्र के वैशिक अधिकरण के कर्ता माने जाते हैं और राजपुत्र कोई प्राचीन कामशास्त्रकार थे।

७७ में श्रीर ७८ में रसाङ्क के बीच एक और रसोक्त हो अन्य पादकृतिविधों में प्राप्त होता है—

“या प्राञ्जितोऽपि यत्नात्कनपी राधा मुतोददातिस्व ।

अपिचिन्तित वसुनर्धरस्याग गुणं हसति तस्यामम् ॥”

इमका अर्थ यह है—

राधा के पुत्र शिशु काल ने पद्मपूर्वक प्रार्थना करके बर अर्चना कबल हान में ही विना, बिना लोभ-विचारे पद की अर्चना करन जाता यह महृपुत्र उसके त्याग गुण का उपहास करता है।

को दूर म ही बाहरी और राजपुत्र को खुश आ कर देता है ॥७३॥

प्रपलायनैकहृदये यो विक्रममातनोति हरिणोऽपि ।

सिंहस्य तस्य शीर्षं त्रपाकरं भट्टपुत्रस्य ॥७४॥

और मैं मागन पर छले हरिण जैसे प्राणी पर भी जो अपना पराक्रम दिख
जाता है उस सिंह का शीर्ष भट्टपुत्र के सिंग लखन करने वाला दाता
है ॥७४॥

भासेटकेऽपि कीतुकमस्त्येव जयश्र चंचले लक्ष्ये ।

भट्टमयेन न खलति भट्टसुतं कित्त्वतिप्रकटम् ॥७५॥

शिंकार खने में भी इस शीक है हो, चंचल निशाने की दागने का
भी शीक है, किन्तु यह खलने वाला भट्ट के घर में प्रकट होकर नहीं
खलता है ॥७५॥

इति निजसेवकनिगदितरमणीयबन्धव्यवर्णपरितुष्ट्या ।

धन्तमुदितो ब्रूते मामेव खलीकरोतीति ॥७६॥

एन प्रकार खाने सेवक जन के रमणीय बपनों से परितोष धनुष करने
पर धन-हीन सुख होता है लेकिन कहता यह है कि यह मेरी मूठी नागेट
कर रहा है ॥७६॥

१—यदि न बाहुधारी के हाथ यह कहना कर कि पलकमाल हरिण पर पराक्रम
करने वाले सिंह का शीर्ष उनके सिंग लखान या व्याक्रमण हाथ भट्टपुत्र की
भीरता मूर्खता की है ।

२—इस कह सुने हैं कि यह का पुत्र के रूप में हमें प्राचीन 'रमिक' का यह
विश्व रूपने को मिला है । टीक इसी भाग के रमिक (बकाब) का उल्लेख मणिम
'उत्तरायण' में किया है—'घर में सुख । बसिंद मरहूम इनके विरक्त बरगने
के बारे में एक बड़ा हुआ इनके गर्भ के सिंग करीब कर दोड़ गये थे । घर
खाने खापक पूनूकेमाली (बसुक के बराबर मुम्बरातम) ममकन के पहरी
कहना खाने रहना था । बाल बकापा गया पूर बनथा गया । बुकेशर दोषी
पर पर लगी गई । ऊर्षी बोसी का रंगरथा रंग । बड़ पापरी का पराम्मा पहना
गया । यह सब बर सिंगों की दरबारदारी के सिंग किया गया था ।

खाने के इन्क में भी खापके कमात था । इमारिका सुद बनने सुद ही
उप बना कर गाने थे । सुद ही भाव बनने करते थे । और तो भी सुद या बर
का, सुद के बनना नूब बनने थे । पारों ने नूब ही बना दिया था ।

कृतमत्कृतमत्स्यं प्रस्थान का च नर्तकी भद्रा ।
विटस्तटक का नृत्यति काहुलभरतोदितक्रियया ॥८१॥

कौन कौन प्रस्थान (नाट्यादि शास्त्र का विषय) माह्वम है कौन नर्तकी भद्र (या साष्ठी) है, नाट्यानाम बोद्धल और भरत क कहे हुए प्रकार के अनुसार विटस्तटक (शब्दटक) म कौन नाकती है ॥८१॥

बतम से बरोक-येक रूपया चला जाता या । कपनक के ककके सुरापोलाक, परापसन्द, मुक्तपोरे आपके साथ रहते थ ।

'रममहन भाग' में रमिक दाने के लिप् अपेक्षित सामादी का चपका चित्र है जो महपत्र के बणन के बहुत अनुकूल है—

आपादलम्यविभूत कनकरोम्भलाप ट वाससी विशद कमल सूक्ष्म सूत्र ।
अरा च तुल्यचनुरसतनुः पटोऽयं १क्षतो विचित्रपरिधि नैवकुमुमभीः ॥
कस्तूरिकर तिलरत्नाहित माननान्त इस्ता च सापु रचिता कनकतनुं लार्थ ।
पाटीर पङ्कसरसे च मुञ्जालराल जातोऽस्मि इन्त रसितयव हम्मम गयः ॥

१—नर्तकी का ककम भरत म ह्यम प्रकार लिखा है—

याचनादि गुणोपेता मृचगीत विचक्षण ।
मना प्रगल्भा च तथा रपचरलम्बाभितभसा ॥

गमागतासु नारीसु रूपमाचन क्यतिपु ।
म इक्षत गुहस्तुस्या नर्तकासा प्रदीतिता ॥ (२५।३३-३४)

२—विटस्तटक (या शब्दटक) —विटस्तटक मम्मम है काई सुचरला परिभाषिक शब्द ही चरम्पु संस्कृत टीकाकार तनमन्वरात म प्रमाण म मिलने के कारण हमम शब्दार्थ यह जगता है कि यह सुचभद् जो पिटी (मकली) द्वारा 'शब्द' अर्थात् काकचित हो । प्रमाण के अभाप में ही अर्थ पर मन्वाप करना पकता है । बादम्पर 'शब्दक भी धामक वा' है शब्दक शब्द क समरूप होने से हमरा अर्थ 'बीरादा' करना और यह कहना कि बीरादे पर कौन नाच मकती है । यह अर्थ भी कपयिन् मान्य है । ही शब्द से कुरता वाट 'शब्दक' ही माना है और उगे एक प्रकार का गेपकाण' कहा है और प्रमाण उद्धरण करते हैं कि यह मन्पोरक प्रयोग विशिष्ट एक उद्धरण प्रदर्श—

'संख्या समस्त पत्युर्गुदुक्तं पृष्ठ मुप्यत ।
मदुर्यं च क्यपिद् धूर्तपारतम् गुमुटस्तु ताः ।' (बाण्यानुरागत)

कीदृक्त्वं लयमार्गं घेनुवरकिने च भाणके कीदृक् ।

प्रोत्खणकादावेदं पृच्छति नृत्योपदेशकं यस्मात् ॥८२॥

यह इस प्रकार कनकपूजक नृत्य के उपदेशक आचार्य से पूछता है कि तुम लय के मार्ग में शुक के द्वारा रचित काल में तथा प्रह्लादक आदि में कैम हो ? अर्थात् प्रश्नकारी उनमें कहीं तक पहुँच है ॥८२॥

सुमनोमालां कण्ठात्सादरचेता ददाति नर्तक्यै ।

अपनीय स साम्बूलकमनवसरे साधुवादं च ॥८३॥

आकर मुक्तचित्त वाक्सा यह ताम्बूल वाली पूज की माला को कण्ठ से निकाल कर नर्तकी को अर्पित करता है और बिना अचर के 'साधु' 'साधु' कहता है ॥८३॥

भुजपतनगा प्रसंस्थितिसालित्योद्बहनपार्श्ववमितानि ।

अनयैव निर्मितानि स्थानकशुद्धिश्च चातुरठ्यं च ॥८४॥

भुजपतन, गात्र संस्थिति, लक्षित, उद्बहन पार्श्ववमित स्थानक शुद्धि और चातुरठ्य नृत्य के इन प्रकारों को इसी से तो बनाया है ॥८४॥

१-सकामा (लभमार्ग ?) शुक का प्रसंग के आचार्य पर 'लभ' का 'लभ' बनाया गया है, जो उचित है । 'लय' ताल के बीच का शुक मन्त्र और विलम्बित काल है । 'तम' वाचने के समय गता वचन की । 'पा' का काल से माल या निर्धारण है ।

धेनुक—यह कीदृ गीतरार आचार्य से ।

पृच्छति—कल्पि उपदेशक के भेद के अर्थ में यह प्रसिद्ध है तथापि प्रत्युत में शुक की वक्ता क करस तनमुत्तराम से इमम योगिक शय शून्य किया है प्रदर्भ में शुक का बलन हो अर्थात् ।

२-मुञ्जव—विष्टेर निवर्तों से दावी का संज्ञात्मक प्रमा । गात्रय रथ त—पत्नी की विलम्ब स्थिरता कभी कभी शुक में किमी बलु को मिर पर रथ कर माफ्ये है बमाल यद् होता है कि शून्यराल में भी शरीर का स्थिरता के कारण यह शुक गिर कही पाया । साहित्य—'मात्रविरा नमिप्र' में मन्मथन इने ही 'नीयक' कहा है—

'ततः प्रविशत्याचार्या भक्ष्यमायाङ्गं साधुवा मासावक'

कैसा कि इमरा मरण अर्थात् है—

अनुष्पर्णापचलतामगासां समपादताम् ।

अतिपूर्वर रीर्षामकरठानां समपात्ताम् ॥

प्रविभक्तैर्भावरसैरमिनयमङ्ग या परिक्रमैश्चित्रै ।

रम्भामप्यतिरोते किमुतेसरनर्तकीलोकम् ॥८५॥

यह रूपने अलग-अलग भावों और रसों से नई भक्तियों (अवाद्या) से तथा आश्चर्य करने वाले आवतनों (परिक्रमों) से रम्भा की मो अभिभूत करती है फिर दूसरी मृत्युशोक की नर्तकियों की बात ही क्या ! ॥८५॥

इत्यपसारकविरस्ताव विरतमुत्सायुकण्ठमत्युच्चै ।

वर्णयति भाषितात्मा लक्षितपदमात्रया पात्रम् ॥८६॥

इस प्रकार मातृक मन वाला यह नृत्य के अवसान में^१ इमेया बार से फूट को उछाल कर सिक ताल-भाषा का लक्षित करके नर्तकी की प्रशंसा करता है ॥८६॥

प्रायेण भट्टतनयो भवतीश्शिवेषेच्छित्तो भद्रे ।

तं भदनवागुरान्तः पातयति यया तथा व्रुम् ॥८७॥

हे भद्रे प्रायः करके मट्टपुत्र के वह बच और आचरण है, उन भिन्न प्रकार के काम के घास में गिराएगी उस प्रकार कहती हूँ ॥८७॥

रम्भा प्रतीक विभ्रान्ति—मुरसस्थ समुच्चतिट्ट ।

रम्भासोप तितामाहः। सौष्ठवं मृत्यु वेदिनाः ॥

उद्धरण—योगधारण सम्मरण यह नृत्य में योगों की उपर उदा होने की प्रक्रिया है प्रायः नृत्य में क्या होता है कि मारे शरीर के बोझ को कुछ हाथ पर रख लेते हैं। पारश्वस्थित—बागम्बी कम कर मुपना, (Side Movement)। श्यातक—शुद्धि—अथवा विनुरता शोपताह्वायः। वागुररय—कीर्तनार्थक योगों का अन्वयण। नृत्य के आरम्भ में यह स्थिति आती है किना कि क्या है—

त्रंगस्थ वागुरस्त्रले समपात्नी लताकनी ।

आरम्भ सर्वनृत्यागामेतत् सामाम्य मियते ॥ (कम्पनरात्रीय) ।

१—यहाँ अथवातरक का प्रयोग सम्भव है नृत्य के विराम होने पर विराम नृत्यक या बतकी के निगमननृत्यक गीतसंग्रह है।

धतुरा प्रागल्भ्यवती परचित्तज्ञानकौशलोपेता ।

योग्या तस्मिन्दूती वक्रोत्तिविभूपिषा प्रयत्नेन ॥८८॥

जो वृत्ती धतुर, वीठ, दूतरे के चित्त की जानने में निपुण और बुद्धि
बर्ध करने वाली हो, उसे प्रयत्नपूर्वक उसके पास लगा देना चाहिए १ ॥८८॥

समुपेत्य तयाञ्चसरे साम्बूलं सुमनसश्च वक्षेत्यम् ।

अभिघातव्यं सुन्दरि मकरध्वजदीपकैर्नैर्चने ॥८९॥

हे सुन्दरी, वह वृत्ती उसके पास समय से पहुँच कर ताम्बूल और फूल के
उपहार अर्पित कर इस प्रकार अमीरीक वचन वाले ॥८९॥

जमसहस्रीपचितैः पुष्पचयैरश फलितमस्माकम् ।

यत्सर्वं नयनानन्दन नयनाञ्चसरं समेतोऽसि ॥९०॥

हमारे हजारों फलों के सज्जित पुष्पसमूह आदि फलित हुए कि जो हे
नयनानन्दन, हम आँसुओं के खाने हुए हो ॥९०॥

षाट्कममनुरागं प्रणयस्वी विरहजनितशोकांतिम् ।

प्रकटयसि वाररमणो नटीय शिखाभियोगेन ॥९१॥

(अभिनय करने वाली) नटी के समान बेरपा-शिखा में निपुणता के द्वारा
पर्यन्तपूर्वक अनुराग स्नेह, शीष और वियोग में उगम शोका के कष्ट पर्य
वृत्ती है ॥९१॥

प्रवयसि शीघनशानिनि ह्रीनकुसे सस्कुम्भसूते च ।

रोगवति रद्व्यारोरे समक्षिता योगिनश्च गणिकाश्च ॥९२॥

बूढ़ और जगन में, शीघ और कुम्भदान में, रोगी और स्वस्व शयन

१—वृत्ती के गुण—

पटुता धृष्टता शैतीमितसत्त्वं प्रतारणम् ।

देशत्रसलसता चैव दृतीदस्य गुणा यताः ॥

मासली मापः में नृत्तियों के गुणों का उल्लेख इस प्रकार है—

चास्थेषु निष्ठा सहजश्च घोषः प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वार्या ।

वसलानुरागः प्रतिमानवत्समेते गुणाः अमबुधाः क्रियायु ॥ ३१११

बाले मे यत्प्री और गच्छिकाए दोनो बरबर नितबाले (अथात् मेभाब रहित) होत है ॥६२॥

उपधरिसाप्यतिमात्र पण्यवधू क्षीणमम्पद पुस ।

पातयति इशं व्रजत स्पृह्या परिधानमात्रेऽपि ॥६३॥

अधिक मात्रा में (इत्यादि द्वारा) मेवित होकर भी बस्या (स्पृहधू) जाते हुए, क्षीण नगति बाले पुरुष के शरीर के अल्पमात्र पर भी सततवश नजर रखती है ॥६३॥

इत्थं इदतरवासितमनसां पु सामसाम्प्रतं पुरत ।

वेशविलासवतीनामशरीरशरव्यथाकथनम् ॥६४॥

उसी स्थिति में उन पुरुषों के आगे जिनका मन इदतर वातनाम्ना में थावित है परशास्त्रों की कामजनित ध्वजा के सम्बन्ध में कहना अतामिक है ॥६४॥

कवलमगणितलाघवदूरपरित्यक्तभीरतामरणा ।

मुखरयति मां दुराशादग्धसस्त्री तेन कथयामि ॥६५॥

कवल दुराशा नाम की अग्ध सस्त्री जो हस्तकायन की परमाह न करके अथ के गहन की विस्तृत आत्मा पृथ्वी है मुझे बाधास्त कर रही है इसलिये कहती है ॥६५॥

हृदयमधिष्ठितमादा मासत्या कुसुमचापबाणेन ।

धरमं रमणीवत्तम लोचनविपर्यं स्वया भजता ॥६६॥

मासती के हृदय में परल कामनेत्र अधिष्ठित हुआ, बाद में हे रमणी-वत्तम ! उमरु साधन गोचर शत हुए तुम अधिष्ठित हुए ॥६६॥

दाणमुत्फल्ग्वित्ताङ्गी दाणमुल्वणदाहृबेदनामसा ।

दाणमुपजातोत्कम्पा स्वेदार्ववपु दाणं भवति ॥६७॥

कल्प ही में उनके आँसुओं में रोयाश ही जाता है, दाण ही में तीव्र दाहज नग-पन्ना की शशा हा जाती है कल्प ही में करवरी शत्रु लगती है और धरा ने में वह पत्नी । में लज्जित ही जाती है ॥६७॥

मुहुर्विमावितकार्या मुहुश्चिन्तधीरभावमत्युच्चै ।

रोदिति गायति च पुनः पुनश्चमीनावलम्बिना भवति ॥६८॥

कमी हा उमडा इसी विस्वाइ नही बनी कमी पीरता को छोड कर और म रान लगती है, फिर गान लग जाती है और फिर पुन हा जाती है ॥६८॥

पतति मुहु पर्यङ्के मुहुश्च परिजनस्य मुहुश्चरवनी ।

किसलयकल्पिततल्पे मुहुश्चर्मसि मुहुश्चरसंतप्ता ॥६९॥

काम स सदत वद कमी पलग पर कमी परिजन की गाठ म कमी बनीन पर कमी फलप की बनी संभ पर और कमी जल म प जाती है ॥६९॥

महिषीव पंकदिग्धा हंसोव मृणालवलयपरिवारा ।

मुभगमयूरीवासा भुजंगविद्धेपिणी जाता ॥७०॥

इ मुभग (चन्दन-रूपगदि का लक्षण करके) यह कमी कदमलिता महिषी की मति कमी कमलनालो के मलय (कटक) का परिधान करके (कमलनाल के गमूद में विगहन वाली) इसनी की मति और कमी (विटकनी) मुबल्लो से हप करन वाली धागनी की मति हा जाती है ॥७०॥

कन्दलोचम्पकचन्दनपङ्केरुहनीरञ्जारघनसारम् ।

मुन्दरशयवस्त्रोस्तेनो शान्त्यै मदनहृतभुजस्तस्या ॥७१॥

इ मुन्दर कन्दली चन्दन, कमल पल हार कर चन्द्रान्त मयक म उमडी मन्नादि को शम्भ नही कर पाते ॥७१॥

घनसारय घनसारं बुरु हारं दूर एव नि कमलै ।

घनमनमानिमृणालैरिति वदति दिवानिशं वाला ॥७२॥

दिन-रात बह धाना इम प्रकार प्रभाव करती रहती है—भगी 'चूर ह्येधो, हार दूर करा, उमला म काम क्या ? कमलनाल मय है ॥७२॥

१—श्री विद्विनाथ स्वयं च 'मुहुश्च' शब्द को शयधर कमल या चन्द्रान्तमणि का निरूपण माना है 'मुभग' इत्युपर के 'मुभग' शब्द का मति भद्रपुत्र का मन्त्रोपन होना चाहिए । चन्द्रया कमी के चपप्यार्थता का मय निरूपणता और प्रगल्भ होगा ।

संकल्पैरुपनीतं स्वामन्तिकमुल्लसन्मनोवृत्तिः ।

इदमालिगनि परवात्स्वमुजापीडेन याति वैलक्ष्यम् ॥१०३॥

कल्पनाओं के पल से गुम्ह नबदीक लाकर वह भीतर मन में प्रकृत हो हुम्ह आसिद्धन-याग में कष्ट सेती है, पीछे जब करने हाथों का संघटन होता है तब वह सगिन् हो जाती है ॥१०३॥

कुसुमामोदी पथना पिककूञ्जितमुञ्जसार्धरसितानि ।

इयमियती सामग्री घटिता कामेन वद्विनायाया ॥१०४॥

फूला की गुग्गुली पाली हवा, कोरिल की कूक और प्रमर-समूह की गुग्गुली इतनी सामग्री मिला भी न उबक बिनाश के लिए ही रखी है ॥१०४॥

अथला वलिना नीता दद्यामिमां मकरधेनुना रक्ष ।

आपत्पतितोद्धृतये भवति हि शुभजन्मना जन्म ॥१०५॥

बलशाली कामदेव न तब अथला को रक्ष दद्या तब पशुधा दिया है। तब उबकी रक्षा कटे। कनाकि विरहित में पके प्राणियों का उबार के लिए ही शुभजन्म पुनर जन्म लिखा करते हैं ॥१०५॥

नो गृह्णति यथार्था अविजनेर्निगदिता गिर प्रायः ।

मालत्या गुणलेष्टे शृणु धृष्टतया तथापि कथयामि ॥१०६॥

प्रायः प्रायः जनों की यथायुक्त बातें लाग प्रदण नहीं करते हैं तथापि पृथक्-पृथक् मालती के गुणों का विधि उल्लेख करती हैं (हवा करके) मुनी ॥१०६॥

धास्फासयती नूनं धनुरतनो पौसुमं रजः पतिष्ठम् ।

संगृह्य सा सुगात्री विरवसृजा निर्मिता तेन ॥१०७॥

निश्चय ही कामदेव पर शरणा पशु आश्रयान्न करने लगा तब उसके पूरक की पूरक गिरी और माला में उभरे परीर कर उग शीमन माली, मालती का निर्माण किया ॥१०७॥

उपहसति गिरिसुताया लावण्यं येन सततलसेन ।

न द्रवतामुपनीत भोगान्द्रविभूषणस्य दहार्धम् ॥१०८॥

यह (मानवी) पवती क लावण्य का हसी उड़ाठी है, जो (लावण्य) हमरा लगा रह कर सपरान्त क गहने धारण करने बाल शिष जी क आप शरीर को प्रकित नहीं कर सका^१ ॥१०८॥

शरावरयिम्यार्धंगता क्षामामिव सैहिकेयवदनस्य ।

अलिफलनोलकुटिलामलकावसिमलिकसनिधौ वहति ॥१०९॥

यह शरु क गुण को चन्द्रकिम्ब क क्षाम भाग पर पनी क्षामा की मीन क्षमने सलाट के समीप अमर-अमर जैसी नील कुटिल अलकावसि धारण करती है ॥१०९॥

सरसिञ्जमस्थिरशोभं विभ्रमरहितं च मण्डलं शशिनः ।

केन समतु समत्वं हृदयप्रिय मालतीवदनम् ॥११०॥

कमल की शोभा स्थिर नहीं रहती और चन्द्र क मण्डल म विभ्रम (बिलास) का अभाव है, ता सिर है प्यारे, किसक ताप मालती का मुन्हा क्षमनी समता रह ॥११०॥

अलिस्परि तदीक्षणयोर्भ्रारिवा सीगध्यसूचितविशेषः ।

निपतति कर्णाभ्रुरहे निगुणताप्यवसरे साध्वी ॥१११॥

भास उसकी कमल सरस क्षमता पर मन्त कर जब उम सुगन्धि की विशेषता मालूम होनी है तब (मानवी क) कान में लगे कमल पर जा पैठना है, समय पर गुणरहित होना भी क्षमता है ॥१११॥

१-२४ का शोभन अंगो में मूल्यफल क भीतर मिथमिलाल रूप बाना की तरह जो मानुम बचता है उमे ही 'लावण्य' कहते हैं—

मुष्टफलपु क्षामाया स्तरलक्षमिमांतरा ।

प्रतिभाति यन्गपु सस्त्रावर्णमिहोप्यत ॥

'लावण्य' में क्षामार्ध अमितप गुप्त सिग्ने है—

लावण्ये हि माम् ऊचयथ संशयाना मिश्रगणमवयव व्यतिरिच धर्मान्तरमय ।

त्रिभागेऽङ्गिमाणं सहस्रं जितवन्बुजीवश्विमधरे ।

यदलक्तकविन्यसनं ततस्या मण्डनक्रोडा ॥११२॥

अने स्वभावतः लाल यन्बुजीव (य पूरु) की रोमा का बीज लन वाले अने अने पर जो वह आलता सगती है वह उसकी प्रमाणनलीला मान है ॥११२॥

चित्रमिदं यदि कुर्यात् तस्या वलिपरिगृहीतमध्यस्य ।

अथवा नो विधिविहिता महताप्यपनायते तनुता ॥११३॥

आरव्य वा यह इ कि वा बलि (परिधि, श्लेष ग वलवान्) के द्वारा खेति मध्य माग विलगुल जीव हा गया ट (उमे ता बलिपरिगृहीत होने के कारण बलपुत्र होता आदिषु वा ।) अथवा वात यह इ कि जब रिधाता ही जीव कर चुना है तो कार्य पडा भी उस छाशता का दूर कर नगी लकता ॥११३॥

आस्तामपरस्तायतस्या स्मरवसतिपुयुत्तरनितम्ब ।

अययति कपिलमुनेरपि इवपथपतिस्त समाधानम् ॥११४॥

हमरे अह की छोऽपि उमरा वा कामदेव का निवास-स्थान भूत विद्यात निम्ब है वह हरिश्चापर हार करिक मुनि की तमाधि का भी दीला कर दन जाता है ॥११४॥

तस्या रम्भावपुपो रम्मोपममूर्युगतमवलोकम् ।

मकरध्वजापि सहस्रा निजसायकान्दृश्यतां याति ॥११५॥

रम्भा के मरुत शरीर रम्भा उस मन्मथी का रम्भा मरुत ऊपर पुगल इन कर मरुता कामदेव भी अने ही काम का निदाना दन जाता है ॥११५॥

अधनभरान्तसपाता नायाशा मा विलोचनप्रसरम् ।

तिष्ठति तन मनाहर धरजमा प्रहृषयण ॥११६॥

हे मनोहर जन्म के भार ग अन्तगा कर मन्त जाती वह (मालती)

नरों पर इमी कारण बर्तिका की प्रथम ता प्रसारी बन रहे ॥११६॥

यदि कन्यमपि मधुमयनं परयति तामसमवाणसर्वस्वम् ।

सदसारमार भूतामिव लक्ष्मीमुरसि विनिहितां मनुते ॥११७॥

यदि किसी प्रकार विष्णु कामदत्त के सम्बन्ध उक्त मालती को दत्त हों तो छाती पर पत्नी लक्ष्मी का स्थान ही भारभूत श्रीमती मानने लगे जाय ॥११७॥

यदि पतति सा कथंचिद्दीक्षणविषये हरस्य तदवश्यम् ।

त्रिभुवनमक्षिप्रं कुप्यते वामेतरदहभागमासाद्य ॥११८॥

यदि वह (मालती) किसी प्रकार शिव जी के दृष्टियोग में आ जाय तो (हर) उनका दशाहन शरीरगण को पाकर (स्वाकामिक पत्नी होने के लिये शरीरगण में रहती है) त्रिभुवन को अशिव (शिव जी में रहित) बना लस ॥११८॥

सौन्दर्यं सताश्चमशेषयोपिद्विलक्षणं सुजतम् ।

यन्निष्पन्नं धासुस्तमन्ये नाक्यालीयम् ॥११९॥

उक्त सौन्दर्य उक्त प्रकार का सम्बन्ध त्रियों में विलक्षण बन गया है उसे विधाता की आकस्मिक घटना (नाक्यालीय) मानती हैं (अन्यथा विधाता म हर शक्ति कदा कि ऐम विलक्षण सौन्दर्य का विमाण कर) ॥११९॥

सहजविलासनिवासं तस्या वपुरनभिवीक्षणस्य ।

मन्ये नाकाधिपते सहस्रमपि क्षत्रुणां विफलम् ॥१२०॥

स्वामात्रिक विलासों का निवास-स्थान उक्त शरीर के न दत्त जाने वाले असाधारण रूप की अज्ञात शक्ति का भी है विफल मानती हैं ॥१२०॥

शिमिसमतु कुसुमचापं शिपशुशगन्वाणधो मनोजमा ।

संसारमारभूता विचरति भुवि मालती यावत् ॥१२१॥

कामदत्त अरुण पुत्र के शत्रु का सब तरफ लीला कर दे यशों की तरफ में लाल दे अरुण संसार की भारभूता मालती पत्नी पर विनिहित है ॥१२१॥

वात्स्यायनमन्त्रोत्पत्तयश्चिन्वृत्तराजपुत्राद्यै ।

उच्छृत्सिनं मन्त्रिंचित्ततस्या हृदयदशमध्यास्ते ॥१२२॥

वात्स्यायन, मन्त्रोत्पत्तय प्रथम का रचिता, दशम विष्णु राजपुत्र

आदि आचार्यों ने जो कुछ कहा है वह उनका हृदय में अभिहित रहता है ॥१२२॥

भरतविशाखिनदतिलवृक्षायुर्वेदचित्रसूत्रेषु ।

पत्रच्छेदविधाने भ्रमकर्मणि पुस्तसूदशास्त्रेषु ॥१२३॥

भरत का नान्यथाय विद्यारिक्त का क्यारायम् दम्कित का सञ्ज्ञित शास्त्र, वृक्षायुर्वेद, चित्ररत्ना, वृषी शिल्प पत्रच्छेद-विधान भ्रमकर्म (इन्द्रजात) पुस्तकर्म (काष्ठ, मृषिका, चम अथवा धातु के शिलान पुस्तिका-बनाना) सूदशास्त्र (गात्र शास्त्र) ॥१२३॥

आतोद्ययादनविधौ नृत्ते गीते च काण्डं तस्या ।

भमिघातु यदि शक्तो षडनसहस्रेण भोगिनामीश ॥१२४॥

आतोद्य (बीया मुरव मयी कास्य आर्त्त अर्त्तिय पाच) के बजाने की विधि, नृत्त और गीत इत्यादि में उसके काण्ड को शायद हजार मुक्तों से शयनाय कह सक ॥१२४॥

परिगमदालोनांशुकमपयंत्रणमुरसि मालती रमसात् ।

निपतति नाञ्जुप्यवता रतिलालसमानसा र्हसि ॥१२५॥

जा पुण्यवान् नहीं हैं उनके वृक्ष पर मालती एकान्त में चलत मरवत पक्ष एव बिना किसी वाद्य के वग म नर्तन का पद्धती ॥१२५॥

रतिरसरमसास्फासनचलबलयनिनादमिश्रितं तस्या ।

तत्कालोचितमणितं श्रुतिपयमुपमाति नाञ्जुप्यस्य ॥१२६॥

रतिरनित आनन्द के वेम स परस्पर रगद ताते अस्मन् कर्गना की एत-पनाइट म किला दुष्टा उम मासती क तन्नाम उचित लगने वाला मणित (रतिरत्न की आराध) पुण्यरहित श्रुति के जानों तक मही पश्यता ॥१२६॥

इत्यमभिधोयमान शुभमध्ये यदि भवेदुदासीन ।

एवं ततार्त्रिभय संदर्शितषोपया दूत्या ॥१२७॥

दे गुप्तर अदिभय वाली इत प्रकार कहम पर (भी) यदि यह उदासीन हो तब कोर दिया कर दूती को यह करना चाहिए ॥१२७॥

किं सौभाग्यमदोज्यं यौवनलीलामिस्पृतादर्पं ।

सहजप्रेमोपनता मालतिका न बहु मन्यसे येन ॥१२८॥

क्या वह तुम्हें अपने सौभाग्य का भय हो गया है अथवा यौवन की लीला का अहंकार, जिससे सहज प्रेमभाव से पास आई मालती को स्वीकार करते हो ॥१२८॥

गणयति या कुलीनान्द्रविणवतः शास्त्रवेदिनां प्रणतान् ।

भवदर्ये शृष्यति कुस्थाननिवेशितं धिगनुरागम् ॥१२९॥

जो मालती अपने सामने तिर कुटुम्ब कुलीनों, धनिकों और शास्त्र जानने वालों का कुछ भी नहीं समझती, वह तुम्हारे लिए स्वर्गीय आ रही है। अकार है उस अनुराग को जो जो गस्तव स्थान में हो ॥१२९॥

कमलवती तीव्ररुचौ बहुमस्मनि शम्भुशिरसि शशिलेखा ।

सा च त्वयि पशुकल्पे यदभिरता तेन मे कृपता ॥१३०॥

तीसरे किरणों वाले सूर्य में कमलवती छल की डेर लगे शिव के तिर में शशिलेखा और पशु-सरीसे तुम्हें वह जो अनुरक्त है उसी कारण (शोक से) मिली हो गई हैं ॥१३०॥

असरलमरसं कठिनं दुग्धं ह्रस्विनाघमाश्रिता खदिरम् ।

यदुपैति वाच्यपदवीं मालतिका तत्किमाश्रयम् ॥१३१॥

छरलता रहित, नीरस कड़वा, कष्ट से प्राप्त एवं ह्रस्व खदिर वृक्ष को अकार मालती (अमलीता) को निन्दित होती है उसमें क्या आश्रय ? ॥१३१॥

अथवा कः खलु दोषो यदतुल्यतमोपजनितवैलक्ष्यं ।

स्वाधीनामपि सरसां परिहरति मृणासिकां घ्वाक्षं ॥१३२॥

अथवा क्या दोष, कि जो बराबरी में न आने के कारण समित हो लीला करने अपने और सरस कमलिनी को भी छोड़ देता है ॥१३२॥

मात्रं करिष्यसि खेदं निष्कुरमुक्तोऽसि यन्मया सुभग ।

यूनो हि रत्नतरुणोसुहृदमिहितपत्यमामरणम् ॥१३३॥

हे सुभग, मैंने तुम्हें जो बड़ी बात बड़ी उतम दुःख मत मानना,

क्योकि अरानां के लिये अनुरक्त मुन्दरी की शयी की कड़ी बात (शामा तेन बाला) कामरस दातो हे ॥१३१॥ ।

घन्रमसेव ज्योत्स्ना कंसासुरवैरिण्य वनमाला ।

कुसुमशरासनलतिका कृमुमाकरवल्लभेनेव ॥१३४॥

चाँद स चादनी की मालि कृष्ण स बनमाला की मालि वसन्त र सभा कामदेव स कामलता की मालि ॥१३४॥

मदलीसा हलिनेव स्तनयुगलेनेव हारलता ।

रम्यापि सा सुगात्री रम्यतरा भवतु संगता भवता ॥१३५॥

हलपर बलराम स मन्लीला की मालि स्तनयुगल स हारलता की मालि, गुमसे स्वाम प्राप्त कर कर रोमन बहो बाली मालती रम्या शरकर मो रम्यतरा हो जाय ॥१३५॥ ।

किं बहुना यदि यूनामुपरि विधातु समीहसे चरणम् ।

तत्कुरु रमणोरत्न प्रेमोज्ज्वलसंक्रान्तस्तूर्णम् ॥१३६॥

बहुत कहत स क्या यदि तुम अराना क भिर पर चरण रचना पारत हो तो प्रेम की चमक बाल उस रमणीय की शोभ ब्रह्म स ल ला ॥१३६॥

अथ ननुचनश्रवणप्रविजम्भितमदनमदृदायाद ।

उपचरणीय सुन्दरि निजवसतिमुपागतस्त्वमाप्येवम् ॥१३७॥

तत्परवान् उस वृत्ती की बलें मुनन स मद्रुत का मदन उदीरित शोभा उक्त कर अवन पर छाण उस तुम भी हे मुन्दरी शो प्रसार उपचार करना ॥१३७॥

१—पर तक लहरणी हुई माता अथवा पञ्चगुण्यमयी माता को 'वनमाला' कहते हैं । भगवान् कृष्ण के बनमाला पारम्पर्य के अरार ही उन्हें बनमाली कहते हैं ।

२—रमणीय—दर्शान् अ ए मुन्दरी । कर्त्तुं ।

'जाता जाता सदुरदृष्ट तद् रत्नमभिर्भीषत ।

बाह्मिदित भी सिलने हैं—

स्त्रीणां गुणा भारतरूपस्य दाक्षिण्य विज्ञान विलास पूराः ।

स्त्रीरत्न संज्ञा च गुणानिनासु स्त्रीभाषयाऽन्याश्चतुरस्य पुगः ॥

(हरणोदना ७०१३) ।

दूरादभ्युत्थानं प्रणमनमात्मासनप्रदानं च ।
प्रविधेयमन्धलेन प्रस्फोटनमद्वियुगलस्य ॥१३८॥

दूर ही से उठे आते देख उठ जाना, प्रणाम करना, अपना आसन देना और अन्धले से उसके पैरों को पंखना ॥१३८॥ ।

ईपदयस्त्रप्रकटितकस्रोदरबाहुमूलकुम्भयुगलम् ।
संदरयं म्रटिति यास्यसि नायकङ्गोचरात्पूर्णम् ॥१३९॥

हिरण्योद्गा बिना कोशिका के अपनी कान्ठ उदर बाहुमूल दोनों स्तन उभय प्रकट किया करके मृत् से उभरी आँसुओं में ओम्कन हो जाना ॥१३९॥ ।

अथ पर्यकसनार्थं दीपोज्ज्वलकुसुमधूपगघाठघम् ।
विततवितानकरम्यं प्रवेष्टितो वासकागारम् ॥१४०॥

तब हे मारी अपने वाली, उभे पलङ्क से सज बसो म प्रकाशित फूलों की और धूप की गन्ध में सुवासित पैरों चँदरवा में सुशोभित वासकागार में दागित करना ॥१४०॥

मात्रा वे गुह्यघने सावरमवतारणादिकं कृत्वा ।
अग्निनन्दनीय एभिर्वचनविशेषै प्रयत्नेन ॥१४१॥

सही मात्रा उभे आदरपूर्वक अवतारण्य (आश्रमगत) आदि करके इन ग्राम बालों में यत्न करके अग्निनन्दन करे ॥१४१॥

अद्याशिष्यं समृद्धां परितुष्टां शृष्टदेवतां अथ ।
कस्याणालंकारो यदलङ्कृतवानिदं वेदम ॥१४२॥

आज आशीषयन सज्ज शृष्ट, शृष्ट देवता मन्तुष्ट है जो कि कस्याण फ अलङ्कार अयन इस पर का अलङ्कृत किया ॥१४२॥

१—आश्रमगत अर्थात् भीमाश्रम स्थास्य । इमाराज आज के शब्दों में सत्य-
नदी अस्तमगत का वह चित्र देखिए— उनके कमर द्वारा द्वारा मात्रा शिष्य गण
ये । निवास के पहलंग होतियों में कने हुए थे । अथ पर सुमरी आदमी शिष्यी
हुई । जो जो नवरी पलङ्कान हुस्नदान ग्रामदान उगाहदान धारने धारने करतियों
में रखे हुए । शीशरी पर हलकी आरने उम्दा उम्दा लस्वीरें सुन में सुनरिषी
लगी हुई त्रिमके दामिफक एक दासना अथ । इया उपर उम्दा दामिर्वा । ॥

प्रनुरूपपात्रमटनं कुर्वाणस्याद्य कुसुमवाणस्य ।

सुचिराद्भवत संजातं शरासनाकपणधमं सकलं ॥१४३॥

शीम पात्रों का मिलन करने वाले कामदेव का प्रनुप खींचने का भ्रम बहुत देर के बाद फलीभूत हुआ ॥१४३॥

विन्यस्य शिरसि चरणं सुभगा गणिकाजनस्य सकलस्य ।

सीभाग्यवैजयन्ती संप्रति वत्सा समुत्क्षिपतु ॥१४४॥

सुशामिन मंरी बन्धी समस्त गणिकाओं के शिर पर पैर रख कर प्रणमने सीमाग्य को पताका छेदने ॥१४४॥

दुहितर एव साध्या धिक् लोके पुत्रजमसंतुष्टम् ।

जामातर आप्यन्ते भवाद्या यदभिसम्बन्धात् ॥१४५॥

पत्न्ये संतार की कि जा लड़क के जनम से संतोष अनुभव करता है । प्रसंखनीय तो लड़कियाँ हैं जिनके सम्बन्ध में आप जैसे कामाक्षी हासिल होने हैं ॥१४५॥

दृढपरिषया गुणज्ञा भवद्विधा नार्पणार्हना यदपि ।

तदपि हृदयामिनन्दनं दुहितृस्नेहादहं वच्मि ॥१४६॥

आप जैसे व्यक्ति यद्यपि दृढ़ परिषय वाले, गुणज्ञ एवं योग्य पान का सम्मान देने वाले होते हैं तथापि देहद्वयामिनन्दन, मैं लड़की के प्रति स्नेह के कारण कहती हूँ ॥१४६॥

सहजप्रभोपनसा न्यस्ता त्वयि मालती तथा कार्यम् ।

न यथा भवति वराकी स्वद्विप्रियजमनां शुचां वसति ॥१४७॥

स्वभावतः अनुरक्त मालती को तुम्हें समर्पित करती हूँ उन्हा करना जितन कि वह बेकारी तुम्हारे अनिष्ट (विशेष) के कारण शीघ्र का ध्यान न हो ॥१४७॥

मुदुधौतघृपिताम्बरमध्याम्य मण्डनं च बिभ्राणा ।

परिपीतघृपवर्ति स्यात्स्यसि रमणांतिके सुतनु ॥१४८॥

दे वस्तु, कोमल, मुले भूगदि द्वारा वसित घरन एवं अध्याम्य (जागीरी

मे बने) आसूपण धारण कर सपा पूषवर्ति^१ का पान कर नू कात के तवीर उप-
स्थित हो ॥१४८॥

सस्नेहं सत्रीडं ससाध्वसं सस्यूहं च परयन्ती ।

किंचिद्दरमशरीरा प्रविरलपरिहासपेशालापा ॥१४९॥

सस्नेह, सत्तम्र, ससम्भ्रम और सस्यूह इष्टियात करती हुई नू अग्ने शरीर
को कुछ प्रसन्न कर देना और उसके ताय कमी कमी मत्राक वा पुं म्दर
सत्तपीठ करना ॥१४९॥

मातरि निर्यातायां परिजनमुक्ते च वासकस्थाने ।

अमियु आने रमणे वामाचरणं क्षणं कायम् ॥१५०॥

माता जब बर्ही से बाहर बली जाय और परिजन भी उस भोगवास
को छोड़ दें और कान्त जब रमसाय प्रवृत्त होने लग तब कुछ वय
नू प्रतिकूल आचरण करना (अग्ना अन्न करने न देना, निषेध कराना
आदि) ॥१५०॥

रतिसंगरविहितमतावाकर्षति रभसत पुरस्तस्मिन् ।

कुट्टमितमाचरन्ती जनयिष्यसि किंचिदगसंकोचम् ॥१५१॥

रतिपुद् के लिए जब ठमरा मन बिलकुल हा जाय और सामन बर
वेग से हुके कीचिन लगे तब कुट्टमित^२ करती हुई नू अग्ने अग्ना को विरोध
लाना ॥१५१॥

१-पूषवर्ति—सुख की सुगन्धित करने के लिए बीहोनुया इष्य जिनमें
साम-साम मयाले होत थे और जिन प्राचीन कात क शौकीन नागरिक जसा कर
पक्ष-पान करते थे । इसका उल्लेख काट्टम्बरी और हरविद्यप महाकव्य में भी प्राप्त
है । यह पूषवर्ति किंचिदप्रकार की होती थी । उनमें स पत्र का वागारमकम्ब में
इस प्रकार उल्लेख है—

अपूरुगुणं चन्दनं मुस्तकमूतिं प्रियङ्गुवालं च ।

मांसी चेति सृष्टाणां योष्या रतिनाथं पूषवर्तिरियम् ॥५१३६॥

२-‘पुद्’ संज्ञा तब ही जाती है जब दो (या धनेक) मन्त्र परस्पर अग्नि-
अवेष्ट्या से भिद्द जाते हैं । इस प्रकार अष्टवग नापक और नापिक्य की भिन्नांक
रति भी बर प्रकार का ‘पुद्’ है । इस पुद् में होने वाले कुम्भन वासिष्ठन बग-
वान् इत्यादिना तादृश वीण्युत उपमगन आदि बिलकुल दो मन्त्रों की कुम्भी के
समान होते हैं । अग्ने के प्रयोग में हुयी क्वि ने हारलता और सुन्दरमव क रति
पुद् का अर्थ किया है ।

३-यह बर प्रकार की सम्भोग काशीन श्रद्धा केन्द्र है । भीतर से प्रयत्ना

प्रारब्धे सुरत्तविधौ क्रमदर्शितवित्तयोनिर्भवेगा ।

अपराकमर्षयिष्यसि निर्व्याजं पुत्रि गात्राणि ॥१५२॥

बेटा, जब यह तुम्हें आरम्भ कर दे तब तुम्हें से विद्व और योनि (अथवा विधयोनि अर्थात् कामदम्) का संबंध दिखाना और निःशङ्क और निष्कण्ट माग ध अपने अङ्गों की उसे अर्पित कर देना ॥१५॥

यद्यदाच्छति हन्तुं यद्रूपं यच्च विलिखितुं गात्रम् ।

तत्तदपसारणीयं सावेगं ङीकनीयं च ॥१५३॥

त्रिभ-त्रिभ अङ्ग का यह आघात करना^१ चाहे, त्रिभे देखना चाहे और त्रिभ परीचना^२ चाहे उस उठको आवेगपूर्वक दटा लना और छि उठके सामने कर देना ॥१५३॥

दंष्ट्रे सव्ययङ्गकृतिमामर्दे विविधकण्ठरसितानि ।

मदाविलिखने च सीत्कृतिमाघातेपुल्वर्णं कणितम् ॥१५४॥

जब यह दाँव से काटे^३ ता व्ययावृषक हुँकार करना, मठजन^४ सगे तो विविध प्रकार से कण्ट की आवाज करना, नज़ों से परीक्षण सगे तो लीन्कार^५ मना और आघात करे तो जोर से चीख पड़ना ॥१५४॥

ह्रस्वामासन्नासा मुञ्चन्ती पुनर्कन्दतुरघरोद्य ।

स्विद्यत्सकलावयवा प्रकरिष्यसि रागवृद्धये पुंसाम् ॥१५५॥

बाहुक पुण्यो क एव यदामे के निमित्त नू बार-बार भ्रमपूर्वक स्वाम

है फिर भी ऊपर से बाहुक द्वारा केस लगन अथवा आदि के पकड़ने पर मदावृषक का तिर और दाब ककम्पेरना 'कुङ्कमित' कहलाता है । (साहित्यदर्पण) ।

१-स्वयंपश्य मिर लानालार श्रुत जयन और पारस य कामराग्न क अनुभार आघात का प्रदर्शन के स्थान है ।

२-दोनों कर्णों कंद दोनों आस बाधि भीणि दोनों आस आसच्छर और कण्ट मूक य मग्रापान का नयी द्वारा लरोषने के स्थान माने गये हैं ।

३-काँच उदर लगन, कपोल और कंद के कस्तुरीजन के स्थान हैं ।

४-मग्यमे के स्थान है बाहु लगन नितम्ब पारसं त्रिगोहर और जयन ।

५-कल्पवृक्ष के कामगृह में त्रिग समय किम प्रसार का विद्व करना आदिष्ट, इनका उल्लेख है । (११॥११-२) ।

छात्रों की राधाय से शरीर को स्वस्थ करना और समस्त अंगों को रसीने पसीम करना ॥१५५॥

परमृतलावकहंसकपारावततुरगहृदयनिःस्वनितम् ।

अनुकार्यमुचितनाले कनककण्ठि रतैस्त्वया रसत ॥१५६॥

ऐ अस्पृश मधुर कंठ पाली, कोकिल, लका हंस, कबूतर और घोड़े की मीठी रस के उचित समक में आवाज करना ॥१५६॥

मा मा मामतिपीडय मुच क्षणमद्य नो समर्थाऽस्मि ।

इति गद्गदास्फुटाक्षरमभिघातव्यस्त्वया कामी ॥१५७॥

“मन मन मुझे जोर से मत पीड़न कर निद्रु मुझे छोड़, मैं पार नहीं पा सकती” इस प्रकार की गद्गद एवं अस्पष्ट आवाज से कामुक को प्रति पीडना ॥१५७॥

अनुबन्धमानुकूल्यं वामर्त्वं प्रौढतामसामर्थ्यम् ।

सुरतेषु वशीयिष्यसि कामुकमायं स्वयं बुद्ध्वा ॥१५८॥

कामुक का अमिमांश स्पष्ट समझ कर उसके साथ सुरतों में कमी अशुभाग, कमी अनुकूलता, कमी प्रतिकूलता, कमी प्रगल्भता और कमी अध्यात्मार्थ प्रदर्शन करना ॥१५८॥

असमंजसमङ्गीलं दूरोज्जितधैर्यमविनयप्रसरम् ।

व्यवहारमाचरिष्यसि वृद्धिमुपेते रसावेगे ॥१५९॥

जब रस का आवेग वृद्धि प्राप्त कर ले तब असमझ अरलील विपरिहित, अतिनयवुक व्यवहार करना ॥१५९॥

अविचेसितनक्षरक्षतिरामीलितलोचना निष्साहा ।

नायभनार्यसमाप्तौ स्यास्यसि शिथिलीकृतावयवा ॥१६०॥

जब नायक धरना काय समाप्त कर ल तब जैसे उलक नगरी की गरीबों दुर्ग पाई ही नहीं, वृ अयनी शक्ति खूब लेना, निरुत्साह हो धरन अज्ञो को शिथिल करके पड़ जाना ॥१६०॥

भ्रगिति नितम्बावरणं निःसहृतनुतां स्मितं सवैलक्ष्यम् ।

खेदालसां च दृष्टिं जनयिष्यसि मोहनञ्छेदि ॥१६१॥

जब मुख का प्रसंग समाप्त हो जाय तो कुछ अपने नितम्ब डक लेना, बेह स्थिति कर लेना, शर्माती हुई मुस्कुराना और लज के मारे झलकाव हुये दृष्टि ॥१६१॥

वृत्ते रतामियोगे स्पृष्ट्वा सन्तर्ल विविक्तभूभागे ।

प्रक्षाल्य पाणिपादं स्थित्वा क्षणमास्ते समूह्य कचान् ॥१६२॥

जब रतामियाग समाप्त हो जाय तब निज्जन स्थान में जल-स्पर्श कर, हाथ पैर धो आसन पर ठमिड़ बैठ, कालों को समेट ॥१६२॥

उपयुक्तध्वदनवासा शय्यामारुह्य दक्षिप्रणया ।

इति वक्ष्यसि तं रमणं दृढतरमालिङ्ग्य रमसत् कण्ठे ॥१६३॥

ताम्बून् आदि मुलबाज ले सब पर सह प्रणय दिलाते हुए, बेग छ वर कर कटांगलहन करते हुए उठ रमण से सह करना ॥१६३॥

मदृसुत नूनमिष्टा तव जामा यदनुरक्तहृदयस्य ।

जनयति परितुष्टिमलं नापरराभापरिव्यंग ॥१६४॥

हे मदृसुत, निश्चय ही गुम्दारी फलो गुम्दे प्रिय है, क्योंकि जितना बह अनुराग मरे हृदय वाले गुम्दे अधिक सन्तुष्ट करती है उतना बूधरी रमणी का आलिङ्गन नहीं ॥१६४॥

सफलं तस्या जन्म स्पृहणीया सेव सयत्नसप्तनानाम् ।

गौरा तयैव महिता सुभगंकरणं तपस्तयाचरितम् ॥१६५॥

उत्तम फल प्राप्त है गमना शिरो मे सह स्पृहणीय है, उतने ही गौरी की आज्ञा की है उतने भीभाग्यरम्य तप किया है ॥१६५॥

सैवैवा गुणवसतिस्तस्या एवान्वयः सदा भाष्यः ।

मस्यां शुभरातभाजं पाणिग्रहणं त्वया विहितम् ॥१६६॥

गुणों का भाजन नहीं एत ह उमी का बस हमरा प्रशस्तीय है एत रात तुमपां क भाजन जिन मुन्दरी का मुमन पाणिग्रहण किया है ॥१६६॥

तिष्ठतु सा पुष्यवती वंशद्वयभूषणं वरारोहा ।

या नापयाति भवतो लक्ष्मीरिव नरकवैरिणो हृदयात् ॥१६७॥

यिना चार पति क बसों का भूषण, सुन्दर नितम्बी बाला वर तो है
हा, जो पिण्ड के हृदय में लक्ष्मी की मूर्ति तुम्हारे हृदय में दूर नहीं
हानी ॥१६७॥

पाठयसि कुवलयनिभे कौतुकमात्रेण सोवने यासु ।

ता अपि सत्यं सुन्दर हर्षोच्छ्वलितान् न भान्ति गात्रेषु ॥१६८॥

जिन सुन्दरियों पर कौतुकमात्र से तुम अपनी कुवलय सदृश झलक झलक
देत हा हे सुन्दर, व मी रज प्रकार हर्षोच्छ्वलित हो जाती हैं कि अपने झड़ों
में खुद नहीं झट पानी' हैं ॥१६८॥

तनुरपि नापप्रणयं प्रायो मुखरीकरोति लघुमनसः ।

स्वार्थनिवेशितचित्ता करोमि तेऽभ्यर्थनां तेन ॥१६९॥

शिक्रा मन छोटा है उसे प्रिय का बोझ मी प्रथम प्रायः मुग्ध बना
दता है । ठही कारण स्वार्थ को मन में रख कर तुमसे अनुरोध करती
हैं ॥१६९॥

सीदस्मरतास्मिन्वापसत कौतुकेन घृणया वा ।

मद्भ्राम्यसम्पदा वा दूता वा कौशलास्त्वभावाद्वा ॥१७०॥

उरम काम्येय म मुग्ध अगनी स, वा बरलतावय, वा अनुमद स, वा
मरे सीमास स, वा शूरी क उपाय मे, वा स्वभाय म ॥१७०॥

योज्यं प्रेमसर्पाय प्रदद्यितोऽम्मासु जीवतोपायः ।

बाधा मात्र विधेया गणिकाजनवृत्तमन्यथा बुद्ध्या ॥१७१॥

जो कि यह हमारे जीवन रहने का उपाय-स्वयं प्रेम का लेखमान हम
पर दुष्मन प्रार्थित किया है उसमें यशिका जनो के मनोमार्तो की गलत
(अन्यथा) समझ कर बाधा नहीं करना ॥१७१॥

येन स्नेहं श्लोषं शाठ्यं दालिष्यमार्जवं प्रीडा ।

एतानि सन्ति तास्वपि जीवदमोपनीतानि ॥१७२॥

जिन कारणों में स्नेह श्लोष शठ्य अनुरोधता कामलता, लज्जा के

एक जीवित रहन बाला को निवर्गता प्राप्त होते हैं वे सभी उन गणिकाओं में भी रहते हैं ॥१७२॥

निर्व्याजिसमुत्पन्नप्रवलप्रभेभामिभूतहृदयानाम् ।

दमितविरहाक्षमाणा गणिकानां लुण्ठसमा प्राणा ॥१७३॥

बिना छल-कपट के उत्पन्न प्रवल प्रेम के द्वारा अभिमूढ हृदय बालिकाएं एवं प्रिय के विरह को सहन न कर पाने वाली गणिकाएँ निज प्राणों को लुण्ठमान समझती हैं ॥१७३॥

अत्राकर्णय साङ्गु तमास्यानं वर्णयामि यद्वृत्तम् ।

अद्यापि विभक्ति वटो विशेषणं यदभिसम्बन्धात् ॥१७४॥

इस प्रसंग में सुनो मैं एक आराम-सुख आरम्भान, जो पटित हो चुका है कष्टी हूँ किमि पठना के मासिम्बरूप आज भी बरगद का वेद 'विरपावट' नाम में परिचित है ॥१७४॥

हरलता का आरम्भान

'मस्ति महीतलतिलकं सरस्वतीकुलगृहं महानगरम् ।

नाम्ना पाटलिपुत्र परिभूतपुरंदरस्थानम् ॥१७५॥

पाटलिपुत्र नाम का एक महानगर है, वह पृथ्वी का तिलक, सरस्वती का कुलगृह और हरलता का स्थान समझावती को परिभूत करम बाला है ॥१७५॥

त्रिभुवनपुरनिष्पादनकीशसमिन्नपुञ्जतो विरिचस्य ।

दद्यितु निजघित्यं वर्णकमिव विश्वकर्मणा विहितम् ॥१७६॥

अब ब्रह्मा ने त्रिभुवन के नगरों के निर्माण का बीजाल विरचकर्म से पूजा तब मानो उन्होंने अपना शिल्प १ दिग्गज के शिव इस नगर का एक 'अण्ड' (परिनिप विष) के रूप में निर्माण किया ॥१७६॥

अधेयोमिरनाश्रितममिभूतं नातिभूतिदोषेण ।

न स्वीकृतमुपमर्गं कनिबालमसैरनासीकम् ॥१७७॥

यहाँ अमर्ग नदी गत पगत्रय के रीति ग वद अभिमूढ नदी है

१-शिल्प चाद प्रकार का होता है—आलम्ब,श्लेष, दारुक्रम, चिनिचम, वाताण्ड्य, शीघ्ररम, देवक्रम, विप्रक्रम ।

उत्पातो का यहाँ उपद्रव नहीं है कलिकायल को परासिदा यहाँ नहीं पहुँची है ॥१७३॥

पातालतलं भोगिभिरम्भोधिविविधरक्षसधाते ।

सुरसदनं विबुधगणैर्द्रविणोपधमै पुरं कुबेरस्य ॥१७८॥

भोगिगण (बिलासी वन, रक्षस स उरगण) क निवाठ के कारण पर पाताल के समान है, नाना प्रकार क रत्नों क टेरो मे यह सुन्दर के समान है, विबुधजन (विद्वानो रत्न स दण्डाद्री) के कारण अमरावती क समान है, धन की समृद्धि स कुबेर की नगरी अलका के समान है ॥१७८॥

महिलाभिरसुरविवरं कटकं हि हिमाश्लस्य मत्वर्वै ।

हरितगरं क्रतुसूपी शमविभवैर्मुनिजनस्वानम् ॥१७९॥

पदिलार्या के कारण यह अशुभिवर ' (स्त्रीप्राय अशुभ क श्रेष्ठ का मकरमार्ग) के समान है शमवर्षो (गान करने वालो, पक्ष में श्रवणी मिथ्या) क कारण पर हिमालय क मध्य दश स समान है, यह क 'पूर नामक लक्ष्मी क बने लूटी के कारण पर अयोध्या के समान है शान्ति क विमर्षा क कारण यह मुनिजना के वासस्थान आश्रम के समान है ॥१७९॥

तिष्ठन्तु सकल्पशास्त्रध्यासोचनविमलबुद्धयो विप्रा ।

सदसद्गुणनिर्णीतो सत्यता अपि निकपभूमयो यत्र ॥१८०॥

समस्त शास्त्रा क अशुभानन स विमल-बुद्धि प्राप्तम् जनो की बात कौन कर, जहाँ सत्यता भी मले-बुर क नियम मे कठटी का काम करती है ॥१८०॥

कलियवसोदितमीत्या क्रतुद्रुतवहूषूमकम्बलावरण ।

तिष्ठन्निमृतोपि कृतञ्जरितैरनुमीयते यत्र ॥१८१॥

यहाँ कलिनाश स उद्यम हर के मारे यत्राग्निरो के धूम का कम्बल आदि धुंध धिा कर रत हु" भी धम का अनुमान (लागो के) उदाधारो स होता है ॥१८१॥

१-“अशुभिवर” में अशुभ करने क शिष्ट भूमि में बने अग्नी गहरे गहरे में प्रकाश दिया जाता था । केनामयाथ इत्यत्र मुख्य धम था । उद्यम धम धीर स्त्री की धर्मि सम्भव मार्गो जालो थी । दम्बक यापक ‘शान्ति’ बने जाने थे ।

अपहरति पिषातुमिव स्वकलकं शशधरं प्रसाय करान् ।

रात्री यत्र वधूनां लावर्ष्यं वदनकोपेभ्यः ॥१८२॥

जहाँ चन्द्र मानी अपने कलक की टकने के लिए करा (हानों अपवा करवा) की पैसा कर रात्रि में वधूनां के मुख के सजानों से लावर्ष्य का अपहरण करता है ॥१८२॥

तिमिरपटलासिताम्बरमपहरदभिसारिकाजनौषस्य ।

निजतनु कान्तिवितानं वल्लभसम्भोगविहितये यत्र ॥१८३॥

जहाँ अमिषारिका बनों का अपम शरीर की कान्ति का वितान अम्बकार-समुद्र के काले वस्त्र को हटाता हुआ प्रिय मिलन के काम में आ जाता है ॥१८३॥

यत्र नितम्बवतीना विचलन्नयनान्तश्चित्तशरैर्द्रुणित ।

शिथिलयति पथिकलोकं स्वकलत्रसमागमोत्कण्ठाम् ॥१८४॥

जहाँ नितम्ब पालियों के चंचल कटावों के शीघ्र बाणों से चापल होकर पथिक साग अपनी पलियों के समागम की उत्कण्ठा शिथिल कर देते हैं ॥१८४॥

यत्र च कुलमहिलानामल्पत्वं वचसि पाणिपादे च ।

स्वच्छत्वमाशये च व्यासोत्तवं विशासनेत्रे च ॥१८५॥

जहाँ कुलवन्ती महिलाएँ जिस प्रकार अल्पमापिणी हैं उन्ही प्रकार उनके हाथ-पैर भी छोटे-छोटे हैं उनके मन (आशय) जिस तरह स्पष्ट है उन्ही तरह उनकी चंचल और विशाल आँखों भी स्पष्ट हैं ॥१८५॥

स्तनजघनचिकुरमारे धनता जीषेयसहजरागे च ।

कुनदेवतार्धनविधौ बलिशाभा मध्यमागे च ॥१८६॥

उनके स्तन जघन और अश्रुमात्र की तरह उनका प्रियतम के प्रति स्वाभाविक अनुत्पन्न भी धन है, कुनदेवताओं की पूजा में जिस तरह बलि (उपहार का दाय) की शाना होती है उन्ही प्रकार उनके बलिमात्र में भी बलि (दान) की शाना है ॥१८६॥

गम्भीरता स्वभावे चेतोमवबाण्णुणतामौ च ।

विस्तीर्णता निसम्भे गुरुजनपूजानुरत्तचित्ते च ॥१८७॥

कामदेव के बाप के तरह के माँस उनका नामरूप उनके स्वभाव के समान गम्भीर है, गुरुजनो की पूजा में समुरक्त उनके चित्त की मति उनका निराम्य विस्तीर्ण है ॥१८७॥

हरिणायतेक्षणनां विच्छित्ति कोपहरणमब्जेषु ।

कुटिलस्वमलकपंक्ती यान्ताता कामधेष्टितं यत्र ॥१८८॥

जहाँ विच्छित्ति (हरिणाय शम्भा) कल्ल हरिण के समान विद्यास ज्ञाना पक्षी मुन्दरिबो म है (अत्र विच्छित्ति अर्थात् विच्छेद नहीं है), कोपहरण (शब्दात् हस्वियार रखने के वन कर्मपेठका स हस्वियार निवासना) कल्ल अम्बो के सम्बन्ध म है (अन्वय प्रजाधा म किछी के कोश अर्थात् खजामे का हरण या लुटपाट नहीं होता) कुटिलता कल्ल बाळो म है (लोगो में कुटिलता नहीं है), स्वप्नान्तर बाळको म है (न कि लोग स्वप्नान्तर करते हैं) ॥१८८॥

संयमनमिन्द्रियाणामिनोपधातप्रहृस्तमिन्द्रस्य ।

स्तब्धत्वं तालतरौ हारसतास्तरलसंगता यस्मिन् ॥१८९॥

संयमन (निग्रह) जहाँ कल्ल इन्द्रियो का शला है (लोगो का निग्रह या घर पकड़ नहीं होता), कल्ल दूय का उपपात रूप मद्र रज्जु के पक्ष में होता है (न कि कोई भी अयम स्वामी का प्रातिकूल्य महसूस करता है), सम्भता कल्ल ताल के पक्ष में है (लोगो में सम्भता अर्थात् यतिकूल सम्बन्ध नहीं) कल्ल हार-सतात् तरल (सम्बन्धित) के साथ रहती है (लोग तरल अर्थात् इन्द्रो नयन पुरुष के साथ नहीं रहते) ॥ १८९॥

भुजगा पण्ड्रध्वश सण्डपन्ते प्रियतमाधरा यत्र ।

सूचीप्यधानुभूतिन त्याभ्यासप्रवृत्तानाम् ॥१९०॥

भुजरो का रज्जु कल्ल सर्पण्य देवान है (लगा भुजरो का रज्जु अर्थात् हो । वा कर्मयोगी नहीं देवते), केवल प्रियतमाधरो के अक्षर परिणत किण जल है (कोई सम्भन्त अर्थात् निरभूत नहीं होता), वा नृत्यकला के अय्यास म

प्रकृत है उन्हें फेरल सूची (एक विरोध प्रकार का अभिनय) के कष्ट का अनुभव होता है (किसी अपराध के कारण सूची को मरणा का कोई अनुभव नहीं करता) ॥१६०॥

नतवपुरप्यतिसरला मन्यरगमनापि नर्मदा यस्मिन् ।

गुरुजनशास्त्ररतापि स्वभावमुग्धाङ्गनाजनता ॥१६१॥

अतिसरला भी सुभितियाँ नहीं नत देहों वाली है (विरोध यह कि जो मुझे शरीर वाली है व अतिसरला अर्थात् विलक्षण सीधी-साधी कैसे हो सकती है ? परिहार यह कि अत्यन्त मरुत स्वभाव वाली है) पीपी चाल चलन वाली हाकर भी नमदा है (नमदा नहीं तो बहुत धंग से रहती है, परिहार यह कि नर्म देने वाली अर्थात् परिहामरसिद्धा है और अपन के मार से बलसाई होने के कारण पीपी चाल से चलती है) गुरुजनों में और शास्त्रों में रह होने पर भी मुग्धा है (विरोध यह कि शास्त्रज्ञानशील मुग्धा कैसे हो सकती है, परिहार यह कि मुग्धा अर्थात् मुन्वर है) ॥१६१॥

तस्मिन्मखशतपूतं पुरहूत इव द्विजमना प्रवरः ।

गुरुरिव निधायसतिवसति स्म पुरंदरो नात्ता ॥१६२॥

उस नगर में इन्द्र के समान भी यह सम्पन्न करने से पवित्र, ब्रह्मति के समान विद्वान, पुरन्दर नाम के एक ब्राह्मण-भूषण निराश करते थे ॥१६२॥

धर्मात्मजस्य सत्यं त्रिपुररिपोर्विजितकुसुमधापत्वम् ।

हरिनामिर्षजमुवो नियतन्द्रियतां जहास यः ससतम् ॥१६३॥

जो हमारा पुत्रिष्ठ के सत्य की शिबरी को कामदेव पर विजय की और त्रिपुत्र नामिकमल में उल्लस जसा के इन्द्रियनियम की रिस्ती उड़ाया करते थे ॥१६३॥

न्ययस्तुवृष इति शर्वे याचक इति कीस्तुमामरणे ।

पोढितवसुधासुत इति कपिले न बभूव यस्य बहुमानः ॥१६४॥

शिव न हार (बन) का नीच मुद्रा दिया (क्योंकि य वृष अर्थात् नन्दिकेश्वर शैल पर बहने हैं) अतः उनके प्रति, 'पितामहा है' यह त्रिपुत्र के प्रति 'दृष्टी और नगर-शुभो की पीडित किया है' यह कपिल के प्रति करते हुए आ गारव नदी गगत थे ॥१६४॥

मार्गानुगतौ सुध्वो यः प्राणित्वपुविनाद्यविमुक्तोऽपि ।

परिहृतपरदरोऽपि स्वाकाशितगुह्यजनप्रमदः ॥१६५॥

प्राणियों के शरीर का विनाश करने में जो सर्वथा विमुक्त हो तो भी मय्य (मृगसमूह) के अगुगमन करने में सुध्व (ध्याय) य (परिहार यह कि मार्ग अर्थात् समाग के अगुगमन करने के लोमी य), किन्तु वृत्तों की पक्षियों की सवया स्थाय दिया या तयापि मय्य गुरुजनो की प्रमदाओं को जाहा करत य (इत विधिष का परिहार यह कि गुह्यजनों का प्रमद अर्थात् रूप जाहा करत ये) ॥१६५॥

यस्यान्वये महीयसि सरसोव समस्तसत्त्वनिजवसती ।

सम्भरितजन्मभूमौ विनिवारितकलिमलप्रसरे ॥१६६॥

शरीर के समान समस्त सत्त्वों (सर्व-गुणां अर्थात् जीवों) के निवास-स्थान, सत्त्वितों के जन्म-प्रसरे करने की भूमि, कलिमल के रोगों से रहित विमल कुल में ॥१६६॥

पितृतपणप्रसङ्गे खड्गग्रहणं न शीर्यदपि च ।

मृत्तनं मेखलिकानां यद्वकजने नो रतामिसंमर्दं ॥१६७॥

जब कभी पितृ-तपण का प्रसंग उत्पन्न होता तभी खड्ग (अर्थात् गंध की लीग के घने पाष) का ग्रहण किया जाता था न कि शूरता के फल में ही खड्ग अर्थात् तलवार ग्रहण करता था, मरलाओं अर्थात् कर्मियों का दृष्टा छोटे बच्चा का हत्य था, न कि मुरत की रता में मरलाए दृष्टी थी ॥१६७॥

श्रुतिभेदेषु विवादो नो रिचयविभागमन्युना कलितः ।

वेजन्विता हविर्भुजि न शमैकरतेषु भूमिदेवेषु ॥१६८॥

विवाद फल बेरो के भेदों के कारण में हुआ करता था न कि धन के विभाग का बँटवारे के कारण उत्तम शोध से विवाद उठ उठ जाता था, तत्रन्विता केवल अग्नि में थी, न कि शमयमान ब्रह्मणों में ॥१६८॥

अरतामेव स्तवने जपतामेशाधरस्फुरणम् ।

यजतामेव समिद्रुचिरेणाग्नि एव वृष्णसंपर्तः ॥१६९॥

स्तवने अथ वृद्धों का हाता था, अथर का अररररता फल जप करने

बालों का रौता था, समित् अर्थात् समिधा की इच्छा यज्ञ करने बालों को ही होती थी (न कि कुल के लोगों के समित् अर्थात् पुत्र की इच्छा होती थी)
 कालिमा का सम्बन्ध केवल मृगतम में ही होता था (न कि कुलीन लोगों में
 कालिमा अर्थात् पाप का सम्बन्ध था) ॥१६६॥

तस्याभूत्सकलकलोद्भासितपक्षद्वयस्य सुत एक ।

नाम्ना सुन्दरसेन कच इव वचसामधीशस्य ॥२००॥

इहसति के विस कच नाम का पुत्र हुआ उसी प्रकार अपनी समस्त
 कलाओं से मातृकुल और पितृकुल का उद्दामित करने वाले उस पुरन्दर के
 सुन्दरसेन नाम का एक पुत्र था ॥२००॥

पशुपतिनयनहृताशनमस्मितमवधाय यं वपुष्मन्तम् ।

अपरमिष कुसुमन्नाप रतिरत्तमे निर्ममे घाता ॥२०१॥

विष्ठा ने कामदह को शिष्यी की नेत्रादि में मम्म हुए देण्डर रति
 की तृप्ति के निमित्त शरीरवारी वृत्ता कामदह माने बना टामा था ॥२०१॥

तिष्ठन्तु सावदन्त्या कुलसलना यस्य रूपमवलोक्य ।

सापि महामुनिदयिता कृच्छ्रेण ररक्ष चारित्र्यम् ॥२०२॥

वृत्ती कुलवन्धियों की बात दूर रहे, जिसका कम देण कर महामुनि की
 पत्नी (बरिष्ठ की पत्नी अरुन्धी अथवा अग्नि की पत्नी अनशुषा) भी की
 मुनिजल म अरुण परिष की रक्षा कर मरी थी । २०२ ॥

कलघोतफलयकशोभा विभाणं यस्य पूयुतरं वदा ।

इष्टवा चिराय सदमोर्हृरिहृदये हृत्स्मितं मेने ॥२०३॥

पुरण के पाठ केने त्रिमक पिशाक बरुम्पत्त को दण कर लक्ष्मी देर तक
 विष्णु के हृदय पर अपना निशान कष्टप्रद ममभला रही ॥२०३॥

कयमीदृग्यदि न हृत्त शयिद्यरसैरय कृत्त कथं व्ययक ।

इत्यं यमीदामाणो निर्णयमगमन्न फामिनासाथ ॥२०४॥

कामिनी-मनूर किस देणा हुआ रत प्रकार जिन्ही विष्णु कर मरी पत्नी
 कि यी कर पत्र के रत्ने म मरी बना दे ती पना किम दे ॥ २०४ ॥

यो जग्राह हिमांशो प्रसन्नमूर्तित्वमचलत स्वीर्यम् ।

जलधरत उग्रतत्वं गाम्भीर्यं यादसां पयु ॥२०५॥

त्रितने बनरमा से प्रसन्न-मूर्ति ईना, पवत स स्थिरता, मेघ स उग्रता और
रुद्र से गाम्भीर्य प्रदर्श किया था ॥२०५॥

यो त्रिनयस्य निवासो वैदग्ध्यस्याग्रय स्थिते स्थानम् ।

प्रियदाघामायतनं निकेतनं साधुचरितस्य ॥२०६॥

जो त्रिनय का निवास, विदग्धता का आश्रय मयादा का स्थान, प्रियवचनों
का आश्रय एवं साधु चरित का निष्ठान था ॥२०६॥

यो मदन प्रमदानां मुहिनकरः साधुकुमुदपण्डस्य ।

निकर्योपलो गुणानां मार्गतरुः पथिकलाकस्य ॥२०७॥

जो प्रमदाद्या का मदन साधुजन कर्षी कमुदपण्ड का विरहित करम बाला
कर, गुणों का निरूप एवं पथिक जन का मार्गदृश था ॥२०७॥

सम्पन्नगोष्ठीनिरतः काव्यकथाकनकनिकयपापाण ।

प्रणयिजनकल्पवृक्षो सहमीलीलाविहारभूमिश्च ॥२०८॥

जो सम्पन्नो की नमा में बैठे रहता काव्यालार रूप लेने का निरूप,
प्रेमी जनो का निरूप कल्पवृक्ष और सहमी की लीलाद्या की विहार-भूमि
था ॥२०८॥

जलधिरिव तुहिनभासः सहवृद्धिपरिक्षय सुहृतस्य ।

सकन्नापघाविरुद्यो बभूव गुणपानितो नाम्ना ॥२०९॥

जल का समुद्र के समान साव ही बढ़ने-घटने वाला ठण्डा सब प्रकार
से पथेदिन गुणपानित नाम का एक मित्र था ॥२०९॥

तेन समं स कदाचित्पिष्ठजहृषि प्रसङ्गतं पतिताम् ।

केनापि गीयमानामश्रुणोदार्यामिमां सहसा ॥२१०॥

उसके साथ किसी समय बैठे हुए उसका प्रसंग स प्रस, किसी क बात गइ
गई एवं आपा की सहसा मुना ॥२१०॥

दिशान्तरेषु वेपस्वभावमणितानि ये न बुध्यन्ते ।
समुपासते न च गुरुन्विपाणविकलास्त उभाण ॥२११॥

दूसरे दिशों की वेपम्पा रहन-उहन और बोली जिन्हें मालूम नहीं तथा गुरुवर्तों की सेवा प्रियत्न नहीं की व बिना योग के वेक है ॥२११॥

आकर्ष्याथ समूचे वचनमिदं सुन्दर सुहृन्मुख्यम् ।
शोमनमेतदर्शितं गुणपालित साधुनानेन ॥२१२॥

गुनरर सुन्दरसन अपने प्रधान मित्र स बोला— गुणपालित, हम गले मानुष मे ठीक यह गीत गाया है ॥२१२॥

साधुनामाचरितं सलक्षेष्टं विविधलोबहेवाकान् ।
मर्म विदग्धैर्विहितं कुसटाजनवक्रकथितानि ॥२१३॥

गुरुलोहशास्त्रतत्त्वं विटवृत्तं धूतवंचनोपायान् ।
वारिधिपरिक्षां पृथ्वीं जानाति परिभ्रमन्पुण्य ॥२१४॥

जब आदमी समुद्र स धिरी पृथ्वी पर भ्रमण करता है तब वह सरबनो प धावरण दुबनों की चेष्टा, विविध प्रकार क लोगों की उत्कृष्ट, विदग्धवर्तों के परिहास, कुलद्यमों की परोक्षियां गम्भीर और गूढ़ शान्ती का तन्व, धिरी का वृत्तान्त और धूर्तों क ठगने के उपाय मे परिचित होता है ॥२१३ २१४॥

अत उज्जित्य गृहस्थितिसुखमेष्टं विविधलाभपरिणामे ।
स्यापय गमनारम्भे वयस्य हृदयं मया सहित ॥२१५॥

अतः है मित्र, पर पर पड़ा रहने के लक्षबाध मुन की छोड़, विविध प्रकार के लाभ के परिणामभ्रमर मरे साथ हम गमन-कार्य मे मन को प्रवृत्त करते ॥२१५॥

इत्थं निगदितवन्तं सुहृदुत्तरत्नामसानसात्मानम् ।
ऊधे सुन्दरसेनं सग्भित इव सदृशरो वचनम् ॥२१६॥

हम प्रकार मित्र के उत्तर सुनने क शपुष्प श्वर हुए सुन्दरमन स उगता वापी लगेगा ज बोला ॥२१६॥

अभ्यर्चनानुव्रथा लज्जाकर एव माहृशां किन्तु ।

आकर्णय मययाम पयिकाना यानि दुस्तानि ॥२१७॥

‘मुक्त-वेत्ता’ से कार-कार प्रायना करना लाजकार ही है किन्तु मुनो, पयिको के मग में जा कष्ट होत है, उन्हें पता है ॥ १७॥

कर्पणवावृतमूर्तिदू राध्वपरिथ्रमावसिप्रशक्ति ।

पांसुल्लटघृसरितो दिनावसाने प्रतिथययाकांक्षी ॥२१८॥

पयिक दर में पट्ट पुराना कपडा लपटे, सुनू मग पर चले कर पक जाने में समझाय पल बाला, पूल-पस्कर से मग दिन बीत जान पर निरास स्थान का हस्तुक ॥ १८॥

मातर्मोगिनि दयां कुह मामैव निपुरा भव सवापि ।

कायवरोन गृहेभ्यो निर्यान्ति भ्रातरश्च पुत्राश्च ॥२१९॥

इस प्रकार बहुत तरह की बीन बर्ने करना है कि, माँ, बहन, मुक्त पर दया करो, इस तरह निठर न पना दुन्दारे मी माई और लड़क कापयश पर ने बाहर भिस्तते है ॥ १९॥

किं वममुत्पाटय गृ प्रातर्गन्धार ईदगम सताम् ।

भवति निवासो यस्मिन्निज इव पयिका प्रयान्ति विप्रामम् ॥२२०॥

क्या हम लोग प्रव-काल पर उग्राह कर ल भगैंग ? सख्तनी का निरास स्थान ऐसा ही हाता है, जहाँ पयिक अनन पर की माँधि विमान करते है ॥२२०॥

अथ रजनीं नयामो मयाकर्षचित्तवाधमे मातः ।

अस्तं गतो विवस्वान्दद सम्प्रति कुत्र गच्छाम ॥२२१॥

माँ, दुन्दारे आभम में निज किमी तरह आज रात गुवार लेंगे । धरम इन गया, बही इस समय कहीं क्या ? ॥२२१॥

इति बहुविधदीनवचा प्रतिगेहद्वारदेगमधितिष्ठन् ।

निर्भस्त्यतेव राको गृहिणोमिरिदं वदन्तीमि ॥२२२॥

मन्क पर के दरवार पर खड़ा हुआ वह यह कहती हु पर बाली मित्रो से दुन्दरा जाता है ॥२२२॥

न स्थित इह गेहपति किं रटसि वृथा प्रयाहि देवकुलम् ।

कथितेऽपि नापगच्छति परम मनुष्यस्य निर्वन्धम् ॥२२३॥

‘मालिक घर पर नहीं है, क्यों धर्म का बन्धन कर रहे हो ? मन्दिर में चले जाओ देलो कहने पर भी नहीं टसकता, मर्तों की जात बड़ी बोट होती है’ ॥२२३॥

अथ यदि कर्मचिदपरं पुनः पुनर्याचितो गृहस्वामी ।

निदिशति सावधीरणमत्र स्वपिहीति जीर्णगृहकोणे ॥२२४॥

और यदि किसी प्रकार बूझने पर का मालिक बार-बार मांग करत पर नाक भी धिक्कोड़ कर बता देता है कि इस पुण्यन घर के कोन में ना जाओ ॥२२४॥

सत्र कलहाममाना विद्वति गृहणी विभावरीप्रहरम् ।

अशाताय किमर्थं वासो वतस्त्वयेति सह भर्त्रा ॥२२५॥

तो उसकी पर-वासी वह कहती हुई कि अनजान आदमी का क्यों घर में तुमने वास दे दिया, लारी रात पति से मगझी रहती है ॥२२५॥

ईदृगयं सरलात्मा किं कुर्मो भगिनि तावको भर्ता ।

स्यास्यसि गेहेऽप्यहिता भ्रमन्ति ससु वचका एवम् ॥२२६॥

‘कहिन सेठ मरद बना लीधा है नू क्या करते है ? जरा फ न कपन होकर रहना । इत तरह टग घूमा करत है ॥२२६॥

इति भाजनादियाधृषां घुष्टौ विनिधाय निवर्तयतिनो गेहात् ।

नारीजनं समेत्य ब्रूते सामासभावेन ॥२२७॥

इत प्रकार पदौघ के मरतन स कठन आदि मांगने क कहान सिर्वा आकर पत्र यथायम्यरी क रूप में कह जाती है ॥२२७॥

गृहगतमपिबमन्त्रिषा कलमकुलत्याणुचणममूरादि ।

एवीभूतं भुक्तेदुषोपस्तसोऽप्यगो भेदाम् ॥२२८॥

इत तरह गिद्धों पर घूम कर गणिक भजन कनसी सीनी मना, मन्त्र आदि एक म विना कथा विचारन भूत में लोडित हो गय्या है ॥२२८॥

परबधमर्णं यत्तुषा शमनीयं सुरनिकेतनं सप्त ।

पथिकस्य विधिः कृत्स्वानुपधानकमिष्टिकाक्षण्डम् ॥२२६॥

विधवा न पवित्र का मात्र न पराना न श्या भवती पर दशमन्दिर और
ठकिका ईद का दुकान बनाया है ॥२२६॥

इति निगदितवति तस्मिन्सुन्दरसेनस्य शोतरावसरे ।

इयमुपगीता गीतिः केनापि कथाप्रसङ्गेन ॥२३०॥

यह यह कह ही या था और सुन्दरसेन की जब उठर देने का अन्तर
दुआ रही बीच कृती मे कथा के प्रसंग से यह गीति गुनाई ॥२३॥

'निषवरभवनं सुरगृहमुर्योतनमतिमनोहरं शमनम् ।

कदशनममृतमभीष्टितकार्यैकनिचिष्टचेतसां पु साम्' ॥२३१॥

'जिन लोगों का चिष्ट अभीष्ट काय के सम्पादन में पूरी तरह सय युद्ध
है उनके लिए देवमन्दिर बनना ही शमन बन जाता है परती शक्ति मन्दिर
शरणाही जाती है, परराय भोजन अमृत बन जाता है' ॥२३१॥

तां च श्रुत्वा सुहृदं पौरन्दरिरिदमुवाच परितुष्ट ।

मम हृदयगतं प्रवदितमेतेन सहैव गच्छाम ॥३३२॥

उस सुन कर पुरन्दर का लम्का सुन्दरसेन सम्पुष्ट हो अन्तर मित से पोका
'रखने भरे दिल की बात साथ ही गोल ही, तो हम चलें' ॥३३२॥

अथ सहधरद्वितीयः श्लेषमुद्रावतरणकृतचित्तः ।

निरमात्सुन्दरसेनः कुसुमपुरादविदितः पित्रा ॥२३३॥

अन्तर सुन्दर सेन दूसरे शानी के साथ कसेरा का समुद्र पार करने के
लिए निरमय करके पिता के अन्तजाने ही कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) से निकल
पड़ा ॥२३३॥

परमन्विदग्धगोष्ठीरभ्यस्यन्नायुषानि विधिधानि ।

शास्त्रार्थनिधिगच्छन्बिलोकयन्वीतुकान्यनीक्रानि ॥२३४॥

विदग्ध बनो की गाथिर्षी^१ देग्ना, नाना प्रकार के आयुषो का अध्ययन

१—पार्थिव काज में यहाँ कई प्रकार की श्लेषिणी प्रचलित थीं, जैसे बाल
श्लेषी बदश्लेषी काष्ठाश्लेषी, गीतश्लेषी सुश्लेषी काष्ठाश्लेषी बीजाश्लेषी

करता, शास्त्र के श्रवणों को समझता अनेक श्रेष्ठता को प्रबलान्न करता ॥२१५॥

जानन्पत्रश्लेघनमालेख्यं सिक्खपुस्तकमणिं ।

नृत्यं गीतोपधितं सत्रीमुरजादिवाद्यभेदांश्च ॥२१५॥

पत्रे पर-कटाव की कला चित्र, मोम और काष्ठ की पुस्तकिया बनाने का कौशल नृत्य, गीत संगीत मुरज आदि वाद्यभेद सीखता ॥२१५॥

बुध्यन्वर्धकमङ्गोर्विटकुलदानमर्वक्रकपितानि ।

यध्नाम सुहृत्सहितं सुन्दरसेनो महीमल्लिनाम् ॥२१६॥

एष ठगो की बातें और कियें तथा कलायध्यों के परिहास-बचनों, बहोछिन्नों का समझना^१ मित के साथ सुन्दर सेन समस्त वृष्ठी पर ब्रूमा ॥२१६॥

अथ विदिसमकलशास्त्रो विज्ञाताद्येपजनसमाचारः ।

निजगृहगमनाकांक्षी स शिलोच्चयमवर्द्धं प्राप ॥२१७॥

तत्परचात् सक्त शास्त्रों के ज्ञान प्राप्त कर, अग्रेय जनों के खून-खून मासूम कर, अपने घर जाने का इच्छुक वह आशू (अशुद्ध) पर्वत पर पहुँचा ॥२१७॥

सत्पृष्ठवेशदर्शनलोसमति सुन्दरं परिज्ञाय ।

गुणपालितो यभापे विलोक्यतामद्रिराज इति ॥२१८॥

जब गुणराशित में देगा कि सुन्दरसेन आशू पर्वत के पीछे का मग्न देखने के लिए व्यथित हो रहा है तब बोला—देता इस पर्वतराज की ॥२१८॥

आदि । बाणमड ने हर्ष अरिभ में विद्यागोष्ठी का उल्लेख किया है । विद्या, धर्म शील बुद्धि और आशु में मिलते-जुलते लोग यहाँ अनुसूय वाचनीय के द्वारा एक आगद आसन जमायें ज्ये 'गोष्ठी' कहते हैं :—

समानविद्याविद्यशीलबुद्धिबयसामनुरूपैरास्तापैरेवप्राप्तनर्षो गोष्ठी ।

बाणस्यायन न लोर्षर्षिदृष्य पर-दिग्माप्यरा गोष्ठी धीर साक विज्ञानुर्गतिर्बो गोष्ठी के नाम न अशुष्ठी धीर शरी के भेद से गोष्ठीयों का ही सामान्य विभाग कर दिया है । इन सब प्रकार की गोष्ठीयों में विद्यार्थ्य का बुद्धिमानुर्ष अयचित्त होता है । अतः इत्युन में इन सभी प्रकार की गोष्ठीयों का निर्देश है ।

१—अर्थात्वि आशु न भी अयन अयनकपी (इत्तर) जीवत में पुन इत्ती

एष सुतः सानुमतः स्यन्दच्छीताच्छसलिलसम्पन्नः ।

लोकानुकम्पयेव प्रासेपमहोमृता मरी न्यस्त ॥२३६॥

मरहमान शीतल जल सं लग्न बह पवत हिमालय का पुत्र है, त्रिसे हिमालय ने लोगों पर अनुकम्पा करके पदभूमि में रख दिया है ॥२३६॥

शिशिरकरकान्तमौलि कटकस्थितपवनमोज्वल सगुहः ।

विद्याधरोपसेष्यो विभर्ति सखमीमय शंभो ॥२४०॥

यह शिशुजी की शोभा भारत करता है, क्योंकि इसके मी शिशिर पर चन्द्रकान्त मयि है (शिशु जी का शिशु चन्द्र से कान्त अपात् मनीहर लगता है) इसके मी कटक अपात् मध्यभाग में शयं निवास करते हैं (शिशुजी के कटक अपात् बलय के रूप में शयं रहते हैं) यह मी सगुर (अपात् गुहाओं से पुत्र) है (और शिशुजी गुरु अपात् कार्तिकेय क उचित हैं), यह मी विद्याधरो से संकित है (और शिशुजी विशेष प्रकार की संबन्धन विद्या की कार्य करने वाले योगियों से पुत्र हैं) ॥२४०॥

अत्र सद्यश्चरसंगतसुमनस इति जातनिश्चयो मन्ये ।

अभिव्यपति समुच्छेतु सारा निधि मूग्धकामिनीलोकः ॥२४१॥

यहाँ मूग्ध कामिनीजी उत में इसी के शिशुओं पर लगे फूल समक कर आरन्ध सं भर कर ताये की तोड़ लेने की इच्छा करती है ॥२४१॥

माश्रयं यतुपान्ते तिष्ठन्पेठस्य सत मुनयोऽपि ।

अथवा कस्याकर्षं न करोति समुद्रतिर्महत्तान् ॥२४२॥

आरन्ध तो इसमें है कि इस पवत के समीप ही सद्यश्चि तारे रहते हैं, अथवा इसमें आरन्ध है, यहाँ की समुद्रति किस आरन्ध मरी करती है ॥२४२॥

अथगत्य निरवलम्बनमम्बरमार्गं पतंगसुरगाणाम् ।

अथमवनिधरो मन्ये विश्रान्त्यै बेधसा विहित ॥२४३॥

पता लगता है कि अथा ने आकाश मार्ग का निरवलम्बन जानकर पतंग के पोंके के विभाग के लिये इस पवत को बनाया है ॥२४३॥

अथर की उपलब्धिप्राप्त इतिहास की थीं बीधा कि 'दुर्बचरित' में वे लिखते हैं—अथर म्यम्बर वाले बड़े बड़े राजपुत्रों को देखना, अतिम्य विद्याओं से उपमामित गुण-धर्मों में विश्रान्त करता, मूग्धम्यद बाल-चित्त और गम्भीर गुणों वाले लोगों की लोचिनी में भाग लेता एवं विरुद्ध बर्णों के मरहली (गोपिनी) का गहन करता (प्रथम उच्यते वास) ।

इममात्रित्य हिमायोरोपघयः संनिकर्षमुपयाता ।

प्रत्यासति प्रभुणा प्रायोऽनुग्राहकत्वयेन ॥२४७॥

इसी परत की आभवा करके अधिवीर्य (अपने पति) बन्ध का सर्वाङ्ग प्राप्त किया, प्राय बीच बाँध अनुग्राहक के माध्यम से प्रभु का साक्षिप्य प्राप्त होता है ॥ ४७॥

सेक्तुमिवाशाकरिणोविसुञ्जरयपमवनिघरणपरिक्षिप्तान् ।

निर्भरसलिलकण्ठीयान् भवति हि सौहार्दमैककार्याणाम् ॥२४५॥

यह परत पूरनी धारण करने से, निष्ठा व निष्ठा दिमागों को मानों रीचने के लिए अपने निकट के जल-शीकर क्षिप्तता है क्योंकि एक ही कार्य करने वालों का आग्रह से सौहार्द हो जाता है (पूरनी धारण करने का जो वायु निष्ठा का है वही मदीयत् हमें से परत का भी है) ॥ ४५॥

हारोताहितयोमो मुदितशुको भ्यासयोगरमणीयः ।

विधान्तमरदाजः समतामयमेति मुनिनिवासस्य ॥२४६॥

हारेण पक्षिणो (हास्य विद्विषां) स शान्ता शुक्र पक्षिणो संवस्तविक, भ्यास (बिलार) के कारण रमणीय मरदाज (मरत पक्षिणो) का विभाक-स्वान यह परत हारीत, शुक्र भ्यास, मरदाज मुनिवो स सेक्ति आग्रह की समता प्राप्त करता है ॥२४६॥

अस्मिन्निःसंगा अपि परलोकाप्राप्त्युपायकृतयसाः ।

राघवहमाजना अपि न हिंसका फलभुजोऽपि न प्लवगाः ॥२४७॥

यहाँ निःसंग हार भी परलोका (अन्य लोक आपका मनुष्य पक्ष में मनुष्य पक्ष जो लोका भवता है) की प्राप्ति के उपाय में प्रयत्नशील, वायु मोहन करने वाले (नर देह मनुष्य) हार भी अहिंसक पानर म हार भी फल के भोगी ॥२४७॥

शुभनभैरता अपि पटवर्माणोज्यता अपि स्ववशाः ।

अनभिमतराद्रघरिता शिवप्रिया अपि यसन्ति शुभनिरता ॥२४८॥

एकमात्र शुभ फल में निरत हार भी पटवर्माण (अप्यपन-अप्यपन, ब्रह्म-पानन, पान छोर प्रविष्ट) में निरत वग (यह, पक्ष में विवेचित्र) हार भी रगपीन रीत्यवलि (यह = हार के चाल, पक्ष में मरदाज आपरत)

में अनभिमत होकर मां विष के प्रती, शान्त रामाय (तरन्वी जन) निवान करते हैं ॥२४८॥

मूर्तिरिव सिधिरररभेर्हरिणत्वती सप्तपत्रकृन्शोमा ।

सरणिरिव षष्ठमास फलाग्निनो यासुधानजायेव ॥२४९॥

मृग के रहने से युगांक (चन्द्र) की मूर्ति के समान, क्षमपत्र हृद्य (सवचन के पत्रों) से शोभित हो सप्तपत्र (सात चीने) वाले सुर्व के रम की मरुधि के समान, पलाश वृक्षों से शोभित होकर पलासिनी (मांस भक्षण करने वाली) राक्षसी सेना के समान ॥२४९॥

सौत्कण्ठेव समदना वासकसज्जेव कृत्तिलकशोमा ।

यद्गुरिपीसुसनाया नरनायद्वारभूमिरिव ॥२५०॥

मृग हृद्य (पर्व के पेड़) के रहने के कारण समदना उत्कण्ठिता^१ नायिका के समान शिखर वृक्षों के अवस्थित होने के कारण शिखर (पियौरक) से शोभित वासकसज्जा^२ नायिका के समान बहुत से हरिकन्दन और पीसु वृक्षों से युक्त होने से हरि (हरण), पीसु (हाथी) से समायुक्त राजाभार मृगि के समान ॥२५०॥

भ्रजु नवाणवाते कुस्लायवल्गयिनीव संछन्ना ।

श्रुसासहस्रोपचिता लक्ष्मीरिव गगनदेशम् ॥२५१॥

अश्वन और वासु नामक वृक्षों से ढँकी रहने के कारण अश्वन के साथ अश्व से ढँकी श्रेय सेना के समान हजारों श्रुसों (मालुश्रु) से सज्जित होने से श्रुस-सहस्र (हजारों वायुगण) सज्जित आकाश-सदृशी के समान ॥२५१॥

ध्वजिनीव दानवानां मृष्टकसमधिष्ठिता त्रियामेव ।

उद्यातरोहिणीका रम्येयमुफ्यका भाति ॥२५२॥

विष्टक अर्थात् आकाशवृक्षों से अधिष्ठित हाम से विष्टक नामक दैत्य से

१—विबभिसन की उत्कण्ठता वाली नायिका । यह हाम से अत्यन्त अभिमान वरस मानस वाली बलीमे से तर और कर्पती हुई एवं रोमरिजित अश्वों वाली नायिका 'उत्कण्ठिता' कहलाती है ।

२—यह अक्षयाह्न भद्र के अनुसार अष्टविध नायिकाओं में एक प्रकार की नायिका है । जब कर्षिका त्रिप के आगमन की उत्कण्ठता में अपने कामकागर (मीमांसक) की सब प्रकार से सुसज्जित कर्षी बैठती है तब उसे 'वासकसज्जा' कर्षी है ।

समधिष्ठित दानवी सेना के समान, रोहिणी अर्थात् इरीष के उत्सव होने से रोहिणी नामक नक्षत्र जिसमें उदित है उसी राशि के समान यह रमणीय उपत्यका (पर्वत के मीचे की समतल भूमि) होमा दे रही है ॥२५४॥

इति दर्शयति वयस्येसुन्दरसेने च परमतिप्रीत्या ।

स्वप्रस्तावोपगता गीतिरियं केनचिद्गोता ॥२५३॥

इस प्रकार जब मित्र विस्तार रहा था और सुन्दरमेन ललक से देल रहा था तभी किसी ने अपने कथा-मसह में पाद आई इस गीति (एक प्रकार की आर्या) का गान किया ॥२५३॥

‘अतिशयितनाकमुष्टं पूष्टं ये नार्कुर्यस्य पर्यन्ति ।

बहुविषयपरिभ्रमणं मन्ये केशाय केवसं तेषाम्’ ॥२५२॥

‘मग से बढ़ कर इस आर्कुर्यस्य के श्रुतभाग की ओ नहीं देखते, उनमें बहुत से देशों का घूमना केवल स्वयं के लिए हुआ, ऐसा मैं मानता हूँ ॥२५२॥

आकर्ष्यं च स धमापे महात्मनानेन मुक्तमुपगोतम् ।

शिक्षतिष्ठिर परमामो वयस्य रम्यं समावह्य ॥२५५॥

सुन्दर सुन्दरमेन बोला—‘मित्र इस मलेमातुस आदमी में ठीक कहा है, इस पहाड़ की रमणीय खोटी पर बढ़ कर देल ॥२५५॥

अथ गिरिवरमारुहो मिलोकयन्विविषविदुषमदनानि ।

वापोऽद्यानमुक्त्वा सरांसि सरितश्चधार विस्मेर ॥२५६॥

अनन्तर वह पहाड़ की खोटी पर बढ़ गया वहाँ अनेक प्रकार के देवाल्यों, शारिर्वा उद्यान, सरोवर और नदियों आरव्य के साथ संगत हुआ पहले लगा ॥२५६॥

विश्वरज्जुपवनमण्डपपुष्पप्रकरामिरामभूपुष्टे ।

रममाणो मह सस्या सलनामालोक्यामाम ॥२६०॥

(इसी समय) पुष्पाक्षीय अभिषेक उत्सव भूमि में विश्वरज्जु करते हुए उसने लगी के साथ लीड़ा करती वह एक लालना का दाता ॥२६०॥

अचिरामामिव विपनां ज्योत्थामिव कुमुदवन्धुना विक्रमाम् ।

रतिमिव मग्मवरहितां श्रियमिव हरिवन्धुना पतिताम् ॥२५७॥

यह मधुरियुक्त विवर्णा, पद्मिनीया कीदनी, मग्मवरहिता रति, विरु के वय ने गिरी लक्ष्मी ॥२५७॥

हस्तोच्चयं विधातुं सारं सकलस्य जंतुजातस्य ।

इष्टान्तं रम्याणां शस्त्रं संकल्पममनो जैत्रम् ॥२५८॥

विधाता के हस्त शिल्प का नमूना उसल जीवजगत् का सार रमणीय पशुओं का इच्छन्त, कामदंभ का जबरजस्त शस्त्र ॥ ५८॥

विकसितकुसुमसमृद्धिं शृंगाररसाप्यौक्यकलहंसीम् ।

सीसापलववल्लीं प्रतिनामवधानवर्मणां भक्षीम् ॥२५९॥

शिला हुए पुष्पों की समृद्धि, शृंगार रस की मरी की एकमात्र कलहसी, सीसा के पलवकी वाली लता और तगस्त्रियों की समाधि की वनध को बध्ना-धूर कर देने वाली मक्खी वी ॥२५९॥

प्रबलोक्यतस्तस्य स्मरसायकवेध्यतामुपगतस्य ।

हृदममबन्धनसि चिरं विस्मयभाराभिभूयमानस्य ॥२६०॥

जब मुग्धजन उस देवता हुआ कामदेव के बाध से विभ गया तब धारण्य के मार से अभिभूत होते हुए उसने दर तक मन में यह सोचा ॥२६०॥

केदं तसु विश्वसुखं कीयसमस्यद्भुतं समुपजातम् ।

येन विच्छानामपि घटितैकत्र स्थितिस्तथाहीयम् ॥२६१॥

'यह विश्वा का अद्भुत निमास कीयल कहीं से उलग हुआ, कित्त संस्कारविन्द पराशों का एकत्र उगहन है ॥२६१॥

सप्तसवमुनिर्दोषा स्फुरदुज्ज्वलतारकाभिरामा यः ।

निर्वाण्यवदनकमला जितवीणा कणितवाणी च ॥२६२॥

कैवा कि यह रमणी सशित यह वाली निर्दोष और अपकरार और उज्ज्वल कान्तों के धारों से अभिराम है । इसका मुगधपल अचञ्चनीय है, वाणी/पीशा की वगाधित करने वाली है और कणन (बीजा की आवाज) शिरी है ॥२६२॥

प्रकटितविग्रहसंस्थितिरतिघोभापटितसंधिवधा यः ।

उग्रतपयोधराहया शरदिन्दुकरावदाठा च ॥२६३॥

उसके अंगों का समान स्पष्ट निरताई द यदा है और अग्नी अचिन्तम घोमा से इसके ठव अद्भुतों का मेल बैठ हुआ है, जैसे जैसे पयापरा (लनों) वाली है और शरदिन्दुनी अन्त की पारिनी के समान पास है । ॥२६३॥

अभिमतसुगतावस्थितिरभिनन्दितवरणयुगलरचना च ।

प्रतिविपुलअपनदेशा विध्यस्तशरीरविहितशोभा च ॥२६५॥

मुन्दर बाल स चञ्चना और चञ्चना इसे अभिमत है और भिन्ने दोनो बरसों की रचना का लोग अभिनन्दन करत है । इसका अपनदेश प्रति विद्यस्त है और कामदेव के कारण इसकी शोभा है । ॥२६५॥

१—ऊपर के तीन श्लोकों (२६३-२६६) में कवि ने प्रस्तुत नायिका में श्लेष बधित विरोधामास के द्वारा परस्पर विरोधी वस्तुओं का एकत्र सघटन बताया है । मम से उभे हुए प्रकार मममत्ता आदि—

नायिका निर्दोषा है दोष अर्थात् बाहु, विरगत बाहु वाली अर्थात् बाहुहीन है फिर वह ललित वपु अर्थात् शोभित शरीर वाली कैय है, अप च वापा अर्थात् रश्मि निर्दोष अर्थात् रजस रहित है, फिर अमकल रूप तारों मन्त्रों से अभिराम कैय है ? विरोध का परिहार यह है कि नायिका निर्दोष अर्थात् दोषों से रहित है उसमें कोई दोष नहीं और अमकल अर्थात् तार से अभिराम है ।

उसका मुख-कमल निर्बाण्य अर्थात् बाली रहित है फिर उसकी बाली बीजा को जोत लेने वाली कैय है ? परिहार यह कि उसका मुखकमल निर्बाण्य अर्थात् अवलम्बीय (जिममें धाई बहने, वाप हुन की बात नहीं) है ।

जब कि उसका पाशो के द्वारा बीजा को पराजित कर दिया है तब उसकी बाली अर्थात् अर्थात् बीजा को आश्रय लेने कैय है ? परिहार यह कि बीजा स आश्रय नहीं लेती बल्कि बीजा की आश्रय लेती तुल पड़ती है ।

जब कि उसका विषाद अर्थात् बुद्ध की मत्स्यात को प्रकट किया है फिर शोभा के द्वारा स पक्ष अर्थात् मत्स्यात कैय कर दिया है ? परिहार है कि विषाद की अस्तित्व अर्थात् अज्ञेय का विन्यास अपनी उगाह पर रहना और सपक्ष अर्थात् अज्ञेय का सरोज्य मत्स्या ।

जब कि ऊँचे ऊँचे बपोपरी अर्थात् मेघों से परिवर्ण है तब फिर शरत्कालीन चन्द्र की चोपरी से अवर्ण कैय है ? परिहार यह कि ऊँचे ऊँचे बपोपरी अर्थात् लकी काँची है और शरत्काल की चन्द्र की मण्ड परत है ।

जब कि सुगल अर्थात् बुद्ध में अस्तित्व जिसे अभिमत है तब फिर बरसों अर्थात् वेद की ताताशी की रचना अभिमत कैय है ? परिहार यह है कि सुगल अर्थात् शोभन ममन उभे अभिमत है और परत अर्थात् पर उभके आभनमिद है ।

अबकि उमका उमका भाग प्रति विद्यस्त है फिर उमके शरीर की शोभा विपुल अर्थात् विपुल प्राप्त कैय है ? परिहार यह कि उमका उमका भाग प्रति विद्यस्त है और विपुल अर्थात् विपुल को प्राप्त, ठिब के द्वारा हुन है शरीर विपुल उभे कामदेव द्वारा जिसे मत्स्या की शोभा मत्स्यात है ।

विस्मृतसकलान्यकर्मणः सपदि ।

यामङ्कुरितं सात्त्विकैर्भावे ॥२६७॥

श्री और शीत ही अपने दूसरे सारे काम भूल गई ।

६ मास^१ अङ्कुरित होन लगे ॥२६७॥

स्मिन्नेव क्षणे स्मरं समाश्रित्य ।

प्रमोहिं कृत्यं करोति खलु सर्वं ॥२६८॥

कुछ ही देर पल्ल उसे मुल द रही थी) उसी क्षण

ने स्मरण करने लगी अपने मासिक का काम

प्रस्वेदजलं विनिर्ययौ तस्या ।

बह्विध्यभुजा दह्यमानेभ्यः ॥२६९॥

जब कामाग्नि क कारण जली जाती हुई उसके अंगों

दूधने लगी ॥२६९॥

सा मुहुमुहुर्विदधतो विवृत्तानि ।

मत्स्यवधूमनुषकार सा तन्वो ॥२७०॥

श्री, बार-बार छटपटाती और अलग-अलग होती हुई

एक करने लगी ॥२७०॥

या पुलकन्वती स्वेदिनीं मनिश्चामाम् ।

ऽऽभीडति हि शत्रो विशिष्टमासाद्य ॥२७१॥

उसे जड़ी-भूत शरीर पानी, बंदरुनी से मगी,

—
स्मर के बलिग ई—

ऽयं शीमाश्रयः स्वरमज्ञोऽयं विपमुः ।

एकमा इत्यप्यौ सात्त्विक्य मताः॥

रोम्यञ्चयुन, पत्नीने म तर और निरवासयुक्त बना डाला शठ विरोध स्थान पाकर और गच्छ खेलने लग जाता है ॥२७१॥

उच्छ्वासैरुत्सर्जनं कुक्षयुगले सौष्ठवं विनासानाम् ।

अभिलपितेन प्रेम्णा स्निग्धत्वं अञ्जुपोर्मनोहारि ॥२७२॥

उच्छ्वासी के कारण उसके स्नन उस्तसिद्ध हो उठते थे, उसके मन में एक विरग इच्छा के उत्पन्न हो जाने के कारण उसके खिलासों में अधिकतर पारता उत्पन्न हो गई थी, प्रेम के कारण उसकी आँसुओं में मन हर लेने वाली स्निग्धता छा गई थी ॥२७२॥

अनुरक्तया वदनरुचिं वचसि च गमने साम्यसस्खलनम् ।

तस्या मदनं कुर्वन् उपनिन्ये चास्तामवधिम् ॥२७३॥

अनुपग के कारण उसके मुख की कान्ति कुछ और ही हो गई थी, बायो और गमन दानों में उसके मय के कारण स्थलन होने लगा, इस प्रकार काम-देव ने उसकी चास्ता को सीमा तक पहुँचा दिया ॥२७३॥

पार्श्वगतैःपि प्रेयसि कामघरासारस्ताह्यमानापि ।

न शशाक साऽभिधातु चित्तगतं प्रणयभङ्गसो भीता ॥२७४॥

प्रियतम के पास होने पर भी, काम के बायो की बग से ताड़ित होती हुई भी प्रणय-भंग हो जाने की आशंका से डरी हुई वह अपने विश्व की बात न कह सकी ॥२७४॥

मय विदितचित्तवृत्तिं सक्तदग् प्रियतमे समाकृष्य ।

मदनेन दह्यमानां विहसितविद्यदं अगाद तामाशो ॥२७५॥

अनन्तर उसकी चित्तवृत्ति को जानकर, प्यारे में लगी आँसुओं वाली एवं कामाग्नि में जलती हुई उस लीनकर लगी मुसुराते हुए बोली ॥२७५॥

मपि हारसते संहर हर्षकृतिदग्धदेहसंक्षोभम् ।

सद्भावजानुरक्तिर्नाहि रम्या पण्यनारीणाम् ॥२७६॥

अरी शरलन, शिव जी के दुन्दार में दग्ध शरीर वाले कामदेव द्वारा अनित उद्देश्य की दूर दृष्टा, क्योंकि बाबाक औरता के लिये मदमादजनित अनुरक्त शिक्कर नहीं ॥२७६॥

अवधोरय धनविकलं कुरु गौरवमकृशसम्पदं पुत्र ।

अस्मादृशां हि मुग्धे धनसिद्धौ रूपनिर्माणम् ॥२७७॥

धनरहित पुरुष को छोड़ और बहुत धन वाल पुरुष का गौरव (जमान) कर क्योंकि धरी बकहूफ, हम देखियो क रूप का निर्माण धन कमाने के लिए हुआ है ॥२७७॥

अभिरामेऽभिमनिवेशं विदधाना विविधलामनिरपेक्षा ।

उपहृत्यसे सुमध्यै विदग्धवारारङ्गनावारैः ॥२७८॥

धरी सुन्दर अभिमान वाली, तु नाना प्रकार क लामो की पर्याह न करके केवल सुन्दर (विचार देन वाले) पुरुष में अभिमनिवेश जो कर रही है तो बालारक वेर्याओ की जगत में तेरी भित्ती उबेगी ॥२७८॥

येषारलाभ्यं यौवनममिमुक्षतामुपगतो विधियेषाम् ।

कसितं येषां सुकृत्तैर्जीवितसुखितार्थिता येषाम् ॥२७९॥

जिनका यौवन प्रदंशनीय है, जिनका माय अनुकूल हो गया है, जिनका पुण्य कलित हो चुका है और जो जीवन का आनन्द प्राप्त कर चुके हैं ॥२७९॥

अभिमान है। इसमें उत्पन्न अनुभूति को 'अभिमानिकी अनुभूति' कहते हैं। वास्तविक के अनुसार प्रीति और प्रेम ही होती है—

अभासादामिमानाभ्य समा सम्प्रत्ययादपि ।

विपयेभ्यश्च तन्त्रसाः प्रीतिमाहुरनुभूतिषाम् ॥२८१॥

उनमें अभिमानिकी प्रीति का लक्षण है—

अनभ्यस्तेष्वपि पुरा कर्मस्वविपयास्त्रि ।

सङ्कल्याग्वायते प्रीतिर्यासा स्यादामिमानिधौ ॥

एक शोचनीयों में और भी शब्द रूप में हम समझते हैं—

'उन्मु रम्याणि मूर्खाणि धार्मं स्यादिदमन मे ।

इति को निर्णयो धीरैरभिमानः स उच्यते ॥

प्रस्तुत में सगी में प्रीति करना केशवों के लिए अर्थ (दानिकार) कहा है।

१—२०० के उत्तरार्ध की २२६ आया का अर्थ वैदिक जीवन का शरण माना है। प्रीति सगी न कहा है 'हमारा रूप निर्माण धन-निधि के लिए होता है और इसी प्रकार की जमानत 'हमारा जल न भी किया है—

'० वेगुरु रंही कमी हम भुवन में न आया कि कोई तुम्हारे मरने दिन में

तेज्वरयं स्वयमेव त्वामनुवर्ति मदनशरमिषा ।

नहि मधुलिह कृणोदरि मुम्यन्ते धूतमंजर्या ॥२८०॥

य अत्रय सयं कामदेव क बाणों से मिद तक धरे पीछे पड़ने । हे इत उदर वाली, काम को मधुरी मीरी की खोज नहीं किया करती ॥२८०॥

इति गदितवतीमालो कामशरसारमिश्रसर्वाङ्गी ।

अव्यक्तस्त्वलिषाक्षरमुखे कृच्छ्रेण हारलता ॥२८१॥

यह कहती हुर सली से हारलता जिसके अंग अंग काम-बाणों की वर्षा से मिद गए य, यड़े कष्ट से, अगच्छ एवं दूखती आयात्र में बीसी ॥२८१॥—

सखि कुरु तावद्यत्नं बहुमनसिजवेदनाप्रतीकारे ।

क्रोडीकृता विपत्या न भवन्मुपदेशयोम्या हि ॥२८२॥

हे सखी, अछहन वेदना को रोकने के लिए तब तक शय्य मत करो, क्योंकि विपत्ति के मार्ग को उपदेश नहीं दिया करते ॥२८२॥

अस्वायत्त श्रेयान्मुदुपवनं सुरमिमास उद्यानम् ।

इयती खलु सामग्री भवति हि क्षीणायुषामेव ॥२८३॥

अनापीन प्रिय इच्छी हवा यवन्त का मदीना बाग इतनी माम्पी क्षीण आयु वालों के ही हाथों है ॥२८३॥

मत्वा मदनाशीविपविपकेगाकुलितविग्रहामासीम् ।

समुपेत्य शशिप्रभया पीरंदरिरमिदधे वृत्तप्रणति ॥२८४॥

अब शशिप्रभा को यह भाजूम ही गया कि मछी हारलता का शरीर काम करी बिप क बाग में आरुण ही उठा है तब अन्तर प्रकाश करके पुरस्कार के पुत्र मुन्दरमेन में बीसी ॥२८४॥

यदि नाम स्यद्वि गिरं गणितामावोपजनितयैसद्यम् ।

सदपि क्यनीयमेव स्निग्धापदि नहि निरूप्यते मुक्तम् ॥२८५॥

गणित्वा होन क कारण उत्पन्न जं लज्जा है यह बाणी का रोक नहीं है

बादगा । तैरा अमावा जो मुक्त पर जाय देता है बार दिन के बार चलता फिरता मजर आरवगा । यह मुक्तों इरागात्र प्यद नहीं कर सज्जा और न हय भावक है ।

वयापि क्ख्या ही पड़ेगा, क्योंकि स्नेही जन की भावति में युक्तयुक्त का विचार मही करते ॥२८५॥

एतावति संसारे परिगणिता एव ते सुजमानः ।

आपन्नपरित्राणे व्याकुलमनसः स्फुरन्ति ये वृद्धौ ॥२८६॥

इतन बड़ उतार में वे सुजन्मा साग होने-गिने ही पाद आ रहे हैं भिनका मन आपधि में पड़े हुए रक्षा के लिए व्याकुल हो उठ्य है ॥२८६॥

यस्मिन्नेव मुहूर्ते यदवधि इष्टोऽसि मे सख्या ।

तत एवारभ्य गता विधेयता दग्धमदनस्य ॥२८७॥

शिव क्षण मते सखी को तुम दृष्टि-गात्रर हुए हा उसी क्षण से बह मुए कामदेव के इशारे पर बसने लगी है ॥२८७॥

रोमोद्गमसंनहनं मिस्त्वान्तविग्रहं परापमिता ।

तस्या मानससम्मवकोदण्डविनिगता द्रुपवः ॥२८८॥

कामदेव क पदुप स निरुक्त हुए बाध उसके रोमाञ्च के कच की मेद कर भीतर शरीर में गड़ गये हैं ॥२८८॥

किंवा वदतु वराकी कुच समाश्रस्तिु मातु कं शरणम् ।

पोडयति भृशं यस्मान्नित्यं शुधिवक्षिणो मृदु पवन ॥२८९॥

बह बेचारी क्या वीत, कहीं हाँस ले किन्की शरय में जाय ? शिवस कि हलम मृदु शृगारी पवन उभ पीड़ित कर रहे हैं ॥२८९॥

यच्चसि गते गद्गदतामुग्भिस्तमीनप्रतारिचराय पिका ।

हृष्टा व्यथयन्ति सर्वे जातावसरा निरगंलं विष्टी ॥२९०॥

सगी की आवाज जन गद्गद (अभ्यर्क-स्नातेत) हा गर्द तर अचतर पाकर प्रथम काचित्त मौन जन को छोड़ दर स सखी को अधिक कष्ट द रहे हैं ॥२९०॥

स्तनित्ताकुलिते गमने तन्वङ्गुषा अगणितश्रमा हंसा ।

सुचिरात्तव्यावसरा कुव ति गतागतानि परितुष्टा ॥२९१॥

तन्वङ्गु की स्तनित आर आकुलित गति क हीन पर दर क बाद अचतर पाकर इन अचरु पात स परितुष्ट हा जाना-भ्राना (गमनागमन) करन लग है ॥२९१॥

उप्योच्छ्वसितसमोरैर्विंदह्यमानोऽपि मधुकरस्तस्या ।

अलककुसुमं न मुचति कृच्छ्रेष्वपि दुस्त्यजा विपया ॥२६२॥

उसड़ी गर्म सर्त के समीर जलता हुआ भी मौन उसके अलक पर के फूल नहीं छोड़ रहा है, दुस्त की स्थितियों में मो बिरयों का त्याग कठिन होता है ॥२६२॥

नो वारयति तथा मां साम्प्रतमिति कथयतीव मधुसेह ।

निःसहवपुषं कर्णं श्रुतिपूरकपृष्पसंगतो गुञ्जन् ॥२६३॥

निःसह शरीर वाली उस (हारलता) के कान में कनकूल पर बैठ कर गुंजार करता हुआ भीरा मानो उससे कहता है कि पहले की मति अब तु मुझे वारण नहीं करती ॥२६३॥

प्रशियिलभुजलतापायास्तस्या पतितस्य हेमकटकस्य ।

यत्प्रापणं पृथिव्यास्तस्मिन् ससु मुक्तहस्तता हेतु ॥२६४॥

अपिक शियिल भुजलता वाली उसक हाथ स गिरे हुए सोने के कान का जो जमीन पर पड़ जाना है उसमें हेतु उसका मुक्त अर्थात् शियिल दल वाली होना है (रक्षण से उसकी मुचलता अर्थात् उदारता हेतु है) ॥२६४॥

रथनागुणेन विगलितमेकमदे सन्नितम्बस्रिषद्यम् ।

पतनाय नियतमथवा निपेवर्णं गुरुकामप्रस्य ॥२६५॥

यह आरथ्य की बात है कि उसके निम्ब स रथना-गुण (करपनी) एक-एक गिर पड़ा, अथवा क्या न हो ? गुरु क वलय (पत्नी) का सेवन (गमन) पतन का कारण होता ही है (क्योंकि रथनागुण में गुरु अर्थात् विशाल निम्ब के कलकभूत भोगि का सवन क्रिया, अर्थात् उसके साथ रहा) ॥२६५॥

अङ्गीकृत्य मनोमवमुरसि तथा सालिवोऽपि हृत्हारः ।

वापयति सर्षीं सत्तामन्तर्मिन्नात्कुत कुशलम् ॥२६६॥

इस प्रकार हृदय के समीर गगन पर उनके हाथ लालित हुआ भी मुझा हार कामनेह क पक्ष की अङ्गीकार कर गयी का मनान कर रहा है, ठीक है अन्तर्मिन् (एक अथवा मन में कस-दि द्वारा निष्प्रेर प्राप्त पद में नञ्छिद्र क्योंकि हार बिना छिद्र गीण गूना मनी का लजता अतः यद भी अन्तर्मिन् है) क्योंकि स वन्नागुण कैम लम्बा हा मकता है ? ॥२६६॥

वससि तत्स्वेदजलं कज्जलमलिनायुषारिणा मिथम् ।

कुचतटपतितं तस्या प्रमागसम्भेदसलिलमनुकुष्ठे ॥२६७॥

उसके शरीर पर रहने से मधुर और कज्जलसुकु धामु से मिश्रित उसके स्थान तट पर टक्का हुआ स्नेहस्र प्रभाग में गंग-पमुना क परस्पर मिश्रित जल का अनुकरण कर रहा है ॥२६७॥

पिकस्तमलयसमीरणसुमनस्मरमुद्गदहनपरिकलिता ।

पंचतपरचरति भवत्परिरम्भणसौख्यसम्पदा बाला ॥२६८॥

हृदयारे आसिद्धन के सुख के प्रति आसक्त यह बाला कौकिल की कुट्ट मलयानिष्ठ, पुष्प, कामदेव और मृदु इन शब्दों से घिरी हुई पञ्चापि-तन कर रही है ॥२६८॥

न परापतति वराकी दशमीं यावन्मनोमयावस्याम् ।

श्रायस्व सुमग सावच्छरणागतरक्षणं व्रतं महताम् ॥२६९॥

यह बेचारी जब तक अन्तिम दशमीं कामाख्या^१ (मृत्यु) तक नहीं पहुँच जाती है तब तक हे सुमग इमे वधा हो क्योंकि शरणागत-रक्षा व्रते लोगों का व्रत है ॥२६९॥

अथ सद्गचसि शृतावरमुदभूतमनोभवं समवधाय ।

अवगीतिभीतचेता ऊचे गुणपालितां सुहृदम् ॥३००॥

इतना कह कर शशिप्रभा के चले जाने के बाद गुण-पालिता न देगा कि मुन्दरमन उसकी बात में आकर कर रहा है और उसका काम-रग ट्यक्त हो गया है तां वेरना के माय रहने की निन्दा से डरा हुआ वह मिन से पाया ॥३००॥

यद्यपि मारप्रसरो दुर्वारः प्राणिनां नवे वसति ।

चिन्त्यं सद्यपि विवेकिभिरवसानं वारयोपिता प्रेम्णा ॥३०१॥

^१यद्यपि प्राणियों का नई अन्त्या में काम-वेग को राह पाता कठिन होता

१—कामव्रजित इम वायस्यात्—अपतर्पिते चित्तार्थे मद्रूप, विज्ञाप्येद मनुता विपर्ययिते विज्ञापना उम्मात्, मृत्पां णर्षं मृतुः । य अर्थिक काम द्वात् इति मानसिक द्वात् इति—अभिजाय चिन्ता, मृत्ति गुणदीप्तम उद्बेग, प्रसन्न इम्मलता व्यापि जदता और मृतुः ।

है तथापि विचारशील जनों को साक्षात् प्रीति के प्रथम के परिणाम के बारे में सोचना चाहिए ॥३०२॥

धारस्त्रीणा विभ्रमरागप्रभामिलापमदनक्ष्म ।

सहृद्विखिलयभाज प्रख्याता सम्पद सुहृद ॥३०२॥

बेरयाओं के विभ्रम राग प्रेम, झमिनाय और काम्यबा^१ में सब धन लयति के लिए कहे जाते हैं जो ठीकी के साथ बढ़ते-घटते रहते हैं ॥३०२॥

सामिरवदातजभा कुर्वीत समागमं कथं यासाम् ।

क्षणदृष्टोऽपि प्रणमी स्वप्नप्रणयोऽपि जमनोऽमूव ॥३०३॥

उनसे कोई कुशील व्यक्ति कैसे सदा कर सकता है बिनाहा तुरत का दृष्टि पक्ष में आया हुआ भी प्रमी बन जाता है और जपों का गाढ़ प्रमी भी घमा हा जाता है जिसे कमी दया ही नहीं ॥३०३॥

प्रद्युक्त प्रद्युक्तो विरूपक सखु विरूपक सततम् ।

सुखिन्ध सुखिन्धो रक्षो स्थस्तु गणिकानाम् ॥३०४॥

वे गणिकाएँ अधिक ऐश्वर्य प्राप्त व्यक्ति को सतत प्रथम मन प्रथम वृत्त का प्रथम कर कर गलना करती हैं जिसके पक्ष धन-सम्पत्ति नहीं उठा व विरूपक

१—सतराज्यान्^१ में स्पष्ट रूप में इनका अन्तर समझाया है—

प्रमा प्रमिलापा रागश्च स्नहः प्रथम रतिस्मया ।

शुभारहपति मम्मोगः सतावस्यः प्रार्थितः ॥

प्रमः स्निहः सम्पत् तस्थि समभिलाषः ।

रागस्तरागप्रसुधिः म्यात् स्निहस्तस्वरणक्षिपा ॥

तद्विषयोमासह प्रेम रतिस्तरागह वतनम् ।

शुभारस्तरमम क्रिया मम्भागः गतपाप्रम ॥

२—अर्थात् सामुद्र जनों का मध्य ल की पूरे होने पर लक्ष्मीओं के अनुसारा की भी वृद्धि होता है और उनका लक्ष्मी भी उनी चला जाती है लो लो प्रथम अनुसारा भी चलना जाता है । साक्षात् प्रेमप्रति तिष्ठते हैं—

दातो दागी तावद् वापत्पुराण्य निःगन्ति चरे ।

स्त्रीधनपुदररा^२ प्राया शर्गनगर्गव ॥

(समयमाहारा ८/११५) ।

अथात् विदुत रूप काला (कुलितव) करती है, जो बहुत सम्पत्ति-शास्त्री है वह उनके समक्ष स्नेहशील है और जो (अनर्हीन) स्नेहशील है उसे रक्षा करा करती है १ ॥३०४॥

यासा अधनावरणं परकीतुम्वृद्धये न तु त्रपया ।

उज्ज्वलवेया रचना कामिजनाकृष्टये न तु स्थितये ॥३०५॥

वे अथन अधन देश का आवरण कामुको के कुण्डल बढ़ाने के निमित्त करती है न कि लम्बा से शृंगार कामुक जनों के आकर्षण के निमित्त करती है न कि मयादा की भावना से ॥३०५॥

मांसरसाम्यवहार पुण्याहृतिपीड्या न तु स्पृहया ।

आलेख्यादी भ्यसनं वैदग्ध्यस्यातये न तु विनोदाय ॥३०६॥

मांस और उसका शौरा इतलिय भरती है कि पुरुषों के सम्पर्क से उनका उनके शरीर का दह कम हो, न कि इच्छा से चित्र आदि कलाओं में शौक अपनी किरणों प्रकट करने के निमित्त रखती है न कि मन बरहाने के लिये ॥३०६॥

रागोऽधरे न चेतसि सरसत्वं भुजसत्तासु न प्रकृतौ ।

कुम्भमारेपुसमुपतिराचरणे नामिनन्दिते सधि ॥३०७॥

राग (साली, दूसरे पद में अमुराग) उनके अधर में होता है, चित्त में नहीं सरसता (लोचानन) उनकी भुजलताओं में होती है स्वभाव में नहीं उनके शोक्ति स्तन में समुपति (कैचारी) है आचरण में नहीं त्रिनकी सम्बन्ध लोग प्रयत्न करते हैं ॥३०७॥

जयनस्यसेपु गौरवमाकृष्टघनेपु नो कुलीनेपु ।

अलसत्वं गमनविधौ नो मानववचनामियोगेषु ॥३०८॥

उनके जनों में गौरव (अथात् मारीगन) होता है, न कि राज्यानी लोगों के प्रति, त्रिनका पन न लीन पुरती है वे गौरव (अथात् नमारर का भाव)

१—आचार्य च मेघ्न का बहना है—

विष न वेति बेरया स्मरसदरं कुष्ठिनं जराजीर्णम् ।

विषं विनाऽपि वेति स्मरसदरं कुष्ठिनं जराजीर्णम् ॥

नहीं रखती आत्मस्य उनके बलने में है, लोगों के ठगने के कार्यों में वे आत्मस्य नहीं करती ॥३०८॥

वर्णविशेषापेक्षा प्रसाधने नो रतिप्रयन्धेषु ।

भोष्ठे मदनसङ्गो नो पुष्ट्यविशेषसम्मोगे ॥३०९॥

उन्हें निगाह-बटार में लाल-पीले आदि बर्णों की अपेक्षा होती है न कि सुख के प्रसंगा में वे श्राद्ध, क्षमि आदि बन्ध-विशेष की अपेक्षा रखती हैं मदन का उदय तब उनके भोष्ठ में रहता है न कि पुष्ट्य विशेष के साथ सम्मोह के कार्य में मनोदय हाठा है^१ ॥३०९॥

या वाखेप्रपि सरगा ब्रुद्धेष्वपि बिहितमभयावेगा ।

क्षीबेष्वपि कान्तदृश साकांक्षा दीर्घरोगेप्रपि ॥३१०॥

जो बरबाएँ पालक के प्रति भी अनुरागपत्नी होती हैं बूढ़ों में मदनवेग का प्रदर्शन करती हैं, ननुसकी पर भी काम-गुण दृष्टि रखती हैं और पुराने रीमार पर भी दृष्टुम रहती हैं ॥३१०॥

स्वेदाम्बुरुणोपचिता न चार्द्रता निजनिवासमनसश्च ।

धाविपुत्रुस्तवेषमयो व्योपलसारकठिनाश्च ॥३११॥

१ (रतिभय के कारण) ये स्वेदबल के कारणों से आद्र रहती हैं पर उनमें रसमें याला उनका मन (या हृदय) आद्र नहीं होता पुरुषों को ठगने के लिये बहुर से फैलौनी प्रकृत करती हैं लेकिन पुत्र वे हाट को मल्लि कर्णर होती हैं ॥३११॥

जयनसपना अनाया परमृतय पृत्तकनेश्वरागाश्च ।

मर्वा गार्पणक्ष्णा असमर्पितहृदयदेशाश्च ॥३१२॥

य जयनगरमा श्रीर अनाया होती है (पिरोध यह कि जनशरणा नाम का छन्द प्राया छन्द के अन्तगत होता है फिर यह अनाया किंग हा गजता है । परिहार यह कि बरबाएँ जयनगरमा अगात् गुरुन पुरुषों को सम्पन्न करती हैं (एवं अनाया अर्थात् दीन गमन वाली होती हैं) पशुता प्राय कृत्रिम-जयन

१—मदनमार्ग—काम मदनस्य पक्ष में मोह प्रयोग । हम आर्षों का अर्थ श्री प्रभार से है किने (१) दृग अथवा शील के कारण उन्मत्त अथवा पुन की लया का शक्ति करन के लिये 'मदन' अर्थात् मोह का प्रयोग । अथवा (२) उन्मत्त 'मदुर्भादय' अर्थात् अ न उनक मुन में ही रहता है हृदय में नहीं ।

रणा होती है (विरोध यह कि परभूता अर्थात् ओम्बिला स्वरूप हानी है फिर उनके नेत्र का राग हृषिकेस होना है ! कोयल की अग्नि स्वामाभिक लान होती है । परिहार यह कि बरसाए परभूता अर्थात् दूसरा क निमित्त जीवन वाली और मंत्र में पनायटी प्रेम धारण करन वाली हानी है) समस्त अङ्ग अस्ति करने में चतुर और हृदय को न समर्पित करन वाली हानी है (विरोध यह कि जब सभी अंग समर्पित कर दती है तब हृदय भी कैसे नहीं समर्पित करती ! परिहार यह कि सभी अङ्ग समर्पित करके भी दिल नहीं देती अनामक रहती है) ॥११२॥

न कुलसमुत्पन्ना अपि भुजंगदशनकृत्सवेदनाभिज्ञा ।

कंदपदीपिका अपि रहिता सहेप्रसङ्गेन ॥३१३॥

नकुलो में समुत्पन्न होकर भी भुजंगों के दाँतों की पीड़ा से प्रतिबिम्बित हानी है (विरोध यह है कि नकुलो अर्थात् नेपलो के बंध में उत्पन्न होकर भी भुजंगों अर्थात् सर्पों के दाँतों के अपातों की पीड़ा से अप्रतिबिम्बित कैस हो तबका है ! नेपले और साँप सड़ते समय एक-दूसरे पर दन्तापात करते हैं, परिहार यह कि बरसाए कुलो में उत्पन्न नहीं होनी टनकी ज्वान हीन हानी है और भुजंगों अर्थात् बिरो के दाँतों के द्वारा छूत हीन पर टनकी वेदना से प्रतिबिम्बित होती है), कामदेव की दीपिका और स्नेह के सम्बन्ध से रहित होती है (जब कि दीपिका है तो स्नेह अर्थात् सेल के सम्बन्ध से रहित कैस हानी है ! परिहार यह कि कामदेव को उदीकित करन वाली और स्नेह अर्थात् अनुराग से रहित होनी है) ॥११३॥

उज्जिभक्तवृषयोगा अपि रतिसमये नरविशेषनिरपेक्षा ।

कृष्णौकामिरता अपि हिरण्यकशिपुप्रिया सततम् ॥३१४॥

वृष-योग को छोड़ बैठी है और पुरुष-विशेष को उन्हे अपेक्षा नहीं होने (विरोध यह कि जब कामराज्योक्त वृष-संयुक्त युक्त पुरुष की त्याग होती है फिर विशय पुरुष की अपेक्षा से रहित कैसे होती है ! परिहार यह कि वृष अर्थात् परम के योग से रहित हानी है और उन्हें इस बात की अपेक्षा नहीं होनी कि पुरुष किसी विशेष प्रकार का ही बल्कि सब प्रकार के पुरुषों के साथ लगन करती है), कृष्ण में पञ्चत अमुरका और निरन्तर हिरण्यकशिपुप्रिया होती है (विरोध यह कि जो कृष्ण में अनुराग करती है उन्हें कृष्ण का शत्रु दिग्गज कशिपु कैसे भिन्न हो सकता है ! परिहार यह कि कृष्ण अर्थात् कामिमा रूप

पाप में एकमात्र अनुरक्त रहती है और क्षिरपय अर्थात् सुमन्य और क्षयिण्य अर्थात् अन्न-वस्त्र इनके प्रिय पदार्थ हैं ॥३१४॥

मेरुमहीधरभुव इव किंपुस्त्यसहस्रसेवितनितम्बा ।

नोतय इव भूमिभृता सुपरिहृतानयसंयोगा ॥३१५॥

मेरुपर्वत के नितम्ब के समान उनके नितम्ब द्वारा किम्बुका (एक प्रकार की देवद्वीप, पर्वत में कुम्भित पुरपा) द्वारा सेवित है राजनीति में वित्त प्रकार अनर्थ का संयोग (अर्थात् नाश अथवा भवोत्पत्ति की उत्पत्ति) का परिहार होता है ठीकी प्रकार बेजबर्दगी में अनय संयोग (अर्थात् अथवा धन के संयोग से रहित (= धनहीन) का परिहार कर देती है ॥३१५॥

बहुमिप्रकरजदारणालम्बाम्युदया सरोरहिण्य इव ।

डाकिन्य इव च रस्तव्याकर्यणकाशसोपेता ॥३१६॥

कामक्षिनियों के समान व बहुमिप्र कर द्वारा विदारण से अम्युदय लाभ करती है (कामक्षिनियाँ मित्र अर्थात् स्वयं के यज्ञ से करो, किरणों द्वारा विदारण अर्थात् एतन्म अनित अम्युदय लाभ करती है, विकसित होती है और बर्षार्थ बहुव से मित्र बने लोगों के करो, हाथों द्वारा विदारण से अम्युदय अर्थात् धन-सम्पत्ति लाभ करती है। डाकिनियों के समान रत्न (रत्न पर्व में अनुरक्त जने) को लीन लेने का बीजक उन्हें मालूम होता है ॥३१६॥

प्रतिपुस्त्यं संनिहिता कृत्यपरा विविधविकरणोपेता ।

बहुलार्थप्राहिण्य प्रकृतय इव सुप्रहा गणिका ॥३१७॥

गणिकार्थ प्रत्येक पुरुष का लम्बिधान प्राप्त करके कृत्यपरा विविध विकारपुष्पा और बहुल अर्थमाहिणी हाथ परति के समान सुप्रहा होती है १ ॥३१७॥

१—इस श्लोक में पुरुष कृत्य विकरण अथ प्रकृति और प्रकृत इतन शब्द प्रायः चार अर्थ रखते हैं कलत्र मूल में वह अर्थात् अर्थबहुपदपदा जनी करी गई है। बहुते प्रत्येक के चार चार अर्थों को समझ लेना आवश्यक है—

पुरुष—(१) व्याकरण का प्रथम अर्थ उक्तम पुरुष; (२) इस शरीर में रहने वाला अर्थात् आत्मा; (३) जीवात्मा; (४) प्रजा में रहने वाला पुरुष।

कृत्य—(१) लक्ष्यार्थ प्रत्यय; (२) मूल कर्मोद्देश्यक महत्कारि अर्थ; (३) विज्ञ-विज्ञ करणीय कार्य; (४) मूल राज्यांगी का कलत्र।

सादरमाकृष्य चिरं कुसुमस्तवकं च नरविशेषं च ।

रिक्तीननु निपुणा सुद्रा सुद्राश्च चुम्बन्ति ॥३१॥

सुद्राय (श्रयात् मधुमक्षिण्या) त्रिभ प्रकार मूल के गुप्ते वा देर तक मधु पान करत हुए उठी म छटी (चुम्बनासक्त) रहती है, उठी प्रकार सुद्राय

विस्मरण वा विकार—(१) शयन स्थान के भाग में जा बुद्धे आद्व विकार होते हैं; (२) सांख्य दशभोग सोलह प्रकार के विकार; (३) शोष शोभादि; (४) विविध उपकरण ।

अप—(१) शयन का वाक्य; (२) दरवाज और परिणामित्व विनिष्ट पर्याय; (३) धन पदिक मीमांस्य; (४) अपन राज्य का रक्षा और परराज्य की दोह आदि राजनीति अपरा राजकर ।

प्रकृत—(१) व्याकरण की प्रकृति शब्द और धातु (२) सत्य रक्त सम इन तीन गुणों की साम्यावस्था जगत् का मूल कारण (३) श्रीरामा का स्वभाव; (४) स्वामी मन्त्री सहाय धन देरा युग और मन्थ प सात प्रकार के राज्यांग ।

बुद्ध—(१) 'ब' इय उपसर्ग का जा प्रहय करता है; (२) शास्त्राभ्यास के द्वारा जो कष्ट से मायूम किया जाता है; (३) कष्ट से जो निषमित किया जाय (४) अपराजय ।

इय प्रकार समग्र श्लोक के चार गुहाय निम्नत इ—

(१) व्याकरण की प्रकृतिक प्रथम मध्यम उत्तम पुरुषों के साथ रह रूप आदि प्रत्यय के लगन पर नाका प्रकार के बुद्धि आद्व विकारी से उपचित हो विविध अपों में व्यवहृत है और 'इ' इय उपसर्ग को भी प्रहय करती है ।

(२) त्रिगुणात्मक प्रकृति पद्व अपरा घामा वा मक्षिधान प्राप्त करके मुन्य न मोह रूप मन्थ दे फरकों का विनाश करती हुई विविध विकारों को प्राप्त होती है दरवाज और परिणामित्व-विनिष्ट मधुत से पर्याय प्रहय करती है शासकान के बिना उतरा स्वरूप ज्ञान नहीं हाता ।

(३) प्रकृतिपों अघात शरभार प्रणक पुरुष के अलग-अलग होते हैं सब अपना-अपना करणीय पाय करत ई काम शोष भाव आदि विविध विकार उतमें होत हैं नाका प्रकार के मीमांस्य-ज्ञान की आकांक्षा करत ई उन्हें निरमित करना आवश्यक बटित है ।

(४) राजनीति के स्वामी मन्त्री सहाय प्रकृति प्रकृति प्रजा प्यन्त्रियों (धर्मों) के साथ मक्षिधान प्राप्त कर निज-निज हाय करके विविध प्रकार से बुद्ध प्राप्त हो अपन राज्य की रक्षा आदि रूप अपों मन्थक आपन करके, अपरा बहुत राजकर (दण्य) द्वारा शक्तिशाली हो अपराजय हो जात है ।

(वेरपाएँ) कामुक जनो को आदरपूर्वक अपनी ओर आकर्षित करके, जब तक वह विलकुल रिक्त नहीं हो जाता तब तक चुम्बनादि करती रहती है ॥३१८॥

परमाथकठोरं अपि विपयगतं लोहकं मनुष्यं च ।

चुम्बकपापाणशिला स्यात्कीवाश्रकपन्ति ॥३१९॥

साहसुम्भक परर को शिलाए जिस प्रकार बस्तुतः कठोर होकर भी अपने सामने के लोहे को खींच लेती है उसी प्रकार वल्लभ कठोर स्वभाव वाली रूपाबीपाएँ (रूप का पेशा करने वाली बेरपाएँ) अपने गोचर हुए पुरुष को अपनी आर लीन लिया करती है ॥३१९॥

पुरुषाक्रांता सततं कृत्रिमशृंगाररागरमणीया ।

आहृत्यमानजघना करेणसो धारयोपाश्र ॥३२०॥

जिस प्रकार इषिनिषी पर हमेशा पुरुष आरुढ़ रहते हैं, बनाबनी तिगार परर ओर काठी से वे लुकसूत दिखाई देती हैं और उनके अपन वेश पर महाक्त महार करछा है उसी प्रकार वेरपाएँ भी हमेशा पुरुषों से आकृष्ट रहती हैं, निरन्तर बनाबनी तिगार-बटार और प्रम के काव्य रमणोप प्रतीत होती हैं तथा सदा उनके कपल पर (कामुक जन) महार करत रहते हैं ॥३२०॥

उचितगुणोत्तिष्ठा अपि पुरतोऽपि निवेशिते सुवर्णलबे ।

भ्रगिति पतति मुखेन प्रकटप्रमदा यथा च सुला ॥३२१॥

जिस प्रकार मुक्ताएँ (तरावू) बनी हुए गुण (गुण) के जरिये उठारई जान पर भी रखी मर लोना आग बाल देन पर मर स आगे की ओर गिर जाती हैं—मर जाती हैं उसी प्रकार प्रकट प्रमदाएँ (विषय ओरते अर्थात् वेरपाएँ) पाम्य गुणों के द्वारा प्रकट काम होकर भी थोड़ा सीना उनके आग राग टम पर मर मुँद की आर स मर जाती हैं ॥३२१॥

सहित्यपादितयोमा अन्तस्तुच्छ्या स्यमावत कठिना ।

वेरया समुद्गिवा ह्य कणन्ति यत्रप्रयोगेण ॥३२२॥

जिस प्रकार गिभीम बाहर स रघु-बिरघ्न के मिश्रित हात हैं और भीमर स गोगले होते हैं तथा स्वभाषन कठोर होते हैं और जब बर पेंटन है तब बजन लागत है उसी प्रकार वेरपाएँ पारपी गदक-भदक लगते हैं भीतर उनफ कुछ मरी रहता, स्वभावक कड़ा विजात्र रहती हैं और लोरी स व्यवहार करने पर अनुकूल बाजने लगती हैं ॥३२२॥

वन्न ति येज्जुरागं देवहृतात्मासु वारवनितासु ।

ते निस्वरति नियतं पाणिद्वयमग्रतः कृत्वा ॥३२३॥

जो अमाग ठन यात्राक झोरतो में प्रेम रचात है व निश्चय ही दानों हाथ आगे की ओर प्यारे (अर्थात् मित्रमते वन कर) निकलते हैं ॥३२३॥

इदमुपदिशति वयस्ये सुन्दरसेने च ममयव्ययिते ।

प्रस्तावादुपयातं गीतिप्रयमम्यचापि केनापि ॥३२४॥

इस प्रकार मित्र गुणगलित मुन्दरसेन क काम पीन्ति हान की दास्यत में जब दर्श दे रहा था तभी किसी न प्रसंग म तीन गीति नामक छन्दों का गान किया ॥३२४॥

तरुणो रमणीयाकृतिमुपनीतां स्मतिभुवा वशीकृत्य ।

पच्छरति यो जठारमा प्रथमोज्जी नालिको विना भ्रातिम् ॥३२५॥

'कामदेव द्वारा अर्पित करके जाई हुई, रमणीय आकृति वाली मुपनीता का जो जो आरमी छा- देता है वह बिना अन्देह पहला अमाग है ॥३२५॥

इदमेव हि जमकर्म जीवितकर्ममेतदेव यत्पु साम् ।

सदहनितम्बवतीजनसम्भोगमुखेन याति तारुष्यम् ॥३२६॥

यनी तो जन्म लेन का फल है और यही तो जीवित कर्म का लाभ है जो पुरुषों का जीवन सुन्दर मिलभिनियों के साथ सम्भोग क आनन्द में व्यतीत होता है ॥३२६॥

सुमनोमागणहृन्ज्वासावनिदह्यमानसर्वीम्य ।

प्रबसप्रेमप्रवणा प्रमदा स्पृहयन्ति नात्पपुष्येम्य ॥३२७॥

कामाग्नि की बहाला म जिनका अंग-अंग जल रहा है देखो प्रेमापेग से मरी हुई नखलियां जिनका पुरुष पाग हाता है उन्हें नहीं पचलो १ ॥३२७॥

१—'पुरुष-वरीणा' का अर्थ श्लोक प्रामाणिक है—

सीदर्यबन्तानि विलासविज्ञा तास्यपसम्पन्नमनोहरणीः ।

सभागतये विजनेऽमितापादुपक्षते केन विषयरोन ॥३३६॥

एवमुपधृत्य वचं समुवाच पुरंदरारामञ्जं सुहृत्म् ।

मम हृदमादिब कृष्ट्वा गीतमिदं साधुनाजेन ॥३२८॥

यह मुनदर मुन्दरमन मित्र से बोला—‘गरे दिख स निष्ठाक कर ही इय मके मानुम ने यह गीत गाया हे ॥३२८॥

तदतनुसायकविकला हारलता हरिणशावसरलाक्षीम् ।

भारवासयितु यामो गुणपालित किं विकल्पितैर्वहृभि ३२९॥

तो गुणशालिन काम स पीडित, मृगशिशु की भाँति तज्ज छाँतो वाली हारलता को निष्ठावा देने के किय हय चले इन बहुत प्रकार के उहासीरो से क्या काम ? ॥३२९॥

अथ तत्र कापि गणिका गणयंती परिचितं हृतद्रविणम् ।

प्रविशन्तमेव मन्दिरमीर्ष्याव्याजेन निरुरोध ॥३३०॥

तत्प्रचात् वहाँ (बाहर दता कि) किसी बेरमा न किसी छुदे धन वाक परिचित पुरुष का अथ कि यह घर में प्रवेश कर ही रहा था, ईप्सा का पदाना करके (कि तुमस पहले थाया हुआ आरमी तुम्ह दग्गदर बाद बरेगा) गोक लिया ॥३३०॥

काषिद्रुंधकन्दत पुञ्जीकृतजीर्णवसनमवलोकय ।

वेरया विपीदति स्म दापाक्षये वृत्तवर्तव्या ॥३३१॥

काई परया किसी दग के हाग (गाम्नी जेम) लपेट कर लिए हुए बड़े पुराल करड का दर कर गुल वलि काल पर धरना लता क्रिया-बगमा अपम जान विगत करने लगी ॥३३१॥

दैवस्मत्या पतितं दृष्टिपये भग्नमून्यविटमेका ।

ष्वलिता रया भुञ्जिष्या जग्राह जवेन धामित्वा ॥३३२॥

गुरा-रज्जुमी स कामाई का पीना उड़ा कर भागा हुआ विट रनी ही दिखार पदा भाष म तमतमार्द परया न बग स दान कर उम परदु लित्या ॥३३२॥

१—‘सुहृत्प्रदानम्’ का अर्थ अन्धकार का हानि है—

परिरम्भमलिपरिहासभाषणम् शयारतोऽपि न परं समति यः ।

एवमपुत्रनाजि वनते यदि स्वयंमहाराय तत्तुरुपुण्यगारमम् ॥३३३॥

अन्तःस्थितकामिगृहद्वारगतं सुप्तवित्तनरमन्या ।

समुवाच कुट्टनी व्रज कक्षीलाकल्पेहेति ॥३३३॥

दूसरी कोई कुट्टनी समाप्त बन बाले पुनर काइ न पर पन्चा देल कर सब कि उसके पर में काइ कामुक पहले से आ ठगरा या कह रही थी— तिर शरीर पर सिफ सहस्रिबादार मफ्त करवा' मर हे बलता बन । ॥३३३॥

प्रकटितदशननक्षत्रतिरभिदधती राजपुत्ररतिमुद्रम् ।

अपरा पुर सखीना वारवधूराससान सौभाग्यम् ॥३३४॥

दूसरी कोइ बेरया अपने शरीर के दन्तधनो और नलधनो को दिखान-दिखा कर अपने साथ हुए राजपुत्र के रतिमुद्र को बहती हुई साथ बालियों के सामने अपना सौभाग्य प्रकट कर रही थी ॥३३४॥

अन्या कामिस्पघर्ताविधितभाटी समत्सुका क्षण्ठी ।

सौभाग्यगर्वदपं समुवाह विलासिनीमध्ये ॥३३५॥

दूसरी कारना बेरया, सब कामुकों की परस्पर शर्षा कर पड़ने से उसकी कीमत' बढ़ गई तब औरों के सामने सौभाग्य की छँकड़ अतामे लगी ॥३३५॥

एकजणिकानुबन्धे क्रोधोद्यतशस्त्रकामिनो' कापि ।

सम्भ्रमतो घावित्वा निवारयामास कुट्टनी कलहम् ॥३३६॥

एक ही गश्मिना के लाम क लिए श्प स शम्भ उठा कर प्रहार करने के लिए तैयार हो कामुकों के कलह को कुट्टनी ने बग न दौड़ कर रोका ॥३३६॥

घनमाहृत्य बहुभ्यो भुज्यत एकेन केनचित्साधम ।

इति घनवन्तं कामिनमावर्जयति स्म वारवधू ॥३३७॥

पदुनो से घन हरना करके किसी एक नागरिक क साथ उसका माग किया जाता है यद कह कर किसी बेरया ने घनवान् कामुक को बर्तीभूत किया ॥३३७॥

१—कक्षीलाकल्प—अर्थात् तर शरीर पर कुछ भी बर भूया है नहीं मिर्क एक सदैव करवा मात्र है जमी म्बिवात में बरया के घर बका बरेगा ? यदि 'अस्मान्' और 'अस्तरन्द' को उपयोग मानत है तब 'कक्षीला' का अर्थ होगा शम्भू और 'अस्तरन्द' का अर्थ होगा अममय शरीर वाला अर्थात् तब मर ।

२—मती अर्थात् कीमत मुख्य पत्त । इमी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग क मन्त्र अर्थात् के वैदिक कालों में भी प्रचलित है ।

गायन् गायामात्र द्विपक्षकमथ सीष्ठवेन विट एक ।

वभ्राम पुरो दास्या विदधद्विष्टसीरनेकविधा ॥३३८॥

एक विट द्विपक्षिका^१ क क्षय में मात्रिक गाथा को सुन्दर ढंग से गाठा और विविध प्रकार की वेष्टाएँ करता हुआ वेरया के सामने बतराने लगा^२, ॥३३८॥

कश्चित्पप्यस्त्रीणां विभवोपचितान्यपुरुषयोजनमा ।

विदधाति स्माराघनमघनत्वमुपागतं कामी ॥३३९॥

द्विद्विता को प्राप्त कोई कामी विभव वाली किसी दूसरे पुरुष को बाजारू औरतों के घर में टास कर मझा मारन लगा ॥३३९॥

त्वयि सक्तेने मया गृहमुज्जिष्ठमधुना परेव जातासि ।

इति ठीकमलममानं कश्चिद्गणिकामुपासेमे ॥३४०॥

'तेर प्रेम में पड़ कर मैंन घर छोड़ा और तू भ्राम दुखी-खो हो गई है' इस प्रकार किसी ने गणिका से कुछ न पाते हुए उसे उलटना दिया ॥३४०॥

उपितामापरेण समं धृद्विदानां पुरं पराजित्य ।

पूजयति स्म भुजंगं कश्चिद्गणिकां द्विगुणमाद्या ॥३४१॥

किसी कामी ने पिता लहर दूसरे के साथ साईं हुई किसी गणिका का कुछ बिटों के सामने पराजित करके उक्त दुगुना पिता बख्त किया^३ ॥३४१॥

१—द्विपक्षिका—

'शुद्धा राएडा च मात्रा च सम्पूर्णेति चतुर्विधा ।

द्विपदीकरणारम्भन तासन परिगीयते ॥'

२—सुदे घन वाले विट जन गणिका को घातक करन के लिए घन ही प्रपन्न करते हैं । वेसा कि आचार्य जेमेन् लिखते हैं—

मक्षितनिजबहुविभवाः परविभवसपणुदीहिताः परषात् ।

अनिरां परयावेशस्तुतिमुत्तरमुत्ता विटारिक्त्स्याः ॥

३—वहाँ प्राचीन बंध जीवन की एक पाम पद्धति की और संकेत है । अपने प्रति चम्पाव देणकर साईं भी बिटमरुप में पहुँच कर 'बिटमरुप' (बुट बिटी) की बदेर करता था और उन्की सभा में अपने प्रांग हुए चम्पाव का धरना कर जाता था । 'पारुतर्पदक' में उम बहर' का 'उत्तरमात्तरम कम करता है । वहाँ भी एक देगी ही धरना का उक्तेन है ।

इष्टा स्वया विशेषक बलयकलापो शशिप्रभामुजयो ।

वाढं मण मण कीदृक् चास्तरा सा मया दत्ता ॥३४२॥

[उन्होंने इस प्रकार बिटन्नो की बातें सुनी]

विशपक, तुने शशिप्रभा के हाथों में बलयकलापी^१ देखो, यथा यथा कैसी है ! उसे मैंने दिया है ॥३४२॥

अथ चतुर्थो दिवसश्रीनाम्बरयुगलकस्य दत्तस्य ।

सदपि पश्या विलासा घद मदनक किं करोम्यत्र ॥३४३॥

मदनक, आज चार दिन हुए कि मैंने (उसे) दो चीन के रेशमी कपड़े दिए थे, फिर भी यह कड़ी बातें किए जा रही हैं, तु ही बता अब मैं क्या करूँ ? ॥३४३॥

लोहपरा मयि केली कलहंसक किंतु राक्षसी तस्या ।

माता नारमोक्तुं वर्षेष्टेनापि शक्यते पापा ॥३४४॥

कलहंसक फेंसी मुझे प्यार करती है, किन्तु राक्षसी पापिन उसरी माँ से वर्षों तक प्रयत्न करने पर भी अनुकूल नहीं करी या सखी^२ ॥३४४॥

सुमन कुंकुमवास सज्जीकुरु किमिति तिष्ठसि विचिंत ।

अथ तव दयितिकाया किञ्जल्कक नर्तनावसर ॥३४५॥

किञ्जल्कक, आज सेरी चन्थी (दयितिका) क नाचन का दिन है, पूछ और कृतुम स कपड़े को सजा, क्यों लापरवाह बैठा है ! ॥३४५॥

१—एक प्रकार का बाहुबन्धु जार्लोव अलंकार । मयूराकर भूपण (त्रियका) मुण मयूर का बना हुआ और शेषभाग अत्रफोकिठ पुष्प का चित्रकारी स पुष्प) । इस प्रकार के बाहुभूय के सम्बन्ध में भरत न नाट्यशास्त्र में लिखा है—

शङ्कलापी कर्कं तथा स्यात् पद्मनूकम् ।

रत्नूरसोपितिकं बाहुनानाविभूषणम् ॥

तन्मुन्नराम का कहना है कि निरुचय ही बलयकलापी 'शङ्कलापी' है क्योंकि 'बलय' शब्द से बनाया जाते थे ।

२—यहाँ बिट दमरा घने का नगारा करन वाली शक्ति की माला पर बहुत दुर्घट है जो प्याजीवन के लिए अत्यन्त खामोशिक है । अगर शक्तिशाली की माँ न हो तो वे बिट उन्हें बौरात कर दालें । अमर का कहना है कि बरपा के माण हीन गृह में ब कि बुधकर उम प्रकार बाहर बरी निरुचय त्रिय प्रकार जाते के दिनों में पृथे में सापा पिनार अर्द्ध बाहर बरी निरुचयता ।

यदि नाम पंच दिवसांस्त्वयि कुस्ते प्रेम घनसर्वं वृष्ट्वा ।

सदपि न रागवती सा कन्वपंक किं वृषा गर्वं ॥३४६॥

कन्वपंक: यदि किसी तरह सोझा ना पन देव कर वह पांच दिनों तक तुम्हें प्यार करे तो तब भी वह तुम्हें प्यार नहीं करती, क्या क्या गव कर रहा है? ॥३४६॥

जीवश्लेष विलासक परिहर दूरेण मूढ हरिसेनाम् ।

वदावेगस्तस्यां ध्यापुतपुत्रो महाविषम ॥३४७॥

अरे विलासक, मूढ़ कही जा ' जीत जी दूर ही से हरिसेना को छोड़, क्योंकि ध्यापुत का लड़का उसमें पैदा गया है जिसे न किसी प्रकार मात नहीं दे सकत ॥३४७॥

केसरया क्षणदत्त कृत्वांशुकमुपरि कामिजालस्य ।

स्तब्धप्रीवं भ्रमत्तश्चन्द्रोदय परम माहात्म्यम् ॥३४८॥

अन्नाय फलप म उलय के अक्षर पर उपहार में भी अक्षर दिया या उस कन्धे पर गगन कर गदन उठा कर धूमत हुए कामिजाल का माहात्म्य देय ॥३४८॥ ।

कौमारकं विहन्तु रतिसमये मदनसनाया ।

इच्छामि किंतु तस्या मात्रातीव प्रसारितं वदनम् ॥३४९॥

मैं चाहता हूँ कि रतिसमागम के अक्षर पर मदनसनाया का कौमारक हरण करें, किन्तु उसकी याँ न ही गयादा मुँह फला रहा है? ॥३४९॥ ।

१—अ मन्त्र का वह पद्य उद्धरणीय है—

पैश्यालता सरागं पूज तदनु प्रवर्तितनुरागम् ।

पश्चादपगतारां पल्लवमिव दर्शयामि निजचरितम् ॥

२—यहाँ बेरपा अंगुलि में माँची काज म चमका रहा एक काम, रस की चीर मकेत है। रतिसमागम के अक्षर पर मदन सनाया के कौमारक अर्थात् कौमारक का हरण करना (उग लुनी करना) चीर उमड़ी माँ का मुँह फलाना (अर्थात् पैसा आना मानना) दोनों विधानों बहुत पहले थी थीं। उम नाम रस की उम दिनों 'वीरनाम्न' बहुत थे। मात्र के अक्षरकी बेरपा अंगुलि में 'मिष्ठी या कम उमारम की रस करते हैं। बेरपा का रीतगार आरम्भ होने के पूर्व की अक्षरपा

विभ्रम कियतस्तपसः फलमेतद्यदुपभुज्यते मद्रिरा ।
स्वकरेण पीतशेषा मदधूर्णितमदनसेनया दत्ता ॥३५०॥

विभ्रम तून् नितना तर क्रिया है जो यह कुछ मीग रहा है कि पीकर
मत्त मदनमना न पीन म बर्षी मद्रिरा को अयम हाथ म मुक्त अयिन
क्रिया ॥३५०॥ ।

कुञ्जलयमालानिलयो लीलोदय किमिति सम्प्रति त्यक्त ।
विं विदधामस्तस्मिन् भ्रातर्दास्या विना मूल्यम् ॥३५१॥

लीलोदय अथ तूने कुञ्जलयमाता का घर क्यो छोड़ दिया ?—'क्या
हैं माद । पैस क बिना दामी रर क क्या होगा ? ॥३५१॥

मुपिताशेषविभूठरिन्दीशरकस्य यामिनो याति ।
संवाहयत सम्प्रति मञ्जारक तिलकमञ्जरीशरणौ ॥३५२॥

मञ्जरीक न्दीशरक का घर पर्यर्ष्य दिन गया उन्की गठ इन दिने
तिलक मञ्जरी क अरण्य दावठ गुजरती है ॥३५२॥

'शरिका' वा 'शरिका शरिका' की हानी है । इस अरुस्था में इनमें कोई हँसी
मजाक नहीं कर सकता था । 'उमराव जात' ने 'शरिका' को लक्ष्मी अथवा में
भीषी कहा है । पीबनोपन वा मिम्दी । उन्की बाहन बाल के द्वारा ही रूप मञ्जरी
हैल पर मञ्जरी की जाना थी । इस प्रकार उन्की अन्कि को कामाय के द्वारा ही मञ्जरी
भीष ही जाना थी । प्रत्युत में जब । बड न मञ्जरीमना क कामाय के द्वारा ही मञ्जरी
मञ्जरी की तब उन्की ही न मञ्जरी कहा दिया अथवा पदुत पिन को म ग की
जिसे बड हैल में काममय ही गया ।

१—दावान बाल में मपीति वा मद्रपाव की प्रथा थी जिसमें मापक कार
मापिका होनी मिलकर मधुपान करत थ । वैशिक जीवन में मधुराव एक अन्कि
प्रसंग था । बेरपा के हाथ में प्रतिशय मधु क पाव की मूकना द्वारा रिण थ उन्की
प्रति उन्कीमनाम अथुराव अन्कि जिया है । कामी वा उन्की मापिकों में मपिनमा
वा मापिकों के हाथों में शरान पीन के लिए प्रसो विरक्त रहता है । शक्ति
कान है—

पिला दे आरुस मापुी वा हमस मपुत है ।
पियाया भर नहीं दता न द नराव तो द ॥

अद्यापि बालमार्षं निखिलं न जहाति बालिका तदपि ।

प्रौढिज्ञा मकरन्दक सकला ललना अघकुच्छे ॥३५३॥

[उन्होंने कुट्टनी, बिट्ट दासी और गणिका प्रभृति की बातें बलते-बलते सुनी]

(किसी बूढ़ी बेश्या ने अपनी लड़की के सम्बन्ध में अमुक से कहा—)
मन्त्रक आज भी बालिका का पूरा रक्षण नहीं गया फिर भी अपनी
बोद्धार्थ से समस्त ललनाओं का नीचे करती है ॥३५३॥

कुच्छे गत्वा वक्ष्यसि तं निवयचित्तनर्तनाचार्यम् ।

हारा सुकुमारस्तनु किमिति श्रममघ कारिता भवता ॥३५४॥

(किसी बेश्यामाता का दासी के प्रति वचन) 'कुच्छे, बाबर निदय उस
बाल्याभाव (रक्ष के उलाह) में कहना कि हारा अमी सुकुमार शरीर है,
आज आपने इतनी महनत क्यों कराई ॥३५४॥

निसारोऽभिनिवेशः शुक्रशावकपाठने सुस्तदेवि ।

तिष्ठति बहिष्कविष्ट प्रतीक्षमाणस्तव प्रेयान् ॥३५५॥

(बेश्या के प्रति माता का वचन) 'सुस्तदेवि, सुगो के बच्चे को पढ़ाने
में यह लगन बकार है, तेरा घरेला बाहर बैठा इन्तज़ार कर रहा
है ॥३५५॥

घोणावादनसिद्धा पतितास्ते वासभवनपर्यं के ।

उत्थापय तां स्वरितं स्मरलीलां मत्त आयात ॥३५६॥

(बेटी के प्रति माता का वचन) 'घोणा यत्रा के वकी स्मरलीला वाक्य-
मन के पत्रंग पर पड़ी है उस शीघ्र उठा मत्त आया है ॥३५६॥

किमिदं यथास्मित्तत्वं तव मापवि यम्मुहुवदन्या म ।

परिपत्ते नामरणं श्रीविप्रहराजसूनुना दत्तम् ॥३५७॥

(बेश्या के प्रति माता का वचन) 'मापवि यह क्या तरा दीयना कि
मैं बार बार परती हूँ और नू विप्रहराज के लड़के का दिया गहना नहीं
पहनती ! ॥३५७॥

ईदृक्शून्यमनस्तस्य किं कुर्मो मातरिन्दुलेखाया ।

पानद्विबासक्तधा पठितापि न चेतिता कनकनाडी ॥३५८॥

(कामुक को सुनाते हुए बेटी का बचन) 'बहमा हम क्या करें ? इन्दुलेखा इतना खर सापरखर हो गई है कि उसने पानरीहा में गिरी धन की सरनी को भी नहीं जाना' ॥३५८॥

नकुस पयो न पायित इति रोपवशादियं हि दुःखोला ।

नाश्नाति कामसेना पुन पुनर्याभ्यमानार्पि ॥३५९॥

(बेश्या माता के प्रति कामुक को सुनाते हुए बेटी का बचन) नफले को दूध नहीं खिलाया, बस इतने से ही बच हो जाने के कारण यह ठीक काम सेना पार-बार मनाशन करने पर भी नहीं खाती' ॥३५९॥

श्रीबलसुतपरिपालित ऊर्गामि किल मया विजेतव्य ।

भुकुला मुक्तसुखस्थितिरहूर्निरी भेषपोपणे सप्ता ॥३६०॥

(कामुक नायक को सुनाते हुए बेश्यामाता की ठिक)

'क्या कहें ! श्रीबल के पुत्र के पास हुए मेरे को पछाड़ने के लिए मुझसे मुग योग परित्याग करके दिनरात मेरे का पैयार करने में लगी रहती है' ॥३६०॥

प्राताभ्रतां समुपगतमृच्छूर्नं च करतलतव लसिते ।

मा पुनरस्तिचिरमेवं प्रविधास्यसि कन्दुकक्रोडाम् ॥३६१॥

(बेश्यामाता की नाकी के प्रति ठिक) 'लसिता, तर हाय लाल हो गया और सूज गया है, तू फिर दर तक इत तरह गँद न रोजना' ॥३६१॥

अमिराम कनकमाटी प्रथममियं गृह्यते समुत्पन्ने ।

अहे तु कुसुमदेव्यास्त्वं प्रभवसि जीवितस्यापि ॥३६२॥

(प्रथमागत कामुक के प्रति बेश्यामाता की ठिक) 'अमिराम, पहले-पहल लोने की मिथी (रस) लिया करते हैं बार में जब कुसुमदेवी का प्यार हो जायगा तब तो उसके जीवन पर भी मुझसे अधिकार होगा' ॥३६२॥

बेश्यामाता बदना करती है कि लज्जल उसकी पत्नी के नाम किसी से सुना-कल का मनप नहीं है। आचार्य चंभेन्द्र के अनुसार यह आशयक है कि बरबा को लज्जल अपनी जगता बन्द कर देनी चाहिए क्योंकि लोग दरबार-मुलम बलु के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं—

'प्रथम प्रायिता पर्या न स्यात्सतीसुनादरेम् ।

पनस्यार्थस्यमाश हि सुलमामयमदत ॥ ममपमापुग ५१६ ।

ग्रहणक्रमंयं तावद्यदि कौतुकमुपरि चन्द्रसेनाया ।

निर्वर्तितकर्तव्यो दास्यसि किञ्चिद्यथामिमत्तम् ॥३६३॥

(बिरया माता की नयागत कामुक क प्रति ठकि) 'यदि तुम्हें चन्द्रसेना के ऊपर कुतूहल है तो बखरीश (महण्ड) निकालो, अब काम ही कामगा तर जो चारे दे देना' ॥३६३॥

न परमदाता मातं सूनुरसौ वासुदेवमदृश्य ।

निलज्जं शठवृत्तिं पुनः पुनर्वार्यमाणोऽपि ॥३६४॥

क्षपयति वसनानि सदा हठेन सकलानि सुरतसेनाया ।

न ददात्येकामूर्णामुग्णं परमसि कर्पासम् ॥३६५॥

(माता के प्रति बेटी द्वारा कामुक की शठता का प्रकाशन) 'माता जी, यह कामुगैव का शठका प्रवाद देने वाला नहीं है और बार-बार मना करने पर भी शठता करके बेहया सुरत-सेना के सारे कपड़ों को हठ-गुबक हनगा हय दता है- मेरा एक तो ऊन का एक भी रत्न नहीं देता दूसरे कपाड के बीच को बचा दाखता है' ॥३६४ ३६५॥

भगिति न मुञ्चति वेरम क्षणमपि भेङ्गपटराजपुत्रोऽप्यौ ।

मग्नान्यसरावसरो नमनेनाधिष्ठितं यथा तीर्थम् ॥३६६॥

(गणिका द्वारा दूसरी स कामुक क शठ्य का निरुप) 'बदिन, यह चत परराज का शठका खर भर भी बर नहीं छोड़ता हमन दूतरी को मोवा नर्न विनता रंग को बेचे तीरथ मिल गया है ॥३६६॥

इत्थं प्राया वाचं श्रुष्वन्विटकुट्टनीसमुदगीर्णा ।

सं वेद्यसंनिवेशं परयन् प्रविवेद्य दारिकावेरम ॥३६७॥

प्राक् इती तद्व निदा और कुट्टनीसो की बातें सुनाता और परपाओ क सुरन्ने की कनाएट दुपता दुआ बर नीनी (दारिकता) क पर से प्रत्य दुपता ॥३६७॥

१—नयनमपि धर्म लीचम्—यह लोभान्ति है । रंग को तीरथ मिल गया है । नयन चर्पांन् रंग रदन बाजं वापु आ तीर्थ के रिकी स्थान पर रिक्त जाने पर चर जान है फिर उम स्थान की नहीं होपने । उनी प्रयाग गद कामुक की वा से बैठा रहता है ।

धाकृष्टमिवोत्कृष्टया स्नपितमिव स्निग्धस्रजुष प्रसरे ।

तमुपागतमम्पर्णं हारलता पूजयामास ॥३६८॥

उक्तयथा न विष त्वे की मति स्नेह-भरे दृष्टिपातो से न्नाये हुए की मति पैसे उक्त सुन्दरमेन का हारलता ने स्तब्ध कर दिया ॥३६८॥

सुविहितसमुचितसंस्थितिरवनतधिरसा प्रणम्य तत्सख्या ।

इदममिदधेऽतिनर्जं सुन्दरसेनं शुभावसरे ॥३३६॥

सुन्दर सेन समुचित आसन पर बैठा, तब हारलता की सरती शुभ अक्षर देग उसे प्रणाम करके विनय पूर्वक उभन बोली ॥३६६॥

प्रियदर्शनं किं बहुमि स्मरपीडितदीनवचनसन्दर्भे ।

इयमास्ते हारलता जीवनभस्यास्त्वदायत्तम् ॥३७०॥

प्रियदर्शन कापीडित (हारलता की) दीनता मरी पणुन पातो से क्या काम ! पर हारलता है और इतना जीवन तुम्हारे अर्पित है ॥३७०॥

निर्यत्रकेलिविशदं सहजमेमानुवधरमणीयम् ।

कार्यान्तरान्तरायैरपरिहृतं यातु यीयन् युवयो ॥३७१॥

तुम दोनों का जीवन प्रसिद्ध-रहित शोभा विरहो द्वारा विशद सहज प्रम के निगूढ रूपन हाय रमणीय और अन्य कार्यों के निन्दों से रहित पीठ ॥३७१॥

निर्वयमविरतवाधं ध्वस्तप्रपमव्यवस्थितावरणम् ।

उपचीयमानरागं सततं भूपाद्भवत्सुरसम् ॥३७२॥

निर्वय मान में (विश्व में मनुष्य न यती आय) इच्छा का विरय न दे लग्ना को दूर कर, आवरण की हय, उत्तरोत्तर बढ़त हुए अनुराग के

१—सहज प्रम अथात् वैमर्गिणी मीति ।

'दम्पसोः सहजा तु या ।

सादा नियतमृता च प्रीतिर्नैतर्गिणी मता'

(अनुराग ५१ ६)

१—अनुराग का विरह-अविदह मानक अथवा में उत्तरोत्तर बढ़ने ररता उमरी प्राप्त विवेकता है। 'रमानुरागमुपास्य' क अनुमाता जब दु ग भी सुख रूप में ही जिय स्वह प्रत्य के कारण अनुभूत होता है तब राग की स्थिति आती है—

महिष्ठ, निरस्तर^१ कृपाराग मुरत होता रहे ॥१७०॥ ।

इति दस्वाधिपमन्तनियति परिजने तदङ्गेषु ।

विलम्बविविस्तरसो यदृषे कुसुमायुष सुतराम् ॥३७३॥

यह शास्त्रीशास्त्र दे, परिजन क भीतर चले काम पर उनके अंग अंग में पश्यत हाग पर्य्युद्ध मदनरक्षायेग यह गया ॥१७१॥ ।

यदमन्दमभयोचितमनुरूपं यन्नयानुरागस्य ।

यद्यौवनाभिरामं यच्च फलं जीवितव्यस्य ॥३७४॥

अविनय एव विभूषणमरसोत्साचरणमेव बद्धमान ।

निर्भयकतैवसौष्ठवमनवस्थितिरेव गौरवाधानम् ॥३७५॥

केसप्रहणमनूप्रहृ उपकारस्ताडनं मुदे दश ।

नखविलिखनमप्युदयो इदं देहनिपीडनं समुत्कर्षं ॥३७६॥

निगरणनोलं धुम्बनमवपवनिष्पेपणस्पृहो मर्द ।

अंतःप्रवेशनेच्छं निर्भरपरिरम्भणं यस्मिन् ॥३७७॥

जो^२ मुरत नवदशक काम के उपबुद्धताय ही अनुराग के अनुस्य जीवन के

‘दुःखमप्यधिकं चित्तं मुतात्सेनेव राग्यत ।

यन स्नेहप्रकर्षेषु स राग इति कथ्यते ॥’

अपेक अवस्था में उपधीबमान होने वाले राग को माहिष्ठ राग कहा है—

‘अचिरेणैव संसर्गश्चिरादपि न नश्यति ।

अतीव शोभते योज्या माहिष्ठी राग उच्यते ॥’

१—मुरत को निरस्तरता—अर्थात् बाह्य भीरु कायभार के धेनु में शिथिल मुरत का हमेशा जारी रहना । बाह्य मुरत के प्रथम भावना आरम्भजन सुम्बन अर्थात् काम के धेनु ई भीरु कायभार मुरत उचालक अर्थात् धेनु में बहिरिध है ।

२—बहो म कवि न ग रक्षा द्वारायता भीरु सुन्दरत्व का मुरत-कमल आरम्भ किया है । ऐसे उग अंत में अस्वाभाविकता का चिह्न नहीं कहा जा सकता कि गणिका होने के कारण सुम्बन हाकर भी दारयता कात्वयत में कामतम्ब के निदर्शनो में पूरा परिचित है। कुट्टी द भीरु सुन्दरत्व भी कामतम्ब में विद्युत है ।

काव्य अमिगम^१ और जीवित रहने का फल है जिसमें अविनय^२ ही विमूढ्य है अरलीक व्यवहार ही गौरव है निर्मीक हो जाना ही भयना है और एक जगह न टिकना (आस्थिर हो जाना) ही गौरव देने वाला है, बाल पकड़ना^३ अनमद है ताड़न^४ उरकार है, बाल न काट लेना प्रणमना क शिष्ट होता है नगो न परीक्षना अम्मुदय है, कम कर शरीर को इयाना सम्पन्न है, और जितमें अति प्रसक्त और सतृप्य सुमन^५ है अहो की कठ कर इवातं हुए निरपक्ष माव स मयस्तना^६ है और अन्त प्रवेश इच्छा न कम कर आतिङ्गन है ॥३७४ ३००॥

१—बह स्थिति उदम बीजक के अरमर के मरैया अनुकूल ही है जैसा कि क्या है—

सान्दर्य प्रीति सम्पात्तिरुपसङ्घेगोऽय मावनम् ।
मकैकमनुरागाय किमु यत्र सतृप्यम् ॥

२—३०१ और ३०० श्लोकों की प्राय बहुत अंश में मद्रूपभूतिन के इस श्लोक में मिल गई है—

मद्दूर मुसद्विनय सन्नुष्ठितभर्त्सं सच्चिन्यं मदममाभि मदस्तलम् ॥
मद्रायपान्दर्यं मदमुकलम् तपद्बभूव सुरतेषु गुणो न दोषः ॥

३—केशमदग—नापिका को हवीमत्त करन के सिद्ध नापक उमके बाहों का पकड़ता है आकषण करता है। 'अपहरण' के अमुमार लक्ष्मीजनों के अशास्त्र कैतों को पुत्रन के अरमर में मन्त्र एवं विधितक पकड़ना कहिये। यदि नापक प्रिय-तमा के बाहों को अपन होने दोहों से पकड़ कर पुत्रन करता है ऐसी स्थिति में बह कष्ट-सदय 'ममदस्तक' कहसाला है। यदि एक ही हाव से पकड़ता है तब 'उदरदक' कहसाला है। जब कामार्थ प्रिय पालों को हाथों में लभेय कर पकड़ता है तब बह 'भुवंगारम्भिक' कहसाला है। बाहों के पल्प वाले बाहों को पकड़ कर जब अरसर पुत्रन हाता है तब बह केशमद 'कामावर्तय' इस नाम से अभिहित होता है।

४—ताडन—करापन हस्त प्रयोग विराय। नापिका को पीठ पर का ताडन 'जुति' मस्तक पर कनाअर हाथ द्वारा ताडन 'प्रम्लक' अथवाअर में अथवा हस्त पर ताडन 'अनदरक' अथपारय का अपन में ताडन 'ममनस' कह सला है।

५—शाहजतोर्धं पुत्रनम् अवात् जिय पुत्रन में जिह्वा अ.पक अर प्रहण करनी है। जिह्वापुत्र नामक पुत्रनपुत्र में अल्लमुत्र पुत्रन हस्तपुत्रन जिह्वापुत्रन और ताडपुत्रन ये चार प्रकार के पुत्रन यहाँ किम् गण।

६—नापिका के उर बाहु कुछ निरग्न परार्ध जिम्पार और अपन प्रसुति को नापक निरग्न भाव से मद्रुन करता है।

७—इस प्रकार का अद्वैतान 'नैरधीरक' कहसाला है। जिसमें शागावलाका

यदनङ्गैरिव विहितं रागैरिव दीप्तिमत्त्वमुपनीतम् ।

प्रेममिरिव निरक्षसितं शृंगारैरिव विकासमानीतम् ॥३७८॥

आ मानो ईई अनङ्गो द्वारा समगणित है अनेक रगो द्वारा उदीपित है, बहुत प्रेमी से निरक्षल बनाया गया है और नाना विभि शृंगारों द्वारा विकसित है^१ ॥३७८॥

अप्रागल्भ्यं व्यसनं धैर्यमकार्यं विवेक उपादात् ।

ह्लेषणमगुणो यस्मिन् तत्सुरतं प्रस्तुतं ताम्याम् ॥३७९॥

विषयों प्रगल्भ न होना नाटक है, धैर्य अकार्य है, विवेक अपोषणा सम्पादक है और लज्जाना अगुण है उस दानोंने चारम्भ किया ॥३७९॥

प्रारंभ एव साव्यप्रज्वलितो घगिति मनसिजो यस्मिन् ।

तस्य विशेषावस्था वक्तुमशक्या प्रवृद्धस्य ॥३८०॥

विषय मूल में प्रारम्भ ही में कामाग्नि बहू बहू करके प्रकलित हो उठ कर उसके बहुत बड़ जाने पर उसकी विषय अवस्था का बयान नहीं किया जा सकता ॥३८०॥

सहज्रसेन जडीकृतमिति यूना कामशास्त्रनिर्णीता ।

नानाकरणश्रामे साहित्यमवाप पाण्डित्यम् ॥३८१॥

रग प्रकार उद्भूत शृंगार रस के द्वारा कुठित कर दिया गया उन उद्भूत उद्भूती का पहलिय कामशास्त्र में पण्डित माना प्रकार के करण-उद्भूत में^२ साहित्य की प्राप्ति हुआ ॥३८१॥ ।

आत्मिका के अन्तर में यह किलबुल मान नहीं होता कि नृमी का धर्म भङ्ग होगा या नहीं बकिह दोनों सम्बन्ध एक नृमी में प्रवेश कर जाना, नृप और पत्नी की मति मिल जाना चाहते हैं ।

१-प्रागल्भ्यं यह कि बड़ अर्थग उद्य प्रकार के सुरत का सम्पादन में सम नहीं हो सकता । इसी प्रकार रग प्र म और शृंगार आदि में बहुवचन-समीग की संगमार्थ समझना चाहिये । उपरुक्त अर्थ से बकि से अर्थग की सुरत का उपायक, रग को वर्णन, प्रेमा की स्वीकृतक एवं शृंगार का सुरत के गुणों का सम्पादन माना है ।

२-नानाकरणश्रामे-अर्थात् बाह्य और आन्तरिक रस । आत्मिका नृपवचन अन्तर्देश, अन्तर्देश संकेतक मीनृत पुष्पादिनि और उदरिष्टक एवं प्रपञ्च में प्राप्त भव्य से रस अर्थ अन्तर्देश के रस भेदों की ओर संकेत है । प्रपञ्चन

अविधेयमनाख्येयं प्रविधयं छादनीयमविपह्णाम् ।

न वभूष तयोस्तस्मिन्नारब्धे सुरतपरिमर्दे ॥३८२॥

जब उन दोनों का यह मुग्ध का सम्बन्ध आरम्भ हुआ कि तत्काल कुछ भी अक्षरहीन, अरुचनीय अविचारशील, गोपनीय और अपह्नीय नहीं रहा ॥३८॥

अम्यस्ता या तन्व्या सुरतविधौ विविधबाहुपरिपाटी ।

तामानूनविशीर्णां शकार सहज स्मरावेग ॥३८३॥

जो पहले नाना प्रकार की चाटूकियों की परम्परा उन्हे सम्पत्त थी उन्हे सुरत के आरम्भमें कामसरस्य ने क्षिप्त-विल कर डाला ॥३८३॥

सद्भावरागदीपितमदनाचार्योपदिष्टचेष्टानाम् ।

क परिगणनं कर्तुं रतिचक्रविष्टरमण्यो यत्त ॥३८४॥

सद्भाव और प्रेम के कारण उशील मदनाचार्य द्वारा उपदिष्ट चेष्टाओं की, कीन है जो रमण और रमणी के रति-चक्र में आदिष्ट हो जाने पर यचना कर सक्ता है ! ॥३८४॥

वाला मुदुगावसता इङ्गपुल्याक्रान्तबिग्रहा न परम् ।

न व्यथिता मुदमाप प्रसवति क्षसु चित्तजमन शक्ति ॥३८५॥

मुदुमार अंग शक्तिका बाधो बाधा इङ्ग पुरुष से आश्रयन्त होमे पर केवल व्यथित ही न हुई अतिशु प्रसन्न भी हुए, यह कामदेव की शक्ति का प्रभाव है ॥३८५॥

कि रमणा रमणाप्रविशदुस्त रमणी रमणमिति न जानीमः ।

स्वावयवावगमस्त्व प्रकाशमगमत्तयोस्तदा निपुणम् ॥३८६॥

क्या रमणी ने रमण में प्रवेश किया या रमण में ठसने, हम नहीं जानते,

रतिचक्र १ भागों में विभक्त है—उत्तम पारक, आविल व्यावत स्थित और बुदयवित । इनमें प्रत्येक के विभाग करके ८४ चक्र कामशास्त्र में प्रसिद्ध हैं ।

१-रतिचक्रविष्ट-रतिचक्र अर्थात् सुरतप्रकल्प उन्में विल पड़े । आस्थापन करते हैं ।

शास्त्राणां विपयस्तावद् बाधम्मन्सा मराः ।

रतिचक्रबुधस्य मास्ति शास्त्रं न च क्वचि ॥

पर उससमय सी बिलकुल उन्हें अपने अंगों का ज्ञान हुआ हो गया ॥३८१॥

तस्या निमीलितदृष्टौ निस्पन्दतनोर्बभूव सुरत्वान्ते ।

लिङ्गमनङ्गच्छाया ओवितसत्तानुमानस्य ॥३८७॥

मुरली के समान होने पर उसकी अलि मुँद गई और शरीर अचल हो गया (पिशाचगा कि यह मर गई, पर) उसके शरीर में एक प्रकार की काम-क्रान्ति व्याप्त थी, जिसके कारण उसके जीवित रहने का अनुमान हुआ ॥३८७॥

श्रमजलविन्दूपचिस्ता वृत्तस्मरणेन ज्ञातवैनदया ।

सा शुशुभे रतिधिरती पर्याकुलकेरामूपणा नितराम् ॥३८८॥

बिचरित रति के परिश्रम के कारण उसके शरीर में पानी के जल की बूँद भर आई, उसके बाल और गहने अलग-थलग हो गए हैं एवं निज काय स्मरण करके नितराम शक्तिवत् वह मुन्दर दिखने लगी ॥३८८॥

निव्याजिपितवपुपोनिवृत्तिमयमेव गणयतोर्विरवम् ।

क्षणक्ष विरराम तपोरक्षीणाकाक्षयोरेवम् ॥३८९॥

निश्चल भाव से परस्पर शरीर समर्पित करने वाले उन दोनों की स्थिति हुआ कि सवार सुखमय ही है, इस प्रकार उनकी आनाइया अगो पूरी ही न हुई कि यह भीत गई ॥३८९॥

मोहनविमर्दक्षिन्ना विबुम्भमाणा स्वलङ्कतिर्मदम् ।

निद्रावपायितादो हारसता वासवेरमनो निरगात् ॥३९०॥

तब मुरली के मदन से गिन नींद (कि अमावस) साल अर्धगो वाली जगदीश ॥ और गगनीन्दुती पीर-पीरे बाल मदन से निकल गई (३९०) ।

"परिचित्तपारर्षगताहं तेन समं पानमोजनं कृत्वा ।

नीता निद्या पत्याभिमेहिनकषय च पत्विचित् ॥३९१॥

[प्रमाण में मुदरमन न बच में पूजन हुए शक्तिगच्छो की फलर इन प्रकार की पाठे मुनी]

(मन्त्रग नागद क क्षय नीचरत में अतमुष्ट गदिका की उति) 'मैं उस वर्गिया के पाठ में, उसके साथ गान-बान करके कहानी-कहानी से यह गुहरी मुरली काय ही नाम माव हुआ ॥३९१॥

अविदग्धः शमकठिनो दुलभयोपिद्युवा जडो विप्रः ।

अपमृत्युख्यक्रान्तः कामिष्याजेन मे रात्रौ ॥३६२॥

(बयलबग और पिरकाल कामुक के कारण उष्य रात में असन्तुष्ट गच्छिका की उक्ति) 'पिलकुल बुद्ध, भम करमं सं कच्छ, जिसे स्त्री दुलभ भी जवान और मूल एक विप्र आज रात कामुक के व्याज से मेरी मृत्यु के रूप में आ पहुँचा ॥३६२॥' ।

नेच्छ्याविरतिं क्षणमपि न च शक्तिर्वस्तुगून्यरसियलैः ।

केवलमसद्यार्हं कदर्यिता वृद्धपुरुषेण ॥३६३॥

(रात शक्ति शून्य वृद्ध पुरुष के समागम से लिल गच्छिका की उक्ति) 'आज मुझे एक बूढ़े ने बिना बलु के रति काषों के कारण केवल बहुत पीणित किया क्योंकि उस मर भी उसकी इच्छा ही कम न होती थी और वह शक्ति सम्पन्न भी न था ॥३६३॥' ।

मद्यवशादमिमोक्तारि मृतकल्पे तल्पमागमनाया ।

अनियेषितनिद्रामा सुखेन मे यामिनी यासा ॥३६४॥

(रतान्त में मद्यगान करके निरंतर हो कामुक क पद जान सं अनावाहित एवं मुग सं सोई गच्छिका की उक्ति) 'मेरी रात रात सं गुजरी, क्योंकि रता मियोग करने वाला वह पीकर मरा केठा हो गया इच्छिए पलंग पर पड़ी मुझे नींद बिना बापा के आई' ॥३६४॥ ।

सुकुमारसम्प्रयोगः पेशसवधनः सवधपरिहासः ।

शकुनवशेन समेतो मम सखि रमणो मनोहराधारः ॥३६५॥

(उत्तम नायक का पाकर हर्षित गच्छिका की उक्ति) 'अगो, मरा रमण सुकुमाटा से काम होता था मधुर पाले करता था हँसी-मजाक भी पच सं करता था साथ ही सम्म और अपने में सुन्दर था, ॥३६५॥' ।

पर्यं कान्तनिशीन परामुखो मुक्तमन्दनिद्रवासः ।

मध्वोदमया नितरां निस्पन्दः स्वेदसलिसससितः ॥३६६॥

(किशो का प्रामीय कामुक क साथ रात वितामं बाली परिदायस्त्री गच्छिका की उक्ति) 'तनि आज एक बिना किसी काम का गंशर आरमी आया, जो मेरे पसंद क बौब पड़ गया मुह पर लिया, पीर-पीरे साथ छोड़न लगा, जब मीने सम्मोग के लिए प्रित किया थी पद निस्पन्द ही था' ॥३६६॥

पर्यस्तमितानंगोऽप्यपगतनिद्रं क्षपाक्षयाकांक्षी ।

यामोपित प्रहोणो निष्प्रतिपत्तिं स्थितोऽद्य सखि मनुज ॥३६७॥

उसका अनाग बिलकुल अस्त मित ही रहा उसे नींद हटम हो गई, किसी तरह बंद रात ग्यम करना चाहता था, मैंने उसे छोड़ दिया ॥३६७॥

शृणु सखि कौतुकमेकं प्रामीणकनामिना यदद्य कृतम् ।

सुरतरसमीलिसाक्षी मृतेति भीतेन मुक्तास्मि ॥३६८॥

(किसी प्रामीण कामुक की मूर्खता से कृतकृत अनुभव करके गच्छिका की उक्ति) 'सखी, एक कौतुक सुन गंवार कामुक ने आज जो किया, मेरी धारित जब सुरत के आनन्द से मुद गए तब उसने समझा कि मर गई और डर के मारे मुझे छोड़ दिया ॥३६८॥

अविदितदेशप्रकृते शठात्मकार्हुं विदग्धतोऽस्माभि ।

अनुभूतो राजसुतादधिभाण्डविदम्बनाक्षेण ॥३६९॥

(पियरगु गच्छिका की उक्ति) 'हमने तो राजा के सड़के से बिये क विरलकार का कष्ट अनुभव किया क्योंकि वह इस देश की बाल बिलकुल नहीं जानता था, भूल एवं गधीला था ॥३६९॥

प्रियसखि लोकसमस्तं नगरप्रभुणा हठेन नीतास्मि ।

एवं वचकदातुद्विगुणार्पप्रार्थनि कुतोऽप्याय ॥४००॥

(लाडानगद से अरमानित गच्छिका की उक्ति) 'प्रिय-सखी नगर-प्रभुग मुझे वच-वचक लामो के लानने ले गया । इन तरह तो कभी गयादा धन के पाने से न्याय नहीं किया जाता ॥४००॥

आनर्पन्ती जघनं ब्रजसि यथा विलिगिता नयैस्तिलरा ।

मन्ये तयोपभुक्ता केरलि कनापि दागिणास्येन ॥४०१॥

'केरली, आ नू खागे आर (कामुक क) मगों की गयेन पाई हुं, अरन जघन का जिन गीचे लिए आ रही है ता मुझ लगता है कि किसी बदिग दय वाली में वत उरनोग रिया है' ॥४०१॥

प्रधरे विन्दु कंठे मणिमाला स्तनयुगे शशास्त्रुतकम् ।
 तव सूषयन्ति केतकि कुसुमायुषशास्त्रुपंडितं रमणम् ॥४०२॥

कंठकी ठरे प्रधर में विन्दु, कण्ठ में मणिमाला, और स्तनो में शशास्त्रु नाम के चतुस्र सूचना करते हैं कि वेरा रमण कामराम का परिचित रहा हागा ॥४०२॥

इति शृष्वन्नुपसि गिरो निवृ सनियामियोगगणिकानाम् ।
 सोऽपि ययाक्रियमाणं प्रविचालु निर्जगाम कर्तव्यम् ॥४०३॥

प्रमात काल में नियामियोग न सुटकार प्राप्त गयिमाओ की बातें सुनगा हुआ व (सुन्दरसेन) मौ प्रात कालीन काम के लिए बाहर निकल गया ॥४०३॥

सुरचितरागोपधितस्वीकृतमनसस्तया समं तस्य ।
 यौवनसुखमनुभवतो जगाम संवत्सरः सार्धं ॥४०४॥

इत प्रकार अनन सुन्दर प्रेम की बुद्धि के कारण तथा उसके (हारलता के) हाथ मन आगे हुए हा प्रात के कारण सुन्दरसेन म यौवन सुख का अनुभव करते हुए बड़े समय व्यतीत किया ॥४०४॥

पित्तम्मकया शृष्वन्विचरन्नुद्यानवेदिकापृष्ठी ।
 सहचरकरसतकर सुन्दरसेन किल कदाचित् ॥४०५॥

कमी जब सुन्दरसेन रहस्य की बात करता सारी (गुणगणित) के हाथ से हाथ मिला कर बैठता, उतनेन की बेदी पर बैठ गया ॥४०५॥

१-विन्दु-प्रधर को पकड़ कर उसके बीच आगले बड़े चार हाथों से लिया गया वह 'विन्दु' कहलाता है ।

२-मणिमाला-कंठ में माला पहनी जाती है अतः वहाँ बहुत से हाथों द्वारा बौवन करने पर एक प्रकार का मालाकार दृश्यकिये उभर जाता है इसी की काम-राश्रीस संज्ञा 'मणिमाला' है ।

३-शशास्त्रु-बाँधों बरों की मणियम के हाथों पर जगद-जगद पड़ी शरीर की संज्ञा ।

४-नियामियोग-बड़े प्राचीन केन्द्र-जीवन का राश्रीमतीस हलपरक का मुद्रा के अर्थ में प्रचलित बरीमणिक दण्ड है ।

स्पृशधनस्तनुसंसतितानितनानाम्बरावरणम् ।

यष्टिभ्रान्तनिर्यन्तदलवृन्तकम्बुपुत्रुम्बिककटिन्त्रम् ॥४०६॥

त्रुटिस्त्रिचरणत्रसंगतसंस्फुटिताभ्यसत्पादमलिनतनुम् ।

रथगिस्तगतिमेखवाहकमारादापान्तमद्राक्षीत् ॥४०७॥

उसी उचन देखा कि शेरबाइच (चिड़ी पहँचाने वाला) शीघ्र गति से बल कर दूर से आ रहा है । उसने मोटे और पने डोरे स हुनी कर दार श्रीकृष्ण श्राव गयी थी उसने साठी के अग्रमाता में ताड़ का पत्रा खेस रानने की कुप्पी, गुम्पी और केग (या पगी) बांध रखा था उसके पीरों में दूटे बूले पड़े हुए प इसलिये डीनर लगन स उसके पीरों पर भूष मर गई थी धार उसका शरीर भी गन्दा हो गया था ॥४ ६ ४ ७॥ ।

प्रत्यासद्वीमूर्त्तं क्रमेण पीरन्दरिः परिज्ञाय ।

साकूतमना ऊचे वयस्य हनुमानयं प्राप्तं ॥४०८॥

जय वह क्रम स नजदीक आ गया तब उसे बहपान कर पुरन्दर के लड़के मुन्दरसेन से उसके आने का अभिप्राय जान लिया और कहा—'मित्र, वह हनुमान आ गया' ॥४ ८॥

अथनिसललीनधिरसा फ्रुतनतिना तेन विनिहितं भूमौ ।

उत्तिष्य भ्रुटिति सेतुं सुन्दरसेनस्तु वाचयामास ॥४०९॥

अधीन पर माया बेटा कर उसने प्रणाम किया धार शेर को रत दिया, तब कह स उठा कर मुन्दरसेन न पड़ा ॥४०९॥

“स्वस्तिश्रीकुसुमपुरात्पुरंदरं सुन्दरं समभिषत्ते ।

अन्तर्जुम्भितशोभन्प्रस्तोत्रं वि स्पष्टवर्णपदम् ॥४१०॥

'शक्ति कुसुमपुर स पुरन्दर (अनन पदे) कुन्दर स भीमर-भीतर बड़ शोक में अन्न और द्रव्य माया स करता है ॥४१०॥

कुसुमपदार्थं न गणितमवधारितमप्रजमनां धरितम् ।

नापेक्षितमवगीतं शब्दसहितवर्मनि स्वया पवता ॥४११॥

शब्दों स मरित माग में गिरते हुए हुम्ने आने बलदू-उदित कुल की परपाद स की, ब्रह्मणों के गरिब को धान्य की और निन्दा कर नहीं देगा ॥४११॥

पथेऽकृटिलगतीनां द्विजिह्वतावोपरहितचरितानाम् ।

अपरविनाशरतानामुत्पन्नं कथमसि मुञ्च ॥४१२॥

सीसी चाम चलन बालो, बुधिया होने (दो मुँह वाली बाल करन) क
रोग से मुक्त परिश बालो और दूसरो का विनाश न करने बालो क बच में न
मुञ्च (लग्नट, पक्ष में लप) कैसे अन्मा ? (क्योंकि लप तो कुटिल बाल चलत
ई, उधकी वा बोमें होती ई और दूसरो क विनाश में लग होत ई) ॥४१२॥

अथ पुरोडाशपवित्रितवेदपदोद्गारगर्भवदनं छे ।

अथ च मदिरासववासिष्ठवारवधूमुखरसास्वाद ॥४१३॥

अहाँ मद्य के अन्न 'पुरोडाश' के मोहन से पवित्र हुआ और पद में मद्यो
क उपचार करने वाला ठरा मुक्त और अहाँ मदिरा-रत कीटमन्थ से मुक्त
बाबाक शरीर के मुक्त का रसास्वाद ॥४१३॥

अथ कुशविपाटनजन्मा सहस्रोदितवदनाचमत्कारः ।

अथ च दासोरत्तसंघरनिर्दयनक्षरक्षति प्रीत्यै ॥४१४॥

अहाँ कुश उपादने से हुए लक्ष्मी वेदना से शीघ्रता और अहाँ बायी
क दाब उदेषुद्ध संघर से नलो की एतोंच के मन्त्रे ॥४१४॥

अथ प्रेतानसधूमक्षोमितनयनान्मुघीतवदनस्त्वम् ।

अथ च गणितानिर्मत्सनद्योकभरायातवाप्पसतिर्सीधः ॥४१५॥

अहाँ तीनो (गार्हपत्य, आरबनीय और दक्षिण) अग्निवा क पुत्र से
गमबलाई अरिस्तो के अर्थात् मुँह का पुत्र माना और अहाँ बरपा की
मुक्तार क शोक से उत्तर अर्थात् ॥४१५॥

अथ वपट्कारध्वानं पट्कर्म्मविभूषणं श्रवणपूरः ।

अथ च साधारणवनितारस्त्रिमणितामप्यनात्सुक्यम् ॥४१६॥

अहाँ मासणो क अर्पयनादि पट्कर्म्मों का भूषण श्रवणपूर (कानों का
आप्यापित करने वाला) वपट्कार का धोर और अहाँ बरपा की शक्ति की
आवाज सुनने की उत्कृष्टता ॥४१६॥

आचार्यप्रसन्नलताताडनसंसोभसम्भवः कथम् ।

अथ कुपितवारलजलनानिष्ठरपादप्रहारविपहित्वम् ॥४१७॥

अहाँ आचार्य हाथ पनकी छरी से पीटने से उत्पन्न अर्थ और अहाँ
निशिपानी बरपा को निद्रर पाद प्रहार का लक्ष्ना ॥४१७॥

क्व हरिणाधर्माविरणं स्मृतिशास्त्रनिवेदितं व्रतं चरत् ।

क्व च पण्यस्त्रीगात्रस्पृष्टाम्बरधारणेषु बहुमान ॥४१८॥

वहाँ स्मृतिशास्त्र के बजाए नियम का आचरण करते हुए मृगधम ओढ़ना और वहाँ गरीब की औरत के अंग के छुए करके पहनने में गौरव ॥४१८॥

समिधामेवग्धेदनमम्यस्तं शैशवात्समारभ्य ।

शठयनिताघरसण्डन उत्पन्नं कौशलं कुतो भवत् ॥४१९॥

तुमने तो बचपन में लेकर समिधाओं के बालन का ग्रन्थास किया था, यह बदनाम औरत पे अघर कारने की कृपा तुम्हें कैसे मालूम हुई । ॥४१९॥

शुभ्रपणमेव गुरोः परिशोलितमघलघेतसा सततम् ।

कृत्स्नमत्तपो भुजिष्याः कर्म त्वपाराधिता निपुणम् ॥४२०॥

तुमने हमेशा शुद्ध कित्त से गुरु की सेवा की, फिर कैसे तुमने देवी बुद्धि वाली दासियों की अधिक आराधना की । ॥४२०॥

भ्राम्नायपाठ एव स्फुटतरपदसौष्ठवं तव स्यात्तम् ।

प्रकुपितधेरयानुनये क्व शिक्षितं वचनचातुर्यम् ॥४२१॥

वेद पाठ में ही तुम्हारे शब्द पद्यन्यारण का सौष्ठव प्रसिद्ध हुआ, फिर शिक्षितानी वेष का मनाबन में तुमने कबत आह्वय नहीं किया ॥४२१॥

अथवा कि क्रियतेऽस्मिन्नवदासकुनेऽपि लब्धजन्मान् ।

सदसंस्तुता भवति प्रागुपचितकर्मदोषेण ॥४२२॥

अथवा करें क्या ! पूरकर्म के बड़े कर्म के दाग से ही इस निमल कुल में जन्मे अच्छे लोगो द्वारा निन्दित हो रहे हैं ॥४२२॥

त्वमि विनिधेरयं कुट्टम्बं परलोकहितार्थेन कविहितारमा ।

स्यास्यामीति समीहितमनुदियसं तद्विसंघदितम् ॥४२३॥

जो कि प्रतिदिन मैं धारा करता था कि तुम पर परिपार की चीज का परलोक के कल्याण का चयन करना बहुत ही उत्कृष्ट हो गया ॥४२३॥

इत्यवगतलेखार्थं सुन्दरसेने विधेयपरिमूढे ।

भार्यामगायदन्यं स्वावसरे मीतिपरिस्त्रिताम् ॥४२४॥

सेन का अध्यापन शुरू कर सुन्दरसेन उस शिक्षणामूढ हो गया तब किसी कुल में मीति धन में अज्ञान प्रकण से आया की गाकर पढ़ा । ॥४२४॥

विषयतिमिरावृताक्ष्यामवटे पततामष्टमार्गिणाम् ।

पुसां गुरुजनवचनद्रव्यानाकांजर्म शरणम् ॥४२५॥

विश्वों के अर्थकार स पिरो अरिओं वाले गद्गु में गिरल और अमाग में पहुँचे लोगों की शरण बहों के बचन की शलाका का अत्रन है ॥४२५॥

उद्वेजयति तदात्वे सुखसर्विसि करोति परिणामे ।

कटुकीपवप्रयोगो गुरुनिगदितकामनिष्ठुरं च यच्च ॥४२६॥

बह की कही हुए निष्ठुर काप की यात ब" कड़वी दवा का प्रयोग है जो आरम्भ में उद्विग्न कर डालता है और परिणाम में सुख पहुँचाता है ॥४२६॥

लब्ध्वा वक्षसोज्वसरं मित्रमवादीत्पुरं वरापत्यम् ।

पुनरपि नहि सिद्ध्यन्ते प्रियजनहितमापणे सन्त ॥४२७॥

बात करने का अक्षर दान कर गायी गुग्गुलिठ मुन्दरमेन में बोला, क्योंकि अष्टे लोग अत्रन पिय जनों के हित की बात बार-बार करने में मो स्नेह का अत्रुमब नपी करत ॥४२७॥

अगणितसहस्रवक्षसो दुर्व्यसनमहाधिभग्नवपुपस्ते ।

मन्युव्यधितस्य पितुर्यदि परमवलम्बनं वचनम् ॥४२८॥

'साथों की बात न मान कर तुम (बेरपातुराग रुद्र) म्यासमुत्र में हूब रहे हो दत्त समय दुन्दारा कार्य अलम्बन है वा ब" है शाक में पीड़ित रिता का उपदेश ॥४२८॥

निजबंधोपमूत कृतचरितालंभ्यो महासत्व ।

मुन्दर सम्प्रति तात स्पृष्टो दुष्पुत्रदोषेण ॥४२९॥

मुन्दर, अत्रन बंध का शीर होकर, समाचरण न अर्जुत और महाप्राप दुन्दारे रिता को इस समय कृष् पुत्र बाधा होने का दार लग गया है ॥४२९॥

पुत्रामाव श्रेयान्दुसुतता पुत्रिण कुक्षीनस्य । ✓

अंतस्तापयति मृशं सच्चरितक्याप्रसंगेषु ॥४३०॥

पुत्र का न दाना अष्टा न कि कुपुत्रबाध होने क्योंकि कुक्षीन पुत्रबन्ध के मन का कुपुत्रता मापुत्रों के चरित्र के अर्थ-असंग में अत्रि सन्धान करती है ॥४३०॥

सांख्यवहारिक एव प्रायो लोके गुणोन्नता नियता ।

येन तु सुतेन जननी घञ्वात्वं रक्षाघते स पापीयान् ॥४३१॥

तुनिया में गुण व्यप्यार से ही माना जाता है । यह आश्चर्य नहीं कि यह (गुण) सुत का भी कारण हो । जिस पुत्र से माता अपने बर्तन करने की प्रयत्न करे वह पुत्र पापी है ॥४३१॥

विफलं शास्त्रज्ञानं गुरुगृहसेवापि नोपकाराय ।

विषयवशीकुन्तमनसो न्याय्यं पन्थानमुत्सृजत ॥४३२॥

जिन्होंने मन को विषयों के अधीन कर दिया और न्याय मार्ग को छोड़ बाधा उत्पन्न शास्त्र ज्ञान विफल है और उसी गुरुसेवा से कोई उपकार नहीं ॥४३२॥

धीवन्नेव मृतोऽपि यस्य जनो वीक्ष्य वदनमन्योन्यम ।

कृतमुखमङ्गो दूरत्करोति निर्देशमगुल्या ॥४३३॥

यह तो जीता हुआ ही मर गया जिसका मुँह दूर कर लोग आपस में यह मटकते दूर ही स उगलती से इशारा करते हैं ॥४३३॥

मोपनिहन्तु विषयां शक्यां सरयं तथापि निपुणधियः ।

अभिधेयतां न गच्छन्त्यपवादविशेषिताभिधानस्य ॥४३४॥

यह ठीक है कि विषयों को समाप्त नहीं किया जा सकता, तथापि कुशल बुद्धि वाले लोग कभी कभी अवयवार्थमभिन अभिधान से अभिहित नहीं होते ॥४३४॥

गुरुपरिचर्यां जाया गुणोन्नता स्निग्धवन्द्युसंपर्कः ।

ग्राह्ये कर्मणि सत्किर्लोकिद्वयसाधनं सृष्टियाम् ॥४३५॥

गुपी पुरुषों के लिए गुरु की सेवा कुलों पत्नी स्नेह करने वाले बन्धु बनने का सम्पन्न, परहान में लगाय इह लोका और परलोक का साधन है ॥४३५॥

सुलभा तस्य विभूतिस्तस्य गुणं यान्ति जगति विस्तारम् ।

बहु मनुते तं सुजनस्तस्यै स्पृहयन्ति यावयां सततम् ॥४३६॥

उन का उदाहरण सुलभा है उनके गुण मगर में फैल जाते हैं अर्थात् लोग उन का उदाहरण करते हैं और हमारा वा-ना बन उन पर है ॥४३६॥

नासादयति स एन सत्सेवितमागत परिस्खलनम् ।

मण्डयति सोऽन्ववार्य स निवास शमणामरोपाणाम् ॥४३७॥

बह सखन-मेवित माग म परिस्खलन प्राप्त नहीं करता, पर वंश को स्थित करता है, बह सरे मुन्नों का निवास है, ॥४३७॥

स भवति विनयाधारो युत्तायुक्ते विवेकिता तस्य ।

वृद्धोपदेशवाच श्रवणोदर तर्पणं सदा यस्य ॥४३८॥

बह विनयी हाता है उसे उच्चि-अनुनिन का विवेक हाता है, विनये जानों में हमेशा वृद्ध बनों के उपदेश की शर्तें भरती रहती है ॥४३८॥

प्राक्तनकम्बविपाक क्षुद्रासु शरीरिणां यदासक्ति ।

आयतनं तु सुखानां संसारमुवा कुलोदगता दारा ॥४३९॥

जो कि नीच स्त्रियां म आनक्ति जाती है बह पहले स्त्रिय कर्मों का विपाक है और ससारी के शिष्य कमीन स्त्रियां तो मुन्नों का आयतन है ॥४३९॥

निर्विणे निर्विणा मुदिते मुदिता समानुलाकुलिते ।

प्रतिविम्बसमा कान्ता संक्रुद्धे केवलं भीता ॥४४०॥

पति के विपन्न हान पर पद भी विपन्न हा जाती है, मुदित हान पर मुदित, आकुल हान पर आकुल हा जाती है केवल मुदित हो जाने पर डर जाती है ॥४४०॥

यावद्वाग्द्वितसुरतभ्यायामसहाप्रविष्टसंपर्वा ।

चिसानुवृत्तिकुशना पुण्यवतामेव जायते जाया ॥४४१॥

इच्छा भर सुरत के भ्यायाम महन करने वाली किसी प्रकार विरोध की बातचीत न करने वाली और पति के चित्त के अनुसरण में कुशल जाया पुत्रदानों को ही मिलती है ॥४४१॥

सदभावप्रेमरसं धनयावलिशन्दशक्ति निमृतम् ।

विदधानाङ्गसमर्पणमु मोसितकुसुमसायकाकृता ॥४४२॥

। बहुरों की संपार से शक्ति हो कुसुम म सदभाव और प्रेम के लोभे और उम्मीलित वापदेव के अभिप्राय रूप शत्रु समपरा करती हुई ॥४४२॥

हा हा किमुद्धतत्वं श्रोष्यति कश्चिद्गतत्रय स्वैरम् ।

निकटे परिवारजनो विस्मृत एव स्मरासुरस्य तव ॥४४३॥

हा हा, यह क्या बरबारी, कीई मुन होगा निलम्ब पीरे पीरे, कामासुर हो तुम भूल गए कि पास ही परिवार के लोग हैं । ॥४४३॥

इति ह्युक्तिसंबलितैरायासनिवेदिताप्यपदयाक्यै ।

द्विगुणीकरोति कुलजा नामककर्माणि मोहनप्रसरे ॥४४४॥

इस प्रकार दुःकारों से भिन्न और आपास क द्वारा निवेदन करने वाले अथ पद और वाक्यों द्वारा कुलजानी नारी सुरतावेग में नाक क कासों को दुगुना कर देती है ॥४४४॥

इत्थमुदीरितवार्षं सुहृदमवोधत्पुरंदरस्य सुत ।

समुपस्थितजीवसमावियोगमयकपितो यधनम् ॥४४५॥

इस प्रकार उठने जब ये बातें कही, तब प्राणधिया के प्रयास विवाह के कारण वास्ता हुआ सुखरसन मित्र से योगा ॥४४५॥

तातादेशेऽर्शये हारसताबिरहपावके तीव्रे ।

विधिवद्यवर्तिनि मरणे नो विद्य कार्यापरिणामम् ॥४४६॥

‘जब कि पिताजी की आज्ञा का उत्सहन नहीं किया जा सकता, हारसता की विद्यामि तीव्र है तथा मर जाना भाग्य के अधीन है एही स्थिति में किए का परिणाम क्या होगा हम नहीं जानते ॥४४६॥

अनपेक्षितघनलामां स्नेहैवनिबद्धमानसां दपिताम् ।

दिवाकृष्टो मुषति घटितो वा सोह्वय्यनणिकामि ॥४४७॥

घनलाम की अनपेक्षा न रखने वाली एक मात्र स्नेह से बंधे मानस वाली प्रिया को आरामी या ती रीप के द्वारा प्ररित हो छोड़ता है या सोहे और हीरे की बनिषों में गढ़ा हुआ होम के कारण छोड़ता है ॥४४७॥

अथ धृत्तगमनविनिश्चितिरभिमतारामां सकार विदितार्थम् ।

सानि समनुवन्नाज प्रस्तुतयात्र शुषानुलिता ॥४४८॥

अनन्तर धृत्तगमन का निश्चय करके उठने निपतमा को एरित कर

दिया । वह भी यात्रा पर जाते करने प्रेमी के रक्षै-वीर्ये शाकाकुल हो चलने लगी ॥४४८॥

प्रासाद्य घटस्य तलं वाप्यपयःकृणाञ्चितालिपकमाग्राम् ।

विमितचरणविहारो हारसतामभिवधाति स्म ॥४४९॥

बराद के पद की छाया में आकर अभ्रुक्षशो न सिद्ध पदमाम वाली हार लता न म्पुलिन रूप न चलता हुआ (मुन्दरमन) बाला ॥४४९॥

प्रा क्षीरवतो वृक्षादा सन्निलाद्वा प्रिये प्रियं यान्तम् ।

प्रनुयायादिति वचनं तेन त्वमितो निवर्तस्व ॥४५०॥

प्रिये क्षीरवान वृक्ष तक अथवा अलायव तक जाते हुए प्रिय का अनुगमन करे, यह शब्द वचन है, अतः यहाँ स न् लौट जा ॥४५०॥

कि कुर्मो वैवहृता प्रभवति यस्मिन्कृशोदरि प्रसमम् ।

प्रेमप्रन्यन्द्येता गुह्यासनसायको निरावरण ॥४५१॥

हे कृशोरि, जहाँ प्रेम की प्रन्य को काट देने बाधा, आवरणरहित गुह्यसन क शासन का पाण यल्लूक प्रवृत्त है वहाँ मम्य क मारे हुए हम क्या करें ॥४५१॥

न द्रविणचयप्राप्तिर्नैकाश्रयपरिचयो न च द्विगुण ।

न स्वामिसमादेशो नाकारविलोभनं न वा ख्याति ॥४५२॥

हमें तरी प्रवृत्ति का कारण न कुछ फल का लाभ है, न एक अथवा दोन का परिचय है न द्विगुण है न माभिक की आशा है न मुल्गता की सम्पन्न है और न कोई प्रतिदि है ॥४५२॥

हेतुस्तव प्रवृत्तेरस्मासु तथापि वैवहृतात् ।

ईदम् कोऽप्यनुबन्धो यस्य विपाकोऽप्रतीकार ॥४५३॥

तथापि यद्यपि वैवहृतात् यह कोई रिश्ते या पढ़ी है जिसके परिणाम का कोई प्रतीकार (चिकित्सा) नहीं ॥४५३॥

पश्यं यदभिहितासि प्रणम्यस्या शक्तिं न नमणि वा ।

सुदति न सत्स्मरणीयं दुर्मायिणकीर्तनोदाते ॥४५४॥

हे मुन्दर दातो बाली प्रणम्यदोर के कारण अथवा शक्ति होकर मैंने ईमी

पत्राक में अथवा जोष मरी बात चीन में कुछ कड़ी बात कह दी हो तो उसे भूल जाना ॥४५४॥

तव हृदये हृदयमिदं विन्यस्तं न्यासपालनं कष्टम् ।

यत्प्राप्तया विधेयं स्थानत्रयो यथा न स्यात् ॥४५५॥

यह मेरा हृदय तेरे हृदय में पड़ा है, न्यास (घाती) की सजा कष्ट से होती है। यत्नपूर्वक सेवा करना बिनासे यह हफ्त से ठपूर (स्थान अष्ट) न हो ॥४५५॥

अथ विरतवचोदयितं वाप्यमराह्लिष्टवर्णपदयोगात् ।

इति कथमपि हारसता संमूर्द्धितवर्णभारतीमूचे ॥४५६॥

अनन्तर प्रिय बचन बोलने वाले अनु गद्गद सुन्दरसेन से हारसता भित्री प्रकार मूर्च्छित आवाज में बोली ॥४५६॥—

अविशुद्धकुलोत्पन्ना देहार्पणजीविका शठाचरणा ।

क्वाहं स्याजीवा नव भवन्त रसावनीयजग्मगुणा ॥४५७॥

'कहाँ आविश कुल में पैदा हुई, शरीर अर्पित करके रोजी कमाने वाली, बगट कारिणी (बिरया) मैं और कहाँ प्रसंगा के योग्य जग्म और गुणों वाले तुम ॥४५७॥

यसु विपयविसोन्नतकृतहृन्माभ्यागतेन विप्रान्तम् ।

इपतो दिवसानस्मिंस्तग्मम परजग्म सुकृतफलम् ॥४५८॥

जो तुम देख 'उन क कुराह न आए और यहाँ इतने दिनों तक रिबाव किया वह मरे पूर जग्म क अथे कर्मों का जग रहा ॥४५८॥

गुप्सेवां मन्थुजनं स्वदशवसतिं यत्प्रमनुसुसम् ।

अनुपङ्गदृष्टिपरिचितं मास्मां प्रविधाय कं परित्यजति ॥४५९॥

है कीन रोगी जो यह-मन्थन दिन आरपी पर फिराव करके तुम जनों की सेवा को, मन्थुजन को और अनुसुस पनी को छोड़ देगा । ॥४५९॥

जीवनवापलमेतद्यन्माहृषि भवति कौतुकं भवताम् ।

यत् सुखमनवगोष्ठं तस्य स्थानं निजा दारा ॥४६०॥

यह ठा बीबन की बरहता है जो मुझ-झैसी में आप लोग रिक्त जाते हैं ।
जो सुख अनिन्दित है उसका स्थान तो अपनी पत्नी होती है ॥४६०॥

ते मधुरा परिहासास्ता वक्रगिरि स वामतासमय ।

नो हृदये कर्तव्यो रहसि क्षेमायिना भवता ॥४६१॥

जदि आप अपना कस्याय चाहें तो उन मजुर हैं-सी-मजानो को, उन कठि
मरी बातों को और उस उलटरी बाल बलने के समय को कभी अकेले में भी
पाद न करेंगे ॥४६१॥

नाभवतो यमनस प्रणयाद्वा यत्तवाचरितम् ।

प्रतिकूलं तत्र मया नायाजलिरेव विरचितो मूर्ध्नि ॥४६२॥

माय अपनी सपुता से अथवा अतिक्रमण के कारण तुम्हारा जो अग्रिय
या प्रतिकूल में कर बैठी हैं उसके लिए शर्म जोड़ती हैं ॥४६२॥

दुःसंचारा मार्गा दूरे वसतिर्विसंयुक्तं हृदयम् ।

गुणसामित्तुष सुहृदा भवितव्यमतोऽप्रमत्तमे ॥४६३॥

गुणसहित, माय बड़े दुःख हैं, पर बहुत दूर है और हृदय अव्यवस्थित
है । अतः तुम्हारे मित्र को सावधान रहना चाहिए ॥४६३॥

हृदयद्वय एनत्वं याते यूनीवियोगजं क्लेशम् ।

अनुभवतोरपरेण प्रसंगतं पद्यते पथ्या ॥४६४॥

जब मुझ और मुवती क हो हृदय एक हो जान है तब अरने विरोग
जनित क्लेश का उन्हें अनुभव होने लगता है एसे प्रसंग में किसी ने एक
पथ्या सुन्द का पाठ किया ॥४६४॥

१—'सुखकटिक' में वाचरित ने भी कहा है—

'गच्छिष्य मम मित्रमिति ।

अथवा जीवनमपराधनि न चारिष्यम् ॥

‘अन्योन्यगूढषोणितसदमाबस्नेहपाशबद्धस्य ।

विच्छेदकरो मृत्युर्घीरणा वा परिच्छेद’ ॥४६५॥

‘परस्पर मुह्य काशों के कारण उद्माव और स्नेह के पन्ध्र में बंध हुए लोगों के लिए मरणा इमया के लिए विच्छेद करने वाला होता है परन्तु धीरे धीरे के लिए नहीं समागम होता है’ ॥४६५॥

अथ चच्छ्रवणानन्तरमास्व सुखं दयित्तिके प्रजामोति ।

अभिघाय याति मन्दं सुन्दरसेने विवर्तितप्रीवम् ॥४६६॥

तब उसे सुन्दर सुन्दरसेने ‘प्रिये, मुझ से खना, मैं जाता हूँ’ यह कर धीरे से गहन मोड़ सिया और चलने लगा ॥४६६॥

वटशाखानम्बिभुजां श्वसितोष्णसमीरशुष्यदधरदलाम् ।

पर्यस्तां विभ्राणां तन्मार्गविलोकनानिमेवदृशम् ॥४६७॥

कि (हारलना) जो परगद की शाखा वामे थी, श्वास की गम दबा से जिसरा अवरमुद एस्ता जा रहा था, जो ठठका माग देरने के निमित्त श्वास धार केनी दृष्टि धारण किए थी ॥४६७॥

दोलायमानवेणो तिर्यग्गतकण्ठभूषणविशेषाम् ।

गसदधुवारिपूर्णा पवितांशुकभागनिचहांगलताम् ॥४६८॥

प्राने चल केराण को और कण्ठ भूषण की जिसन उदा कर दिया, जो मरत श्वां के जब से मरो, दिरी हुई थी, जिसकी चैंगलता खूनी और करना वाक हीन में अतमय हा गई थी ॥४६८॥

ख्यानामिव हृदयं स्फुटदितरपरेण कुक्षपुगाधयिण्य

परिपोषितां विलासैरसृष्टां पीवसोब्यर्त्सव्यै ॥४६९॥

मानों की खना खानों पर टिक हाय न हृदये कुक्ष हृदय की राह रही थी, रिक्तनी में जिस छोड़ डाला था और जो और लोह के बन्धनों उ मुक्त थी ॥४६९॥

अंगीकृतां विपथ्या यशीकृतां ममंपट्टनैविपमे ।

हारसतामपरिस्फुटमंतपरिवृष्यमाणमारया ॥४७०॥

जिन गिरति में अना मिया था रिक्त अन्धकार लक्ष्मी में जिन यथेन

कर लिखा था, जो अल्पष्ट रूप से भीतर से बायीं ओर गीचकर यह कह रही थी ॥४०॥

मा मा तावद्यात् क्षणमेकं यावदेव निष्कण्ठम् ।

वनगुल्मैर्न तिरोहित इत्यभिदधती जङ्घ प्राणा ॥४१॥

‘माया, तब तक एक क्षण के लिए मत जाओ जब तक यह निष्कण्ठ अंगुली के भ्रष्टों में घीमल नहीं हो जाता’ ऐसी स्थिति में माया ने उस हारलता को छोड़ दिया ॥४०॥

अथ पश्चात्समुपेतं पप्रच्छ पुरंदरात्मजं पथिकम् ।

इष्टा शोकव्यथिता विवक्ष्यमाना वराङ्गना भवता ॥४२॥

तब पीछे से आप हुए पथिक से सुन्दरसेन ने पूछा—‘क्या आपने शौच्यी हुई, शोक से व्यथित स्त्री को देखा है’ ? ॥४१॥

स उवाच वटतरोरथ उर्व्यां पतिता विनिश्चलावयवा ।

तिष्ठति धनिता नान्या नयनावसरं गतास्माकम् ॥४३॥

वह बोला ‘वटार के पेड़ के नीचे अश्वीन पर गिरी निरपेक्ष अंगों वाली एक महिला पड़ी है और कोई बूछी को ही हलने नहीं देगा’ ॥४०॥

इति सद्ब्रह्मनारमहतो विह्वलमूर्तिः पपात भूपुत्रे ।

उत्पापितश्च सुहृदा सोऽर्भिवधे तेन शोकविकलेन ॥४४॥

उसकी इस बात के पत्थर स पतलिल हा छटपटात हुए सुन्दरसेन जमीन पर गिर पड़ा, तब मि म उठे उठया, फिर शोक स आकुल यह कहने लग्य ॥४०॥

भवतु कृतार्थस्वात्तस्त्वमपि सुमित्रास्व संप्रति प्रीतः ।

समकालमेव मुक्ता पापेन मयासुमित्रं हारलता ॥४५॥

रिखा की कृतार्थ हो और प्यारे मित्र, तुम भी इस समय प्रसन्न हो हारलता को पानी में और माया ने एक ही समय में छोड़ा है ॥४०॥

हा हा हाव हसोसि ध्वस्ता लीला विमास नि कुल्ये ।

उच्छिन्ना विच्छिन्तिन्न म विन्नम दश दिशो निराधार ॥१७६॥

हाव हाव, हाव, १ तुम ता मारे गए, लीला १ ध्वस्त हा गइ, विमास १ तुम
स्वा करोगे । विच्छिन्ति १ उच्छिन्न गई, विन्नम १ निराधार होकर दश दिशाओं में
मूसा करी ॥१७६॥

१—आत्मव्यतिक्रम आचार्यों न शिष्यों के बीचका सख में उनके बीच का अधिक अर्थात्
सखगुणोद्भूत अलङ्कारी की अर्था की है । पहले उनके तीन वेद किम् है—
शरीरज अक्षयज और इन्द्रज । सख यह गुण है जिसके कारण विन्नम के देव
के उपरिचल रहन पर भी कोई विन्नम नहीं होता अर्थात् विन्नम का पिरोपी सख ।
इस अधिकार रूप सख न कुछ समय परिस्थितियों में अल्प हीन वाले सख
'साधिका' कहलाते हैं । 'अलङ्कार मे अलङ्कार होता है अर्थात् होमा होती है ।
वीरममात्र न ही में कोई वीर्य या होमा नहीं आती अधिक बढ़ भी एक शरीर
का प्रभाव अलङ्कार है और अल्पमात्र भीम साधिका अलङ्कार उसमें और भी
होमा का आचार्य करते हैं । उक्त साधिका शरीरज अलङ्कार तीन हैं—भार धार
और देवा । अल्पमात्र सख हैं—होमा, अर्थात् शिषि मातृमै प्रगल्भता और
और येयें । स्वाभाविक रूप हैं—लीला विमास विच्छिन्ति विन्नम विन्नमिच्छित
योहापित कुट्टमित विन्नम, ललित तथा विन्नम । इय प्रसंग में सुन्दरमेव मे
इन्द्रजता के विभाव में प्रायः साधिका अलङ्कारों को संभावित विभा है । अर्थात् भी
आह ही नियमों में 'निराधार' अल्प अक्षयजता शरीर हाव' कहलाता है ।
है । यह 'भार का तापिक के इन्द्र में उद्भूत सखगोष्ठा का प्रकाशक विन्न
विचार है उसी अर्थात् अक्षयमेव विन्नम का इन्द्र अक्षयज शरीरमेव है ।

२—लीला—अब साधिका शिष्य के समुच्चय न रहने पर लीला के समक प्रिय की
यात्री रूप अर्थात् शरीर-श्रेष्ठियों का समुच्चय करती है तब उसके अनुकरण
को 'लीला' कहते हैं ।

३—विभाव—प्रिय को देवता के अंग पर अब साधिका अल्प अर्थात् विभावों
और अर्थात् में विशेष प्रयत्न का देती है वह सख त विभाव' कहलाती है ।

४—विच्छिन्ति—शरीर भी अक्षयजता अब अक्षयजत कमनीयता हा देती है
तब वह 'विच्छिन्ति' कहलाती है ।

५—विन्नम—प्रिय के आगमनकाल में शीतता के कारण गहनों को गलन
जगद में कहन लेना विन्नम है । प्रिय वेपर को घर में नूर को बाहु में, यात्री
को अंदर में सुपमाताओं को अक्षय में आदि ।

क्लिक्वित्त गच्छ वनं मोट्टायितमशरणत्वमुपयातम् ।

कुट्टमित्त प्रव्रज्यां गृहाण त्रिञ्चोक विद्य भुवो विवरम् ॥४७७॥

क्लिक्वित्त^१, जगल में चल जाती, मोट्टायित^२ गुम्हाण कोर शरण न रह, कुट्टमित्त^३, मन्थास ले लो विञ्चोक^४, परती क विवर में चला जा ॥४७७॥

समित्तमनापीभूतं विहृतस्य गतिन विद्यते क्वापि ।

॥ गणधरविम्बघुसिमुपि यातायामन्तकातिकं सस्याम् ॥४७८॥

ललित^५ अनाप हो गया, विहृत^६ की कही मी गति नही जबकि पर पन्धरविम्ब की कान्ति हरण करने वाली (हारलता) मृत्यु (मम) के समीर चली गई ॥४७८॥

विनिवृत्त्य यामि दाघुं मद्विरहास्यस्यस्लमप्राणाम् ।

भवतु बरानयास्तस्या सप्ताधिर्दानिमात्रमुपकार ॥४७९॥

मेरे विरह में बिसने अपने प्रिय प्राणों को छोड़ दिया है उसे सौट कर दाह करने जाता है, उस बेचारी के अग्निसम्कारप्राप्त हो उरकार हो ॥४७९॥

गत्याप समुद्देशं यस्मिन्सा पंचभावमापन्ना ।

विस्तसाप मुत्तक्कण्ठं विसुञ्जमुवि सहसरेण घृतमूर्ति ॥४८०॥

अनन्तर वहाँ हारलता मरी पड़ी थी, उस म्यान पर आकर मुन्दरसेन जमीन पर लाट-चोट करने लगा साथी ने लम्हाला, छिर बह मुक्त फँट से बिलार करने लगा ॥४८०॥

१-क्लिक्वित्त—यह श्लेष, अर्धु इय मीति आदि का मिश्रित रूप है ।

२-मोट्टायित—विष क विषय में आलोचना के समय लक्ष्मणभाषित नायिका अंगमड के सहित जंभाई और बगुनकूपन आदि करती है इस श्रिया को 'मोट्टायित' कहते हैं ।

३-कुट्टमित्त—नायिका नायक द्वारा केश अक्षर आदि ग्रहण करने पर मन में आनन्दित हो कोप का प्रदर्शन करती है उस स्थिति का 'कुट्टमित्त' कहते हैं ।

४-विञ्चोक—गर्भ और अभिमान के कारण हुए अर्थात् अभिमान बन्धु के प्रति भी अकार का रूप विञ्चोक कहलाता है ।

५-ललित—अर्धु और नेत्र आदि को श्रिया द्वारा सीसुमार्य विधान करके हल बह आदि अंगान्ध्याम को ललित कहते हैं ।

६-विहृत—त्रिये कदम का अक्षर प्राप्त हो उले सज्जा मान अथवा ईर्ष्या के कारण न कहना 'विहृत' है ।

एते वयं निवृत्ता मुञ्च स्व्यं देहि कोपने वाचम् ।

उत्तिष्ठ किमिति तिष्ठसि भूमितसे रेणुस्फुटितशरीरा ॥४८१॥

‘इस सौद छाए, रोए छोड़ दे कोम्पल्ले, बल कर, उठ, क्यों जमीन पर भूत भूतरिख पड़ी है ? ॥४८१॥

विनिमील्य ऋषौ कस्मादप्रतिपत्त्या स्थितासि शुभवदने ।

त्वदवारितगमनविधेरपराधितमा न मेऽस्ति संयोग ॥४८२॥

दे शुभवदने नू र्भाने बर करक किस कारण निरपय भाव से पड़ी है । तेरे द्वारा जिसका जाना निवारित नहीं किया गया ऐसे मुझसे संयोग होने का नहीं ॥४८२॥

नाकाधिपतिपुरस्त्रीरभिभवितुं त्वयि दिवं प्रयातायाम् ।

सस्त्वयि शरीषु पंचसु निरायुधं साम्प्रतं मदन ॥४८३॥

इन्द्रपुत्री की रणशिवी को पराजित करने के लिए तेरे स्वर्ग वाले जाने पर इतत समय पांचो बाणों के विद्यमान होने पर भी कामदेव आयुधहीन ही गया है ॥४८३॥

वंचनश्रुता वेरया हत्यपवादी जनेषु यो स्वः ।

अपनीतोऽस्ती निपुणं त्वया प्रिये जीवमोलेण ॥४८४॥

जो यह आश्चर्य कि वेरपाए ठगवृत्ति किया करती है, लोगों में फैल गया है, प्रिये तुमने माया की कुर्बानी करके ही उस दूर बर दिया ॥४८४॥

वर्ष्यं सद्गत एकत्रिपुरान्तकनन्दनो महासेन ।

हृदयं यस्य स्पृष्टं न मनागपि वामसोवनाप्रेम्णा ॥४८५॥

मगपाल शत्रु के पुत्र स्वामी वार्तिकर मरणा के शोक है जिसके हृदय को मुन्दर नयनों वाली नारी के प्रेम न बर भी ग्य नहीं किया ॥४८५॥

मन्येऽभीष्टविभोगं निभेषमपि दुःसहं समवधार्य ।

हरिणा वधसि सठमीविधत्ता गौरी हरेण देहार्थे ॥४८६॥

मानता हूँ कि वन भर भी विर विभोग की दुःसह समक कर विष्णु ने लक्ष्मी की बच पर और सिराही ने गारती का अर्थात् में पारण किया है ॥४८६॥

अपि लोक्यान् सा भुवि सलामभूता तथा विना शून्यम् ।

विरवमिति किं न चितितमात्मस्यान् प्रियां नयता ॥४८७॥

हे लोकपाल, अरने म्यान पर मरी प्रिया का ले आठ हुए हुपन 'बह
दुप्पी पर भूपण है, ठकठ बिना सवार मूता है' मर क्यों नही साबा ! ॥४८७॥

मगवन्तुतवह मा मा सावप्यसमुद्रसारमृदुत्य ।

क्यमपि विहितां घात्रा षक्ष्यस्येनां जगद्भूपाम् ॥४८८॥

मगवान् अग्नि, विपाता ने सान्यं क समुद्र सं ठार कत्यु को निवार
कर किसी प्रकार इने रबा इ अठ सवार क इस अणद्वार को मत
बनाना, ॥४८८॥

॥ इति विलपन्तं बहुविधमवधीर्यं सुहृत्पुरंदरस्य सुतम् ।

काष्ठैर्विरचय्य क्षिप्तं तामकरोदन्निषाद्गणिकाम् ॥४८९॥

इस प्रकार बहुविध विनाप करत हुए सुन्दरमन की तामो गुणरसित
न इस कर काप्ने मे बिठा बनाई और उम गणिका को अग्नि क अर्पित कर
रिया ॥४८९॥

तस्मिन्निद्वहुताघ्नविनिपतने कृतमती शुभा कनिते ।

मनसि स्फुरितसामार्यां पपाठ कश्चिद्वसनेन ॥४९०॥

जिन समय कि शोक सं आतुल सुन्दरमेन दहकते हुए अग्नि मे हृद
पदन क लिए निरचय कर बैठा तमी किसी मे प्रसंग बश मन में स्फुरित आर्या
का पाठ किया ॥४९०॥

'मनुमरणे व्यवसायं स्त्रीधर्मो कं करोति सविवेकः ।

संसारमुक्तं पुपायं दण्डग्रहणं प्रतं हित्वा' ॥४९१॥

'मकार सं मुक्ति (दुष्टकार) प्राप्त करने क उपाय दरमहण करने
(कन्याम लेन) क नियम की छाड़कर कीन निवारणीय होगा की त्रिपी क
पम अनुमरण में प्रारम्भ करेगा ? ॥४९१॥

श्रुत्वा सुन्दरसेन सुहृदमवोचदस्यपेतवैद्वयः ।

प्रतिबोधितं मनो मे धीरेणानेन युक्तमुपदिष्टता ॥४९२॥

जुनन क बाद सुन्दरमन की व्याकुलता न थी, बह विद्व मे बोका—

‘रत्न भजेनानुम मे उदरेण देते ह्यप्यस्य मरे मन को प्रति बोध दिका है ॥१८२॥

क्षणशृणुनृवल्लभजमजराभ्याधिमरणपरिमृते ।

परिवर्तिनि संसारे क कुर्वादाग्रहं महिमान् ॥१८३॥

वहाँ प्रिय जन क्षणमर के लिए लिखते हैं और फिर नष्ट हो जाते हैं, जो जन्म, बुढ़ाया, रोग और मरण आदि से परिभूत रहता है ऐसे बरसते रहने वाले संसार के सम्बन्ध में कौन बुद्धिमान आग्रह करेगा ! ॥१८३॥

यासु भवान्कुसुमपुरं वयमप्यन्त्याश्रमे समाश्रयणम् ।

अंगीकुर्मोऽविद्याप्रहाणसंसिद्धये विहितम् ॥१८४॥

तुम कुसुमपुर आते आओ, अविद्या के विनाश की शिक्षा के लिए हम भी अश्रित आश्रम (सन्नाथ) में निवृत्त रूप से रहना आशीर्कार करते हैं ॥१८४॥

सौम्यददमिजातजनो बाल्यात्प्रमृति त्वया च न विमुक्तः ।

संस्यसनबुद्धिमधुना कथमुज्झति विषयनिस्स्यूहं सुहृदम ॥१८५॥

यह कुलीन गुणगणित बाला—/वपन्न स लेकर तुमने मुझे नहीं छोड़ा, अब तन्व्यास लेन की बुद्धि हुई तो विषय की रक्षा न रहित तानी को कैसे छोड़ रहे हो ? ॥१८५॥

एवमिति सोऽभिधाय स्थिरधतिनियमेस्तपोधनेर्जुष्टम् ।

गुणपासितेन सहितं सुन्दरसेनो जगाम वनम् ॥१८६॥

तब सुन्दरसेन आस्था कर कर स्थिरधति और नियमों के आश्रय वाले तनूबिबनों में अभिष्टित वन में गुणगणित के साथ चला गया ॥१८६॥

एवं भवन्तु वरया स्वार्थैकरता व्यपेतसद्ग्रावा ।

धमिलपितविषयसिद्धे का हानिस्तदपि युष्माकम ॥१८७॥

हम प्रकार बेरबार्द एकबाध स्वार्थल राग-रहित होनी हैं, तथापि हृष्यन विषय की शिक्षा हो जाने में तुम पुण्यो की कौन-सी क्षति है ? ॥१८७॥

रमण हृदयानुवर्तनचतुरचतुपट्टिकर्मकुशलानाम् ।

न स्पृशति सस्वधर्वा पण्यवधूनां विदग्धचेतासि ॥४६८॥

अग्ने रमण के लिये महान में निपुण और बौद्ध कलाओं 'म पापाक बाबाक औरतों के किय में तरफ की चला (कि मह-रागवती है अथवा नहीं आदि) विदग्धजनो क चित्त का स्पृश नहीं करते । ॥४६८॥

वलितप्लुतचित्रगतिस्मितिषेगैश्रोदनानुधुरमा च ।

रागस्पर्शेन विना त्रिगति मन सादिनां सुरग ॥४६९॥

थोड़ा वलित^३ प्लुत, चित्र आदि गतियों और स्मिति (उत्थान) के परिज्ञान से तथा प्रस्था का अनुकरण करने से राग (मम) क स्पर्श तक कन होने पर भी मुहसवारों के मन में स्थान पा जाता है ॥४६९॥

गन्धोर्षि कुत प्रेम्णा परमूतहारोतगूहकपीतानाम् ।

उज्ज्वलपर्यत्यसमपु विस्तविशेषेस्तथापि ते यूनाम् ॥४७०॥

कोपल, हारित कोरू कभूत आदि के प्रेम की गन्ध भी नहीं ! तथापि वे अपनी विशेष प्रकार की छायाओं से मुक्ता के मन्त्र का मन्त्रात हैं ॥४७०॥

माश्रितयुक्ताहार्य सम्यक्सकलप्रयोगसम्पत्त्या ।

भावविहीनोर्षि नट सामाजिकचित्तरंजन कुक्षे ॥४७१॥

पेश-भूया चारस करक धिर उदार देने वाला^३ चिता प्रकार क मीठरी राग से रहित भी नष्ट पूज रूप से तारे अमिनयो की निद्रि के द्वारा सामाजिकों (हठप्र) के चित्त का अमुरंजन करता है ॥४७१॥

१—आचार्य वैशेषिक ने अलग से अपने एक विशिष्ट ग्रन्थ में गणिकार्यों की निन्दा १७ कलाओं का उल्लेख किया है ।

२—वलित, प्लुत और चित्र य आदों की भाव प्राप्त हैं । प्लुत का अर्थ की और फेंक कर चलना वलित है दूर दूर पर या दूरगो मार्ग पर चलना प्लुत है और मनोहर चलन चलना चित्र है । सम्मेलन धातु कन इन्हीं के लिये अथवा सारथ, हलकी धीरे धीरे प्रकृति उद्यम प्रकृत है ।

३—अभिराममुनिराज—आहार्य अथवा अथवा विधि उते त्रियम धारण करक बोध दिया है । यह अथवा विधान एक प्रकार की कला है ।

'अपमङ्गला' क अनुसार 'देशकलापक्षपात क्यमालशामरणादिभिः शोभाय शरीरस्य मण्डनाधराः ।'

जोड़ि अभिनय के अनुकूल मात्र-भामान या पापाक धारण करने हैं उन्हे ही 'नेत्रप चि' कहते हैं त्रिये अथवा 'मन्त्र' करने हैं ।

येऽपि घनक्षयदोषं परयन्ति जठा विसासिनीरलेये ।

प्रष्टव्यास्ते भवता किमकृत्स्नकशिपुष्यया दारा ॥५०२॥

जो मूल ध्यकि वेरवा के आलिङ्गन में धन का तत्पानाश रूप दोष देगने हैं उनसे आप पूछिए कि क्या पत्नी बिना अन्न-वस्त्र वस्त्रों होती है ? ॥५०२॥

न च साम एक एव प्रवर्तते कारणं मनुष्येषु ।

रागादयोऽपि मतिं वैशिक्यास्त्रप्रणेतुमि कथिता ॥५०३॥

मनुष्यों में प्रवृत्त ज्ञान का कारण सिर्फ साम ही नहीं है बल्कि जैसा कि वैशिक शास्त्र क रचयिताओं^१ ने कहा है, राग आदि भी कारण हैं ॥५०३॥

का वा विभूतिराधा सुन्दरसेनात्तया सपस्विन्या ।

यद्विरहकुलिशमिभ्रा मुमोक्ष सा ज्योवितं क्षणार्धेन ॥५०४॥

उस बेकारी (हारलता) ने सुन्दरसेन से कौन-सा देरबर्ब वा क्षिपा वा कि जिसके विरह के बन्ध में मिला वह आपसे क्षण में प्राण छोड़ बैठी ? ॥५०४॥

उत्तमतत्प्राप्रकृतिं पुलकादिकसूचितान्यतनुसक्ति ।

स्फुटसंनिहितविभावो निवार्यते केन शृंगार ॥५०५॥

जिसके कारण उत्तम तदश और तदग्री हैं, रोमाञ्च आदि संजितही इतर विरह शक्तिवाँ भी स्थित होती हैं और जिसके विभाव (आत्ममन और उद्दीपन) स्पष्ट और समिहित होते हैं ऐस शृंगार रस का कौन निवारण करता है ? ॥५०५॥

अन्तःकरणविकारं गुह्यपरिजनसंबन्धेषु कुसटानाम् ।

जानति सदभियुक्ता भ्रूमंगापांगमधुरदृष्टेन ॥५०६॥

गुह्यता और परेजनो की मीढ़ माइ में भी कुलदामों के मन क पिङ्गार उसके जानकार लोग यदि पढ़ाकर निरखी मन्त्रांम देगने से जान जात है ॥५०६॥

१—इसके विद्यात्रिय काव्यायन प्रथमि आचार्य वैशिकशास्त्र के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं। वैशिक पुत्र (बराहागामी) जो वेरवा के उच्चार में कुलस होते हैं उन पुत्रों के कर्षण प्रकर्षण के विषय वाला शास्त्र 'वैशिकशास्त्र' कहलाता है।

अन्या विहाय पतिगृहमविचिंतितकृतफलकृजमगर्ही ।

रागोपरत्तहृदया यान्ति दिगन्तं मनुष्य मासज्म ॥५०७॥

राग से रंजित हृदय वाली कुछ बिना कुल के कर्मों और लोगों में निष्ठा की परवाह न करके पति का घर छोड़ कर आदमी पाकर सुदूर चली जाती है ॥५०७॥

अपमानं पतिविहितो गुल्परिकरतीव्रता गृहे दीःस्यम् ।

शोलसतये यासां सासामतिरागतोज्यनरसक्ति ॥३०८॥

पति के द्वारा किया हुआ अपमान परिवार के बने की कर्तव्य और घर में दुःख से रहना के सब बिना स्वयं के शूल (छाया) के नाश के कारण होते हैं, उनसे आठक दूसरे पुरुष में हो जाती है ॥५०८॥

या अप्यञ्जलितवृत्ता मनुश्चरणाञ्जतत्परा प्रमदा ।

वा अपि रागविमुक्तास्तिष्ठन्त्यौचित्यमात्रेण ॥५०९॥

बिना अनुरागहीन भी प्रमदाओं का आचरण बिजलित नहीं हुआ है और पति की सेवा में तत्पर रहती हैं वे विक्रमचित्य के सहारे रहती हैं ॥५०९॥

तस्मात्तास्वभिगमनं विविधनिमित्तं निवार्यते केन ।

निजपरपण्यस्त्रीणां रागाधीनं तु हृदयनिर्वहणम् ॥५१०॥

अतः, इसलिए नाना प्रकार के निमित्तों से होने वाले स्वभिचार का निवारण कौन कर सकेगा ? स्त्रीका, परकीया और कामत्या इन तीनों प्रकार की स्त्रियों के हृदय का सम्मान राग के अधीन होता है ॥५१०॥

एवविधदृष्टान्तरूपसतिपुत्रैस्तयेदशोर्वाक्यै ।

अन्यैरपि चाद्रूपदैरावनितमानसो गम्य ॥५११॥

इस प्रकार के पुत्रपुत्र इच्छन्तो तथा इस प्रकार के पत्न्यां एवं अन्य त्रिय बच्चों से गम्य (कामुद) का मन जब आकर्षित हो जाय ॥५११॥

विहितस्वापविशोधं विधित्प्रकटीकृतप्रमग्लान्या ।

उत्पादितजृम्भिकन्या परिरम्य धनं निष्ठापगमे ॥५१२॥

उस नींद से जग हुए उठको कुछ पचान और गिरफ्तार जम्हारे लेकर प्रकट करके पत्र कर आतिगमन करना और रात बीत जाने पर ॥५१२॥

विपटितपुटमुद्रदृष्ट्या विलोक्य ककुभः सदीर्घनिश्वासम् ।

यत्कथ्यमिति भवत्या रजनि ससे किं प्रमातासि ॥५१३॥

उन्मीलित आँसू से दिशाओं को देखकर लम्बी साँस के साथ यह करना 'तुझे रजनि क्या प्रमात खेर हा गई ?' ॥५१३॥

भवसा विपहेत कथं दृढशक्तिममुष्य रतिरसप्रसरम् ।

मदनजनितानुरागो न विदध्याद्यदि बसाधानम् ॥५१४॥

अगर कामजनित अनुराग ने उसमें शक्ति न मर हो होनी थी अवरणस्य पुरुषों के रतावग का अज्ञान कैसे तदन कर सकती ? ॥५१४॥

धन्या धक्काह्वयधू प्रियतमसंघट्टनसमयसम्प्राप्त्या ।

शयिना विमुञ्ज्यमाना कुमुदवति सोणपुष्पासि ॥५१५॥

प्रियतम से मिलन का समय मिले प्राप्त है वह बहूँ कथ्य है और कथ्य से विमुक्त हाँकी दुःख है कुमुदिनी, नू क्या शीघ्र पुरुषों पाली है ? ॥५१५॥

विकसितसुरमिमनोहरसंस्थानं सरसकुसुममप्राप्तम् ।

न करोति तथा पीडामास्वादितबिभ्युर्त यथा मृग्या ॥५१६॥

रितले, पद्ममरे, मनीहर एवं व्यपरीकृत सरस पुष्प को भूछी से नहीं पाया यह कथ्य नहीं देता, बल्कि उतक हाय आस्वादित होने पर उठ छूट का दृष्ट करना (कथ्यप्रद) हो जाता है ॥५१६॥

विशापयाम्यतस्त्वां रचितांजलिभौमिना विधाय नस्तिम् ।

परिषारकजनमध्ये गणनीयाहं प्रसादेन ॥५१७॥

इतलिए अष्टमिकथ्य के साथ फिर मुझ कर तुमसे निवेदन करती हूँ कि कृपा करके मेरा क अनी के बीच मरी गणना करना ॥५१७॥

अथ दीपितरागागैरपहस्तितसा भदिभ्रमोपचिते ।

मृदुभिश्चितानुगतैर्यघारैः पातितस्य विश्वासे ॥५१८॥

अन्तर दे कुशोदरी राग के उद्वारक तर्फी को उदीभिन करन वाले, ताम के प्रस के इस स्ने से प्ररहित 'मृदु एवं निष्कानुगत उरवासी हाय जब यह विश्वास में पड़ जाय तब उतम करना ॥५१८॥—

१—लाजावधनीरचिते —कामुक के हृदयवर्जन में प्रवृत्त बैरवा की मचये बड़ी कुशाहता तब निद्र होती है जब यह आन प्रवृत्तों में यह प्रस्य बड़ी होने लगी कि यह कथी प्रकाय यनताम के लिए स्वार्थ बस प्रेम बना रही है । ऐसी स्थिति में कामुक का उसके प्रति आग्रह हीर भी जाता है ।

अथलोकितोऽसि लम्पट किमिति उदन्कणसंनिधौ निमृत्तम् ।

संकटसेनायाश्च मया जालमार्गेण ॥५१६॥

‘आलकाब’, शत्रुसेना को घाप के कान के तपोन जुके से कुछ करत मुझे
मेम आज विद्वती से देख लिया ॥५१६॥

मालत्या सह कैलि विदधासि सखी ममेति न विरोध ।

यत्तु चिरं सिग्धवशा परयसि तां तत्र मे शंका ॥५२०॥

मुझे इसका विरोध नहीं कि तुम मासती के साथ कुछ बातचीत करते हो,
क्योंकि वह मरी खड़ी है, जो कि उसे स्नेहमयी दृष्टि से देख कर देखत ही
इसमें मुझे शक होने लगा है ॥५२०॥

स्वामागता न कीद्वितुमनुवध्य न माघिन प्रयत्नेन ।

आहूय यद किमर्थं ताम्बूलं प्राहिता कमलदेवी ॥५२१॥

यद न तो मुझे देखने आई और न तो उसमें प्रयत्नपूर्वक आर देकर माँगा
ही तब भी तुमने इच्छा देनी को बुला कर बोली, इसलिए ताम्बूल
पकाना ? ॥५२१॥

बन्धुकमपकार्यन्त्या प्रकन्टीभव दंसकक्षकुम्भपार्श्वम् ।

साभिनिवेशं इष्टं भवता कि कुन्दमालाया ॥५२२॥

जब कुन्दमाला आरना कमकुम्भ उतार रही थी तब क्या तुमने उसका स्पर्श
होत हुए कुछ आर स्तनी के पारवभागों को इच्छा मरी दृष्टि से
देना ? ॥५२२॥

परिहासेन गृहीता यदागुणपल्लवे स्वया रामा ।

आच्छाद्यापक्रान्ता कि मामवलाक्य पृष्ठत सहसा ॥५२३॥

आगर देनी मजाक में तुमने रामा का आँसु पकड़ लिया ता पीछे से मुझे
देना कर वह मरणा हुआ कर क्यों मग गई ? ॥५२३॥

विज्ञानेन स्यातां कुसुमसतां त्वं तु वर्णयस्यनिधम् ।

नृस्यतीं मृगदेवीं विस्फारितलोघनं परयन् ॥५२४॥

परीक्षरय आदि कानों में मराहूर कुसुमपता की इसका तुम काटीक करते
रहत हो और नाच करतो हुँ मृगदवी का आँसु नाह-पकड़ कर देतते
हा ॥५२४॥

कारणमत्र न वेधाहमृजुपमानं प्रसिद्धमुत्सृज्य ।

वक्ष्येण यदेपि पया माघवसेनागृहाप्रेण ॥५२५॥

जो कि तुम हमेसा मरुहूर और आतान रास्ते का छोड़ कर माघवसेना के पर के आगे वाले देहे रास्ते से आते हो इसका कारण मेरी समझ में नहीं आता ॥५२५॥

इति सेष्योपन्यासेरन्यैश्चाममविधिलघुकोपैः ।

प्रणयप्रमदैविदिते शातोदरि गूढरागस्ये ॥५२६॥

इस प्रकार ईश्यायुक्त दूसरे भी मम को बच न देने वाले प्रकृत्यजनित लघु कोपों द्वारा कामुक के अचिर अतुराह हो जाने पर ॥५२६॥

श्रुतिविशयेऽन्तरिततनुजनितस्थितिरायसाक्षि सह मात्रा ।

पश्यगिरा त्वं कुर्या इत्थं मिथ्यावचकलहम् ॥५२७॥

हे शीप नेत्रों वाली, उससे अशोक होकर शिथिले गए मुन उसके इससे तमीय ही राड़ी होकर माता के साथ ए इव प्रकार कुञ्जमूठ का परग बाड़ी से पाककलाह करना ॥५२७॥

अम्लेशोपनतधनं प्रेमप्रवृत्तो निरगसत्यागः ।

मदृमहानन्दसुतो निधिमृतोऽभव्यया त्वया त्यक्तः ॥५२८॥

(बिरयामाशा की उक्ति—)

'मदृमहानन्द के लड़का, जिसे बिना प्रयास धन मिलता है, प्रेम से मुझा हुआ, निपन्ध पैना सुदाने वाला स्वयं गवाना बने उसे अमागिन ए मे छोड़ दिया ॥५२८॥

व्यसनोपहृतधिवेशो दीवैकगतिः स्वदारविद्वेषी ।

मामत्रिगणप्य मूढे निर्मरिसत एव कःशवस्वामी ॥५२९॥

मूढे, शीक के मारे शिमशा शिवेक जाता रहा है देने में ही जिने प्रेम है और जो आनी पनी से होप रागता है वेमे केशवस्वामी को, मेरी एक न मुनी और दुकच दिया ॥५२९॥

अगणितराजापायोऽविच्छिन्नाय स्वभावतस्त्यागी ।

किमुपेगितोऽनुरक्तो वामपिया शील्लिगाध्यसा ॥५३०॥

जो राजा के दरद की परपाद नहीं करता, त्रिम पगवर आयदनी होपै

रती इ और जो म्नाय ही म्नागी हे एने अनुयाग करने वाले शौल्किका
प्यस १ को टेंदी बुद्धि वाली नू ने क्या उपचा कर ही ? ॥५३॥

फिपुरेक एव पुत्रश्रतुषवयसो गवामिभूतस्य ।

द्रविण्यवत् प्रभुरातो निराकृतो मूरिकामया सोऽपि ॥५३॥

अनि बूढ़े, रोग से पीणित, धनी याग के इकलान बटे उस प्रमुणन को भी बनाया
इच्छा करने वाली नूने निरन्कार कर दिया ॥५३॥

स्वकरेण परित्यक्ता स्वया विभूतिं करोमि किं पापा ।

सर्वभरेणोपनतं वसुदेवमनादरेण परयन्त्या ॥५३॥

अप प्रकार क अतिशय अन्नरसन बाल वसुदेव को अनादर की इच्छि से
देवती हुए नू न अन्न हाप स ऐश्वर्य छान दिया मी पापिन क्या
करे ? ॥५३॥

पुष्यान्तरसंधर्षात्प्रोत्साहितचित्तवृत्ति निरपेक्षम् ।

वसु विसृजति यो रमसात्तस्य न वार्ता त्वया पूष्टा ॥५३॥

बसुदे कामुक क साम सपथ करक प्रियत्री चित्तवृत्ति प्रोत्साहित हो गई
और जो बिना किसी अपचा क धन फेंगा है उससे महसा नूने सम्पत्तार भी
नहीं पूष्टा ॥५३॥

चित्रादिब्रह्माकुशलं स्मरशास्त्रविचक्षणो वृषप्रकृतिः ।

उपकुर्वन्नपि सर्वो विद्वेपिण्ये स्वया क्षिप्त ॥५३॥

चित्र आदि ब्रह्माको में कुशल, कामशास्त्र का पर्यन्त वृष ब्राह्मीय नायक
की प्रकृति बाते १ और उनकारो भी अप को नूत शत्रु की गणना में क्षिप्त
दिया ॥५३॥

१—गु गी लक्ष्मील करने बाधों का सरदार ।

१—वृषप्रकृति—वृषब्राह्मीय नायक विशेष । वात्स्यायन के अनुसार ब्राह्मणपुण्य
मुनरो अन्नबुद्धिपुण्य होन के कारण कर्मिणियों का मित्र । रतिरदस्य के अनुसार
वृषब्राह्मीय पुण्य वृष समुचितभाषी रतिरन्वय प्रियवचनकारी आख्यायिका
पुण्य, परिचरवर्णीत, स्मरशील और प्रेक्षण समिक होता है ।

चन्द्रवतीमामरणं दत्तं मधुमूदनस्य पुत्रेण ।

परयन्ती विभ्राणामपि रागिणि किं न जिह्वेपि ॥५३५॥

री रागिणी १ मधुमूदन के लम्के के लिए आमरण को चारण किए चन्द्र-
वती को देखती हुई नृ कपो नहीं लज्जित हुई । ॥५३५॥

प्रामोत्पत्तिरशोपा प्रविशंसा सिहराज विनियोगात् ।

ममघसेनावासे लघपति ते रूपसौभाग्यम् ॥५३६॥

गाँव में पैरा हुई और सिहराज के घन में ममघसेना के घर में प्रवेश
पानी हुई अशोपा तरे रूप के सौभाग्य की तुल्य कर रही है । ॥५३६॥

भास्तामपरो लाभो नृपवल्लभनन्दिसनतनयेन ।

शिवदेव्या उपचारं क्रियते यस्तेन पर्याप्तम् ॥५३७॥

दूतण लाभ करने दो तर में महाशिव नन्दिसन का पुत्र शिवदेवी की पर
राक्षित करता है जो ठठनी काही है । ॥५३७॥

परयेवं घवल्लगुहं पाशुपताचार्यमावशुद्धेन ।

कारितमनंग देव्या विभूषणं पतनस्य सनक्षस्य ॥५३८॥

छारे नगर के निभूषण इस भवल्लगुह २ को देखो, जिसे पाशुपताचार्य माय
शुद्ध ने घनद्वेषी के लिये बनाया है । ॥५३८॥

भाषणिकाचार्यस्य कृतो राजा समते शतुर्यमपि भागम् ।

हृष्टपतिगमसनप्रसादतो नर्मदा यमुपसुक्ते ॥५३९॥

पात्रार की विद्ये के घन ३ के नीचे हिस्सा का भी राजा कहाँ पाता है, जिसे
नर्मदा राजार के ठठगर समसन के अनुपद न उभागा करती है । ॥५३९॥

पुस्त्वाख्यापनफामो न स्त्री न पुमान्किञ्च प्रभुस्वामो ।

मनुष्यन्नुपहृष्टिस्तस्यया जह स्वार्थमनपेय ॥५४०॥

अरी मृत आन म पुन्य आदिर करन की हृष्टा वाला न पुन्य न स्त्री, धना

१—अपान् आपक के प्रति राममापक अनुगत करन वाली जब कि रामाविक
अनुगत गणिष्ठा के लिये मन्थना निर्विद है ।

२—अवल्लगुह—हिन्दी धीतरा या धातरा अर्थात् गलत महल ।

३—भाषणिकाचार्य—यह घन भी पात्रार की शरीर के शुक के शुक या पुत्री के रूप
में हृष्टा होता है जिसे हृष्टा (हृष्टा) राजा को धरित कर देता है ।

प्रमुष्यामी आग्रह करता हुआ स्वाप की अपेक्षा न करके तेरे हाथ उपहासित
हुमा ॥५१॥

वाजीकरणैकमस्तिनरनाथानुग्रहेण विख्यातः ।

प्रत्याख्यातः स तथा रविदेवः किंकरत्वमाकाक्षन् ॥५२॥

वाजीकरण^१ का प्रयोग का जानकार और रामा का अनुग्रह का कारण
विख्यात, हास बनना चाहत हुए उस रविदेव को भी उस प्रकार मन तिरस्कार
कर लिया ॥५२॥

किं कन्दर्पकुटुम्बे जातोऽज्ञाधुत वशीकरणयोगम् ।

कम्प्यवैति सिद्धं येनाकृष्टासि सर्वभावेन ॥५३॥

क्या यह कामदेव का गाम्बान में जन्मा है अथवा कोर सिद्ध वशीकरण
का उपाय जानता है जिसमें सब प्रकार में तु आकृष्ट है ॥५३॥

वाल्ये तावद्योग्या परचादपि वृद्धभावपरिमृता ।

सारण्ये रागहृता यदि गणिका भ्रमतु तदमिक्षाम् ॥५४॥

बचन में तो अयोग्य रहती है बुद्धाप से परिमूल हो जाने में भी अधोग्य
ही हो जाती है और यदि तस्कार में किसी का अनुग्रह में फँस गई तब तो
गणिका मील के लिए पूमा करे ॥५४॥

१—वाजीकरण—बद्ध अथसेद जो सेवन करने पर बीचे की तरह मुरत कर्ब में
अधिक कृतित पैदा करता है । जैसा कि चरक न कहा है—

येन मारीपु सामख पाजिरल्पमते नरः ।

येन आभ्यर्षितं पीयं वाजीकरणमेव सत् ॥

२—यही गणिक्य 'उत्तमर जान' की प पंचिका उद्धरणिय है—“यों तो
बुद्धाप हर एक के लिए पुरा है; ग्राम कर चीरल के लिए । रंडी के लिए तो ग्राम
कर बुद्धाप होकर (नरक) का नमूना है । बुद्धिवा कर्जीरनिपा, जो सग्नरु के
गलीकृती में बड़ी चिरती है अगर मीर कीजियगा तो उनमें अग्रपर रचिवा
मिलेयी । रचिवा भी कौनभी जो कमी जमीन पर पैर न रखनी थी क्यामत करपा
कर रखी थी द्वाती भरे-भुरे कर लबाह कर लिए, मंडरो जराती को भगुवाक कप्त
किया जहाँ जाली थी लोग भागें बिजुले थे सब कीई उमड़ी तरफ भांग उदाकर
भी नहीं रियगा । पहले जहाँ रीद जाली थी लोग बाता-बाता हो जाने लें । सब कीई
गरे हीने का भी रसादार नहीं । पहले बिन मांगे मोती मिमने थ सब मांगे मीय
नहीं मिलती ।”

उपनय भाण्डकमेतद्यद्विर्तं मामकेन देहेन ।

विदमामि तीर्थयात्रामास्स सुखं प्रेयसा सार्धम् ॥५४४॥

ब्रह्म मने अपने शरीर से उपाजन किया है यह अथभाण्ड सुके ला ५, तोपयात्रा करूँगी, व प्रियतम के साथ मुग से रह ॥५४४॥

(यहाँ ठक बेरयामाठा की ठकि दुर, फिरला पवाठी है कि पित बेरवा की उचसे क्या कहना चाहिए,)

आर्यजननिन्दितानां पापेकरसप्रकाशनारोणाम् ।

एतावानेन गुणो यदभौष्टसमागमो निरावरण ॥५४५॥

बिना किसी आपराध (पग-सग) के प्रिय का समागम पूरी आपजनों से निन्दित, पापसे प्रमाण गारियों का गुण्य है ॥५४५॥

नो धनसामो लामो सामं ससु यत्समेन संयोग ।

असिगतादेषांस्त्विनभयति मनसा प्रमोदाय ॥५४६॥

धन का साम कोई साम नहीं, साम तो प्रिय के साथ समागम है । जिसके प्रति मन में डग हो (अथवा की आँगी के सामग हो) उससे धन का साम मन को प्रसन्न नहीं करता ॥५४६॥

गाढानुरागभिन्नं तास्परसा मृतेन संसिक्तम् ।

न भजति सहृदयहृदयं विभवार्यनसम्मया चिन्ता ॥५४७॥

ब्रह्ममें गाढ़ अमुगम बिना हुआ है जो तास्पर के रग से सम्बद्ध प्ररार धं सीपा गया है धम सहृदय के हृदय पर धन अथान की चिन्ता नहीं सवार होती ॥५४७॥

सामं स एव परमं पर्याप्तं तेन तेन सुखास्मि ।

विनिवेरय यदुत्सङ्गे निदिपति मुत्ते मुत्तेन साम्बूलम् ॥५४८॥

वही परम साम पयाप्त है ब्रह्म में मृत हो चुकी है । जो कि मोर में पैठा कर मुग से मुग में तास्मूल धरिा करगा है ॥५४८॥

सुरस्तमयारिकणान्परिमार्ष्टि निजांशुरेन गात्रेषु ।

यदुरसि निषाय विहसंस्तस्य न मूर्ख्यं यशुपरा सफना ॥५४९॥

जो कि गो- में रग कर दगता हुआ अर । बरव से अज्ञा में मुत्त के लीने को जोड़ता है उनका मूत्र छोड़े शूची नहीं है ॥५४९॥

शिविलितनिजदाररतिर्मयि सक्तमना अनन्यकर्तव्यम् ।

यवसौ जितनलरूपस्तिरस्कृतं तेन गाणितयाम् ॥५५०॥

जा कि नल क रूप का जितन नामा यह अपनी मार्ग में अनुलग शिविल करक सब काम छोड़ कर मुझमें मन लगा चुका है उसमें मेरे नाम का गणिका-समुदाय निरस्कृत है ॥५५०॥

बहुकुसुमरसास्वादं कुर्वाणा मधुकरी विधिनियोगात् ।

ईक्ष्वप्रसवविशेषं लभते क्षत्तु येन भवति कृतकृत्या ॥५५१॥

बहुत से फूलों का रसा-स्वादि करती हुए मीठी विधि की प्रेरणा मन्त्री ऐसा भी फूल पा जाती है जिससे उसका जीवन सुख्य हो जाता है ॥५५१॥

अपि सरले तावदिमा उपदेशगिरो विद्यति कर्णोत् ।

यावद्भ्रान्तभूतं तच्चेतसि मामकं चेत ॥५५२॥

धरी छीपी-साधो, तेरी वे उपदेश की बातें सब तू मरे जानों में पीठती क्या तू मेरा मन उसके मन में भ्रान्तभूत हुआ न जाता ॥५५२॥

श्रीरस्तु दुर्गतिर्वा वैरमनि वासो महत्परप्ये वा ।

स्वलोकि नरके वा किं बहूना तेन मे सार्धम् ॥५५३॥

बहुत करने से क्या ! उसके साथ मुझे भन हा अपना दखिता, पर मे रदना पड़े अपना जंगल में स्वग जाना हो अपना नरक में ॥५५३॥

इदमास्तेर्लंकरणं दुर्जननि गृहाण किं ममैतेन ।

तेनैव भूयिताहं गुणनिधिना भट्टपुत्रेण ॥५५४॥

तुम्हें माता यह है गदना हा हा, मुझे रखी क्या जरूरत ! मैं तो गुणों के निधि ठीकी महपुत्र से भूयित हूँ ॥५५४॥

उचितस्याननियुक्तान्यपनीय विभूषणानि सावेगम् ।

एवमभिधाय यास्यसि मातुः पुरतः समुत्सृज्य ॥५५५॥

यह कह कर शरीर के उचित स्थानों में लग गदनों को मटक से निकाल माता के सामने रख कर बनी जाना ॥५५५॥

इति रागात्स श्रुत्या चेतसि क्रुष्टे कदाचिदेवमिदम् ।

स्नेहापिच्छित्तमनसामविधेयं नास्ति नारीणाम् ॥५५६॥

यह सुनकर प्रेमाप यह कदाचिद् अपने मन में यह करे कि अनुलग से

म्यास यन शाली शिखो फ लिंग कुक्ष भी अनाय नरी ॥५५६॥

जननीं जमस्थानं वा घवलाकं यसूनि जीवं च ।

पुष्ट्यविद्योपासता सीमन्तिन्यन्तुणाय मन्यन्ते ॥५५७॥

जिन्नी नाम आदमी में आलक शिखां जननी, जमस्थान बहु-रन्ध्र, घन, घास सय कुक्ष तृण-वमान सममन लगता है ॥५५७॥

रणधिरमि हृते वधे वज्रोपमव्यत्रनिर्गतप्रावृणा ।

प्राणा मुमोच दयिता न मंत्रविधिना हृता रामा ॥५५८॥

मुदक्षुष में पत्र के तमान मय म निरुद्धे पत्थर के द्वारा पत्र^१ के मारे जाने पर गणिका ने (शोक में) अपना प्राण त्याग दिया, यह किसी मंत्र के प्रयोग से प्राप्त न थी ॥५५८॥

कालवधेनायासीत्पंचत्वं दक्षिणात्यमणिवंठं ।

प्रेमोपगता वेरया तेनैव समं जगाम भस्मत्वम् ॥५५९॥

दक्षिण देश का पानी पण्डित का समय पत्र को प्राप्त हुआ और उसके प्रेम के बशीभूत बरया उसी के साथ जिता में जल कर साथ हुए ॥५५९॥

भास्करयर्मणि याते सुरवर्षाधि धारित्वापि भूपतिना ।

सददुःखमसहमाना प्रविवेश विसासिनी दहनम् ॥५६०॥

भास्कर-वर्षा के साथ निधरने पर राजा से रीक जाने पर भी उठता विरहदुःख न सह पाती हुई बेरया ने अग्नि में प्रवेश कर लिया ॥५६०॥

ज्वालाकरासद्दुःखमुजि मन्नाचायं पपात नरत्सहं ।

सस्मिन्नेष शरीरं निजमजुहोन्धोऽप्यीदृशिता वेरया ॥५६१॥

मन्नाचाय^२ नरत्सिंह अग्नि को इतना गान्ता में गिर गया और शोक पीड़ा बेरया ने उसी अग्नि में अपना शरीर त्याग कर दिया ॥५६१॥

१—बंग डीमदार की शिखिनाय साथ के चतुर्गार यह 'पत्र' सम्भवतः कर्णाटक के राजाक 'पत्र' की कल्पना करके उन्मिगित है (राजतरंगिणी) ।

२—निर्गन्ध का दिग्गधर मन्नाचायः । दिग्गधर ईश्वरों के चतुर्गार मन्त्र (पत्र रहित) रहना शीक में महत् है कल्पितारत कृत्रिम है ।

कुटनीमघ काव्यम्

प्रोतिभराक्रान्तमतिस्त्रिदशालयजीविका त्रमोपगताम् ।

मङ्गीचकार मुक्त्वा जीहृल्ला मिथपुत्रमा मृत्यो ॥५॥

श्रीति क मार म आक्रान्त बुद्धि वाली कटुभरका म मरगतुम्प, बश प
मठ जीविका छोड़ कर मठ विष्णु (एक अत्यन्त) कामण जीहृल्ला मि
पुत्र) की मृत्यु-वर्षस्त आङ्गीकार कर लिया ॥५॥

दशान्तरादुपेता प्रसादमात्रेण धीक्षिता वनिता ।

तत्याज न पादयुगं समरे निहृतस्य वामदेवस्य ॥५६॥

बृहते देश से चार प्रौर सिद्ध अनुग्रह की दृष्टि से देवी गई वनिता
में मारे गए कामदेव के पैरों को न छोड़ा ॥५६॥

भट्टकदम्बकस्तनये याते वसति परेतनायस्य ।

षत्रे देहत्यागं रणवेधी वारयोपिता मुख्या ॥५६७॥

मठ कदम्ब का लड़का जब यमपुरी को विभक्त तक वेरमाओं के
रक्षदेवी ने प्राण त्याग दिया ॥५६७॥

अस्यामेव नगर्यां व्रिणिणमदात्कालसंचितमद्योपम ।

प्रेम्णाकृष्टा गणिता मिथारमजनीलकंठाय ॥५६८॥

इसी (बाणेशी) नगरी में प्रेम से आकृष्ट गणिका ने बहुत
सञ्चित धन का हारा धन मित्र के लड़के नीलकंठ के लिए दान
दिया ॥५६८॥

द्वयमपि ममि विहितास्या मातृवचश्रवणकसुपिता क्व गत

त्यक्त्वामरणं सव प्रविजम्भितमन्युसविगा ॥५६९॥

दुःखों निराग करने वाली यह भी भाग्य की पाठ से विगड़
गहन उताव कर प्रोष के संवेग के बढ़ जान से नहीं बची गई ॥५६९॥

उत्सुष्टासंवरणां परिशेषितमातृमुत्तपरिवाराम् ।

संतर्पयामि संप्रति सर्वस्वेनापि हरिणाक्षीम् ॥५७०॥

जिम बालठी ने मरे किए धर्म गहन छोड़ दिए, माता भी जिम
पाए छोड़ कर बनी गई, धर्म में उठ हरिण के समान नपनों वाली को
देकर बतलाया ॥५७०॥

गेहेन किं प्रयोजनमन्यैरपि बन्धुवारपरिवारि ।

संसारग्रहवारणमेवा ससु मालती मम हि ॥५६८॥

पर मे और बूझर पधु-बान्धव, स्त्री तथा परिवार स क्या मतलब !
क्योंकि एक मासती ही मरे संसार में रहने का कारण है ॥५६८॥

अमृतकरावयवैरिव घटिता सा दृढतरं परिष्वज्य ।

चेतो नयति समत्वं ब्रह्मण आनन्दरूपस्य ॥५६९॥

मानो बन्ध के रखने स गद्दी हुई जो (मासती) बस कर आसिद्धन करने
पर बिच को आनन्दमय ब्रह्म की समता में पहुँचा देती है ॥५६९॥

आविर्भवदात्मभवदोभक्षतधीरता धनं रमसात् ।

विगणितकुचयुगलावृतिरालिगति मालती धन्यम् ॥५७०॥

प्रकट होने हुए कामदय के द्वारा किए गए छोम स धैर्य के नष्ट हो जाने
पर भी स्थिति में जिसके दोनों सानों का आवरण टल पड़ता है एसी मालती
धन्य पुरुष को आसिद्धन करती है ॥५७०॥

निर्दयतरौष्ठसण्डनसव्यगङ्गुकारमूर्च्छितं सुरते ।

अहृहेति यच्चस्तस्या अपुण्यभाजो न ऋष्विति ॥५७१॥

बिन्दोने पुण्य मही कमाया है ये मुरत प समय दया-रहित शस्त्र छोड़ के
बटने की व्याप स पुण्य, दुःख के कारण मूर्च्छित उसकी 'अहृद' इस आवाज
को नहीं सुनत ॥५७१॥

स्मृतिज मजनितविकृतिप्रततिच्छन्नं करोति संसारम ।

आवृत्तसुरससंगरविमर्दसंधोभिता दयिता ॥५७२॥

हमसा चलते रहने वाले रतिमुद्र क निमर क कारण व्याकुल शिवा
(मालती) संसार का कामरतिन विरुधियों की लताओं स दृढ लेखी
है ॥५७२॥

गाढतरारिलज्ज्वपुर्मजते कान्ता प्रमोत्समोहम् ।

शिविसीकृता तु विचित्रियपियारं समुच्छसिति ॥५७३॥

शिवा जब रूढ़ आसिद्धन म जन्म ही जाती है तब आनन्द म शिभार हो
जाती है और बाह्य भी शिवाय कर देने पर नना प्रकार क शिभार प्रकट करने
लागी है ॥५७३॥

सन्तपया अपि सत्यं पुरुषोचितकर्मपण्डिता प्रमदा ।

सृष्टा तथा तु नियतं विपरोत्तरसक्रियागोष्ठी ॥५७१॥

सत्य है कि पुरुषार्थित के काम में बहुत-सी और भी प्रमदाएँ हैं तथापि इत
मानी ने निश्चय ही विरहीन मुख के कार्यों का निमात्र किया है ॥५७१॥

संप्रीवाद्यविद्येपानुद्गमानन्यज मनस्तस्या ।

कुहरितरोचितकम्पितसम्पादननैपुणं करोति खडान् ॥५७२॥

उद्यम कामवेग वाली उस मालती के उचित-कामाचिन सुहृदि (उचितकाम का
कृत्रन, बीया पक्ष में 'निकारी') रेषित (रक्षितानीन निवृत्तित, पक्ष में ही-
कमित (रक्षितानीन निहरन, पक्ष में मद्भार) प्रकृति के सम्पादन का बीया
तर्पणाय प्रकृति बाप संभो को जन्म या संसारा बना डालता है ॥५७२॥

सल्लिखांगहारबुम्भितवलिसस्मितवेपनानि मासत्या ।

परयज्ञहाति कामो रतिमोहनचेष्टितेषु बहुमानम् ॥५७३॥

मालती के शोभन अद्भुतचेर, जैमाई, बाल मुम्भान और कपन की
देरान्न हुआ काम अन्नी माया रति की मोह उन्मत्त काम वाली लच्छाओं में
भाद छोड़ देता है ॥५७३॥

न भ्राम्यं परिहृषितं नाविघ्नमतरलितोऽप्रतिविक्षेप ।

सुखोद्योगनिरोधो दोहृददानं न पुष्पवाणस्य ॥५७४॥

काम्य की जन्मभूमि और मागे जपन के भार में मन्द बाल न चलने
वाली उस मालती के परिहास (हसी-महाक) में कारे गगारन नहीं है संयत
आंगों का विघ्न विनाशहीन नहीं है, उनके मुख में प्रकृत होने पर काम्येक
की शोभनान ' (अपान् पूण कृति) नहीं होता ॥५७४॥

नार्यपरो सपनरसो न पराशयवेदने विचक्षणता ।

नासौष्ठवं प्रसंगे नोत्पण्णगुणकीर्तनेषु भारत्या ॥५७५॥

उसके सपनों का अनुसारा पनसक नहीं है, दूसरों के अभिप्राय बर ज्ञान

१—शर्मिणी की ही शाले बोधे का देने की स्वामर्षिक अभिप्राय को 'दोहृद'
करते हैं। उस शक्ति के रूपमें उससे अभिप्राय काप का सम्पादन 'दोहृदनाम'
करता है। वह संकल्प-साहित्य में बहनों को अस्मत्कृतुमुक्ति करने के लिए

लेने में बचुर नहीं है, १ पाप करण क प्रसंग में कोई अचरुता नहीं बचती और दूसरों के गुणगान में पापी की अचरुता नहीं होने देती ॥५७८॥

नापरपुष्परलाघा न त्यागः पालदेशवेशस्य ।

वैदग्ध्यजमभूमेगु रुजघननरेण मन्दयाताया ॥५७९॥

मुझ छोड़ दूसरे पुण्य की तारीफ़ नहीं बरती, समय और देश के अनुसार बच का त्याग भी नहीं करती २ ॥५७९॥

कवियमय के रूप में 'दोहरदान प्रसिद्ध है जो हम पुरों के कारण हम भेदों से बचा जाता है—

रीणां स्पृशात् प्रिमंगुर्विहमति परस्ताः गीषुगयद्वपतेराम्

पादापातादशोऽस्ति लकडुरुनरो वीक्षणातिङ्गनाम्बाम् ।

मंदारो मर्मकाषपात् पट्टमुद्रुद्वसनागम्परो परप्रपाताप्यतो

गीताममेरुर्विहमति य पुरो नर्तनात् कर्णधरः ॥

अमुन आर्षों के उपास्य का भाव यह है कि पण्यकाम हम पूष का दोहरदान लभ नहीं होता जब मानवी मुरत में उपागरहित होती है। उषु क श्लोक में उक्त एतर्थादि वरुषिच दोहरदान को बचिने एक ही मूल का प्रम मद्रुमित बर लिखा है। नापय बट है कि मानवी क एग एगदयन पाशाघत पीषण कर्तिहून नमधारय पट्टमूद्रुद्वसन गुणकाम गीत और मामने नसन से कप्रदेर स्त्री पूष का 'दोहरदान होता है और हमके अभा में उषा 'दोहरदान' नहीं होता ।

१—बह हनकी मरता का गुणा है कि बह नहीं जान पाती कि कौन किस मानव से उमके साथ व्यवहार करना है अर्थात् गणिकामुमम भूतता उममें व्यवहार भी नहीं ।

२—देव और बान के अनुसार बराभूता एक प्रकार की कता है जो नरप्य प्रयोग बरबानी है—

दशरामात्तया वरप्रमास्यामरणाग्निभिः शामार्थं शरीरस्य
मददनाशरताः ।

अथ्रह्मपरिष्वजनं हंससमार्लोशनकुलपरिरम्भम् ।

पारावतावगूहनमाचरति सुमध्यमा यथावसरम् ॥५८०॥

शोभन रूपमग बाली वह ठरमुफ समय से कमी चक्राग-आलिङ्गन,^१ कमी हंस-समार्लोपन,^२ कमी नकुल-परिम्भ^३ और कमी कपोतावगूहन^४ का प्रयोग करती है । ॥५८०॥

तद्वद्वचन हास्यव्यवहृतिहृतमानसस्य आयति ।

अनुकूलसुन्दरा अपि भरणीया केवलं दारा ॥५८१॥

उठके बर्नाल्लुश हंसी-मजाक क म्बदारी स हृत मन बाते व्यक्ति के लिए परिशीला मामा अनुकूल और सुन्दर हीन पर भी केवल भरस-पौरण के योग्य रह जाती है^१ । ॥५८१॥

सूक्ष्मपति पृथक्करणं आसृणां वसि विपमशोसत्वम् ।

विषुणोति गृह्विसंस्थामभिनन्दति पितृकुलस्य गुणवत्ताम् ॥५८२॥

मासों को छापन में अलग-अलग कर देती है पत्न्य-उत्साह स्वभाव पैना कर देती है पर भी शिपति गन्बड़ा देती है, अपने पिता व पर की प्रशंसा करती है । ॥५८२॥

१-२-वर्द्धो विषय आलिङ्गनों की बर्षा है । पारम्पयन काव्यमूत्र में इनका निर्देश नहीं हमरा वह अथ नहीं कि आलिङ्गन असाधारण है । अथवाग्य होने के कारण आकाशों में हूँदे नहीं बढ़ा है । अथवाक-आलिङ्गन—अकाश बर्षी जैसे चर्कई या आलिङ्गन जाता है अथवा वेद में देद मयहन करके नदी के बड़े पर माना रखता । हंसालिङ्गन—हम की तरह धार धार मिलना और अलग होता । अनुकूलिमान—मदसे का तरह देर तक बर बृन्द क शरि में शिपक जाता । संवात से हमरा उल्लेख योग्यविषय में प्राप्त है—

‘गलदन्त पनम्बह मुयद्भाप्यं लुङ्गसुहम् ।

आलिलिन्न चिरं वज्रतां नकुलो नपुर्णामिष (६।१०६।१३-१४)

पारम्पयनगूहन—बृन्द के सामान कामने कामने केरम मुह में मुह का शिपना ।

—तात्पर्य यह कि शार्ङ्गपुरा आत्मी जब हमक हंसी मजाक के पैर में बह जाता त तो बिराद करके शार्ङ्ग हूँ पानी को पिर्न अथ अथ देपर कतम्पपातन माय करन जाता है उसे मरवा बोकर हनी में रमण करन जाता है ।

अन्यसुतपदापाठं कथयति मातुस्तिरस्वरोति पतिम् ।

पार्ष्वनिमग्ना जाया मा यातु विमुच्य कार्मुकं मदन ॥५८३॥

बहती है कि सारा दूसर लग्न का पक्षपात करती है, पति को तिरस्कार करती है। इस प्रकार कामदेव अपना धनुष छोड़ कर भी बगल में पड़ी पत्नी की पूजा करता है। ॥५८३॥

एवं कृतेऽपि सुन्दरि यदि तिष्ठति मायकं प्रकृत्यैव ।

इत्थं पथि परिमोषस्त्वसख्या नैपुणेन वक्तव्य ॥५८४॥

सुन्दरि, ऐसा करने पर भी यदि मायक प्रकृतिस्य ही रहे तो हमारी दूती को उसका निकट नियुक्ता क साथ रहने में चार के द्वारा (आभूषण) आदि के अपहरण की बात इस भाव से करने चाहिये ॥५८४॥

गृहकार्यव्यग्रतया धितप्रहृणाय वा कुसस्त्रीणाम् ।

नायाते भवति सखी प्रावृद्धनकल्पिते दिशां चक्रे ॥५८५॥

घर के काम-काज में व्यस्त होने के कारण अथवा कुसन्तुष्टी स्त्रियों के मन रतने के निमित्त आश्रय नहीं आने पर सखी, जब दिशाएं भरसक वाले भेषों से सजीव हो गई ॥५८५॥

प्रप्रीवकथनगता स्फारीभवदात्मसम्भवविकारा ।

त्वद्वर्मनिहितनेत्रा गीतामन्येन गीतिकामश्रुणोत् ॥५८६॥

कोठे की शय्या पर आकर लेट गई उसका काम-विकार मिलकुल बढ़ने लगा और उसकी आंखें तुम्हारे चेहरे में निछ गई तथा उसने किसी के द्वारा गाई हुई पद गीतिका सुनी ॥५८६॥

‘यदि जीवितेन पुर्य्य सम्भावय विरहिणि प्रियं तूणम् ।

धनरहितस्य हि पुरतं वदमीदमयोमसं कुलिशापातं ॥५८७॥

विरहिणि यदि तुम्हें धन औरत से कुछ काम है तो शीघ्र ही प्रिय का अभिसरण कर क्योंकि मछी भी गड़गड़ाहट के नामने पत्रपाल भी फेल के पक्ष के समान कामकाज हो जाता है ॥५८७॥

१—विद्वत्ता ने आत्मी की समझपा कि यदि मातृव्यद आदि उपाय निष्फल हो जाय तब तुम अन्य उपाय आरम्भ करना। कामगाय के पठिक अभि-
करण में ‘धर्तकाररिमाय’ का पद उपाय निर्दिष्ट एवं लक्षित है।

२—‘मवृत्तं न काम-विकार इत्यादि प्रसिद्ध है। कामिनाय मिलन है—

ग्रामक्य मामबादीद्वन्यास्ता मुनतय सधि कठोर ।

या विपहन्ते दीर्घप्रियतमविरहानलासारम् ॥५८८॥

मुन कर बर मुझमे योनी कि सन्धि, वे कठोर-व्यक्ति मुनतिनी पन्य है जो प्रियतम के विरहानि की बर्षां देर तक तद लेती है ॥५८८॥

मम तु दिनांतरितेऽपि प्रेयसि लब्ध्वा सहायसामग्रीम् ।

विदधासि मकर कस्तनतल्फलिकाविधुरितम् हृदयम् ॥५८९॥

मेरे लिए तो एक दिनकर भी प्यारे के ब्यवधान कर देने पर मरी सहायक सामग्री न पाकर कामदेव मेरे हृदय को उल्लखता-विधुर करने लग जाता है ॥५८९॥

उत्कण्ठयति 'भृशं मां समोरणो यफ्रुलकुसुम गन्धाक्षय' ।

प्रभ्यावयति धैर्यामधुरम्भनिमि कस्तापमृत ॥५९०॥

भीतिवर्ती के फूलों का परकर जान समीर अत्यधिक उन्मुक्तता उत्पन्न करता है और ममूर अस्त्री मधुर रनिमि में पीरकर म्पुन करने लगे है ॥५९०॥

सतडिममद्वलानामसितान्बुधरावलीं समुद्यन्तीम् ।

उत्सहृते सा बोक्षितुमविरलमभिगितो यया कान्त ॥५९१॥

बिजली और यन्त्रिकि के साथ छायात में उठान लेती हुई कान्त-काले बादलों की संतन बदी देगने का उम्गाद कर सकती है जिन्ने पूररूप में प्रिय का आलिङ्गन कर लिया है ॥५९१॥

स्वेच्छागमनसघुस्वं यदुसापाय निघामु फन्यामम् ।

न विचारयति महिला अमीष्टजनसंगातायुत्वा ॥५९२॥

प्रिय जन के मिलन की उन्मुक्तता में मरी महिलाए स्वच्छा में फल पड़ने की लपुता की और गती में यदुत बहुत विन्तो काल माग को परकद नहीं करती ॥५९२॥

'मेपासातु भवति सुरितोऽप्यपयावृत्ति पतः ।

अरदारलेपप्रणयिनि जने धिम्मुनदूरतस्थे ॥'

बाबुरामायण का यह वचनार्थ दर्शनीय है—

'निरहमनिरह वा मानुर्मयनि मयाः ।

सुगिनमसुरितम् वा सर्गमुत्कण्ठयति ।'

त्रियतां भूषणयोमा स्वरयति मे मानसं मनोजमा ।

रंजयति मनो नितरां कल्पनीतनिवेशितं रत्नम् ॥५६३॥

अतः गहनं पदना, मरे मन का कामदेव स्थिति कर रहा है मान में जहाँ
हुआ रत्न मन को म्यादा माता है' ॥५६३॥

धनञ्जलदावृत्तकमुभि प्रदोषसमये प्रदोषगमनाय ।

विदधानया कुमुदिं रागान्धे विमिदमारब्धम् ॥५६४॥

उमे गमनायत देरय उचड़ी मता ग पश्य बधन का प्रयोग करते हुए
कहा—अप कि धन मय दिशाआ में आरो और आप्दुष है एमे प्रदोष काल
में (अपात् गिरन पड़ने बटि गहन आदि दासों म युक्त अथवा बोधा अपात्
राशि का आरम्भ) गमन के लिए पुबुदि पैदा करके धरी प्रेम को अपी, ए मे
क्या आरम्भ किया है ! ॥५६४॥

यधनप्रपंचसारं ज्ञायाद्यित्तमन्यदेशसम्बन्धम् ।

पुख्यमभिगन्तुनामा नवेयमभिसारिका दृष्टा ॥५६५॥

ऐसे पुरुष के प्रति जो कि कुछ बातें बनाता है अरुनी पत्नी में अटका रहना
और दूर स्थान पर रहना है गमन की इच्छा वाली वह एक नय दग की
अभियारिका दृष्ट पड़ी है (अथवा पत्नी अभिचारिका तो होती नहीं !) ॥५६५॥

जलधौतविलकरचनां गलदम्भोविन्दुलुलितकेर्षावाम् ।

तिम्यत्तनुत्सानावृत्तिचण्डानिलसलिसपातकंटकिताम् ॥५६६॥

यस क जल ग सरे माय का निकट उस जायमा पड़ा हुए जल स सरे
काम अन्त-अन्त हा जावेग शरीर मीग जान ग कथना यह पर दिनाई नहीं
दगा, प्रकण दगा आर पानी क सतन म रीनाम्ब होगे ॥५६६॥

अविमाविलसमविषमप्रस्तालदंष्ट्रिं सहायकरसम्नाम् ।

पुरतोऽध्वनं प्रमाणं मुहुमुहु साध्वसनं प्रच्छेत्सीम् ॥५६७॥

ऊँची-नीची उबीन मासूम न पगी, पर अन्त-अन्त मगोंग गाधी के हाथ
का महारा लगी अथ रामा की दूरी का बार-बार हर क मरे गुणो ॥५६७॥

अन्यस्त्रोपु च पत्नी व्यप्रे कृच्छ्रेण पथमपि प्राप्ताम् ।

सन्धासयोग्यपरिजननिषदितामिति विफल्य सह सचिवै ॥५६८॥

बहु कष्ट म सिमी प्रहार पदुन भी नई हा उस समय पर क द्वार पर

एने बाल की बहन भी मरने दोगे तब पर की दुहरी सिखा और पति पर हाँका करके व्यस हो उठते कि ॥१५६८॥

किं प्रेम्णोज्य महिमा किमुतानत्यं भनप्रसोभस्य ।

किं वाञ्छ्यत प्रकृता प्रवेष्टिता वातवर्षेण ॥१५६९॥

यह क्या प्रेम की महिमा है अपरा धन के अतिरिक्त लोभ की सीमा है या किसी दूसरे का म हवा-पानी म पानी म पानी म पानी है ॥१५६९॥

संनिहितकलत्राणामनुचितमिति बाह्यलोकसंबदनात् ।

अन्यस्मिन्नुदवसिते विसर्जितामिष्टमालतीकेन ॥१६००॥

पारसी साम जब आरम में बात करण कि 'किन्हे पाम री है उनफ किं यह (बरबा समागम) अनुचिन ह' तय किम मालती प्रिय ह यह व्यक्ति तुम्हे दुहरे पर में मित्रता छोड़ेगा ॥१६००॥

सोकेन हास्यमानां विभ्राणां बाससी जलकिल्ले ।

रूपमदमुत्सृजन्ती वैतस्याद्विहसिलेन नतवदनाम् ॥१६०१॥

लोग तुम्ह पर हँसे, उठ समय तरे कपड़ भंगे दोगे न अपने रूप का गम छोड़ती रहेगी तथा लज्जा के मारे लोगों की शिकंसे से तेरा मुँह मुँह आवगा ॥१६०१॥

पश्चात्तापगूहातां कष्टकदमप्रिमिप्रपादसलाम् ।

अस्मद्वच स्मरंती द्रक्ष्यंत्यभिसारिकां सुकर्माणि ॥१६०२॥

नू पश्चात्ताप की बात और दुखों क नीने में तरे तलवे छलनी हो बाँदने, तब मरी बात तुम्हे याद आवगी एसी दशा में पनी तुम्ह अभिसारिका की क पुरखान लाग देखेंगे ॥१६०२॥

इति पश्यमभिदधानां मातरमवधीर्यं युष्मदभ्याराम् ।

धौरहृत्तका व्रजन्तीं विश्रावितरक्षिण सती मुमुषु ॥१६०३॥

यह कहती दुर्ग माता को छोड़ कर तुम्हारे पाम धन पनी दुर्ग सगी की मुझे मुँहों में प्लेखों को भगा कर लूट लिया ॥१६०३॥

एषा प्रपञ्चरचना यदि भवति कृया पुन पुरस्तस्य ।

वणिगिदमुपेय वक्ष्यति सहायसंजोदितो भवतीम् ॥१६०४॥

यदि यह रचना उनके काममें आरमय है तो फिर तो तुम्हारे किसी

मरोगी के द्वारा मेजा हुआ पत्रिका चापर तुमसे यह बोलेगा ॥६०४॥

पूर्व दत्तस्योपरि मुक्ताहारस्य केदरास्त्रिण्यत् ।

परिचारिक्या नोता अन्यानपि मृगयते व्ययस्य कृते ॥६०५॥

‘अले जो मुवाहार मरे वाम वपन रखता था उस पर तुम्हारी दासी हील
कर (उस काम के लिये वपन) ले गई और अब तुम्हारे धिय के लिए और
भी वपने खोजती है ॥६०५॥

यत् घनसारकुंकुमचन्दनपूपादिमुक्तकं दत्तम् ।

तत्सम्पुटके लिखितं शृणु पिण्डलिपां करोमि ते पुरतः ॥६०६॥

जा कि हार कुंकुम, चन्दन, पूरा पौगड मीने उधार में दिया है यह सब एगते
में लिख रगा है, गुन घरे मानने दिखाव (पिण्डलिका) करता
हूँ ॥६०६॥

एतावन्तं कालं नावष्टभ्यार्पिता मया त्वमसि ।

रिक्तं भाण्डस्थानं सान्प्रसमिति याचना क्रियते ॥६०७॥

अब तक मीने तुम्हारे इनके घारे में कुछ भी नहीं कहा है किन्तु अभी तो
आना ही मांग लानी है, इगलिण मांग कर रहा हूँ ॥६०७॥

एवंयादिनि तस्मिन्नविधित्सज्जानता क्षणं स्थित्वा ।

प्रियपूज प्रथितया वाचा वाच्यं सवैलक्ष्यम् ॥६०८॥

अब यह इन प्रकार के अब उस कुछ शम के कारण मुझे आँसों से
अपन शर्मिष्ठा आवाज में प्रिय और गिनप पुषण कहना ॥६०८॥

हारस्तथैव तिष्ठतु मध्यस्थस्यापित्तेन मूल्येन ।

शेषं ततो यदमसहियते पूरयिष्यामि ॥६०९॥

‘रिक्त भाण्डस्य न काम तव कगक हार की तुम्हारी रण मा का जो जो
रोग में आये तिन पूरा पुगा हूँगी ॥६०९॥

इयमपि कपप्रयना पूर्वसमा चेतदेदमभिधेयम् ।

आशान्तेऽर्निष्टं पातच्छ्रुदया हि यापितं प्राप ॥६१०॥

यह एगना भी कपप्रयना अभी वपन ही माय तक दत्तकन-कगक हार
पानी गिराई कभी के कपप्रयना हो जन पर प्राप अर्निष्ट को आरुडा करने
लगी है ॥६१०॥

अप्टुशरीरे स्वामिनि विश्रुता भगवती मया गत्वा ।

भवतु निरामयदेही जीवितनायस्तव प्रसादेन ॥६११॥

मैंने दक्षी क मन्दिर में जाकर मनीषी की कि मरे प्राणनय तरी हुआ से स्वस्थ हो जाय ॥६११॥

सम्पन्नवाञ्छितार्था बल्युपहारेण पूजयिष्यामि ।

सामग्रीविरहेण तु न वितोणस्तत्र मे मनसि शंका ॥६१२॥

इच्छा पूरी होन पर पूजा के उपहार छुके चढ़ाऊँगी और सामग्री क अभाव के कारण (देखी के) उपहार नहीं चढ़ाया इस कारण मरे मन में शंका बनी पती ह' ॥६१२॥

अस्मिन्व्यर्थाभूते रिक्तीकृतशीर्णवैरमनो दाहम् ।

उत्पाद्य मन्दगामिनि सर्वविनाशः प्रकाशमुपनेय ॥६१३॥

यह बात भी जब काम न कर सक ता हे मन्दगामिनि, कोई पर उत्पी करके उधमें आय सागवा देना और सब क सामने पैखाना कि वेण का कुछ नष्ट-हो गया ॥६१३॥

स्निग्धत्वमसं युद्धा सहभोजनशयनवसनलिंगेन ।

एभिस्सायद्वारैर्वान्त विरिन्त्यस्त्वया भार्य ॥६१४॥

साय भोजन, साय शयन और साय ही रहने के बिह से यह मालूम करके कि कामुक ब्याप्त म्हाइ करल लगा है नू इन (निर्दिष्ट) उपायों द्वारा ठसका सारा पन घँठ लना ॥६१४॥

वार्षुपिककदर्पनया भोगध्वंसात्सहायवचनैर्वा ।

अवधारितेऽपि निपुणं धरगात्रि विलुप्तसारत्वे ॥६१५॥

हे प्रशस्त धर्मो जानी, कज इन बात सुद-खोरी की मन्त्रना से, टाट-बाट के लाभ हो जाने स अथवा उसके तापियों की सेवा से उसके लम्बरहित होने का पूरा पता लग जाने पर भी ॥६१५॥

१—मन्त्रा के साथ पुत्री का मिथ्याकृत मिथ्याकृत के समक कर्तव्य धरल मार्ग में खोरी द्वारा कर्तव्यों का उपदरप, बलिवा का कज देखा भी कुछ करने के लिए मनीषी दूरहाइ ।

पश्यवधोनिर्धारणमा यत्पामीहितोपभासीति ।

यत्नादमी विधेया गम्यस्य विमोक्षणोपाया ॥६१६॥

(उत्तके निष्कामनार्थ) बड़की बाली का प्रयोग आने आने वाले समय में अरुण आभीष्ट की सिद्धि का वाचक होगा ॥६१६॥

पृथगामननिर्देश प्रत्युत्थानादिकेऽपि शैथिल्यम् ।

सामूयसोपहासा आलापा ममवेधि परिहृसितम् ॥६१७॥

(उत्तक आने पर) अलग घाघन की घोर बैठक के लिए इरादा, प्रत्युत्थान आदि में भी स्थिरता, बायें हँप्ता और उपहास में मरी, मर्ब को बेच दन वाला मन्त्रा ॥६१७॥

तत्प्रतिपक्षरलाघा सदधिकगुणरागकीर्तनावृत्ति ।

यदति प्रिय आभादणघ बहुप्रनापिन्वद्रूपणाख्यातम् ॥६१८॥

उत्तक विरोधी की प्रशंसा उत्तक विरोधी के गुणों में अपना अनुराग के बार-बार कौनन यह हमरा प्रिय बोल यह 'बहुत बर-बर करन वाला यह दान लगाना ॥६१८॥

वधनान्तरुपपाठैस्तत्प्रस्तुतसक्यासमाक्षेप ।

तद्व्यवहारभुगुप्ता सव्यपदेशस्तदतिवत्याग ॥६१९॥

दूरी बातों का बीच में आकर उत्तकी चल रही बातपैत को उड़ देना, उत्तके व्यवहारों से दूरा रहना कर उत्तके लीन से इत्या ॥६१९॥

व्याज्रेम पालहरण स्वापावसरे विवर्तनं उपने ।

निद्रामिमब स्यापनमुद्भेगं संमुखी करणे ॥६२०॥

एक से समय बिना एता लान के समय पर्यग पर मुँह कर कर लाना, नींद का जोर दबड़ करना अरुण सम्मुख करें ता उद्विग्न दाना ॥६२०॥

गुह्यस्पर्शनरोध स्वनापसंस्था रताभियोगेषु ।

गुम्यति यदनविपम्पनमासिगति फटिनागात्रमंकोच ॥६२१॥

गुह्य छग के गह पर गह गुह्य छन करें ता प्रकिय हा करना गुम्यन की बाँट्ट करे ता गुह्य का चीर से कलित करना, आनिपन करें ता कटिन हो जना और लगे को सिद्धी लना ॥६२१॥

असहिष्णुत्व प्रहणनकररुहदशनशक्तिप्रसंगेषु ।
दोषंरते निर्वेद स्वपिहीति रताभियोद्धके भूय ॥६२२॥

प्रहार, नखों आर हत्तों के लक्षों क प्रसंगों में असहिष्णुता, दर तक रति में निष्पत्ता, रति के लिए कार-कार प्रत्या करे ही 'तोस्रो' कर्ना ॥६२२॥

तदशक्तावनुबन्धो वीदग्ध्यविकासने तथा हास ।
रात्रपवसानस्पृहया पुन पुनर्यामिक प्ररत ॥६२३॥

अस्ती निरम्पता आधिर करे ता हस पन्ना रात्र यीत वान की इच्छा में कार-कार पन्ने में प्ररत ॥६२३॥,

निसरण वासगृहाद्गुपसि समुत्पाय तल्पतस्त्वरया ।
सरमसमुदीरयंस्या निशा प्रभाता प्रभातेति ॥६२४॥

रात्र पंत मरु, बीत गर्द, यह अरुत हुए भार शाने पर जल्दी से संज छोड़ कर फाटरी से निकल जाना १ ॥६२४॥

समयेच्छया प्रवृत्त निरपाधि प्रेम भवति रमणीयम् । ४
अन्योन्यसमासक्ता संस्थानमिवाभिजातमणिह्रेम्नो ॥६२५॥

'जो प्रेम (नन्दक और नाबिका) दोनों का आर म छल-कपट छोड़ कर बिना आका है यही मजा देता है' यैम गनन म पेश हुए मरि आर सोने का परस्पर संयोग होने पर ही बना हुआ अर्जुनकार अर्थात् लगना है ॥६२५॥

यस्त्वेकाग्रयराग परिभवदावैत्यदीन्यनाशानाम् ।
स निदानमसन्दिग्धं सोता प्रति दशमुखस्येव ॥६२६॥

आर जो कि एकतरफ प्रेम है वह पत्नी, कर्मकारी, हीनता और नष्ट का निश्चयेह कन स आति कारण है उस सौता के प्रति राग का एकतरफ प्रेम ॥६२६॥

यानि हरन्ति मनांसि स्मितवीभितजल्पिवानि रक्तानाम् ।
तानीव विरक्तानां प्रतिभाति विवर्तनानीव ॥६२७॥

प्रतुराय करने याना मित्रों की जो मुस्कान, बर्तें और मित्र — जो

१—आचार वेमंगल व 'समपमानुष्य' में धन-रहित अशुभ के निष्पत्तयार्थ वरापों की उलझण करत हुए उन्हें 'परयोपचार' कहा है (१-१३) ।

हर स्त्रिया करती है, अनुराग न परो पाली स्त्रियों के वे ही विलसुक्त विन्द्य प्रतीत होती है ॥६२७॥

विदधातु किमपि वधमपि निगृह्यमाणा मृहूर्तमासिष्ये ।

इति यम वच स्त्रीणां तत्रापि रमत एव पशुतुल्या ॥६२८॥

'यह कुछ भी करे, पशुत पर-बद्ध रहेगा तो किसी तरह यम मर के सिधे उठर जाऊँगी' ऐसा जहाँ स्त्रियों का धन हो जाय वहाँ पशु जिस लोग ही स्नेह करते हैं ॥६२८॥

✓ यत्र न मदनविकाराः सद्भावसमपर्णं न गात्राणाम् ।

सस्मिमुद्रितभावे पशुकर्मणि पशव एव रज्यति ॥६२९॥

जो न कामजनित विकार हैं न जंगी का प्रमथ्यंक समपर्ण है उस मास यत्न पशुकर्म में पशु ही राग करते हैं ॥६२९॥

धवधीरण्योपहृतं प्रतिदिवसं हीयमानसद्भावः ।

अभिमानवामनुष्यो योषितमूढमपि त्यजति ॥६३०॥

तिरस्कार का मास प्रतिदिन जिनका प्रम कम पक्का जाता है वही अभिमानी पुरुष अपनी ब्यादता पत्नी की भी छोड़ देता है ॥६३०॥

साक्षिनिकोचं सम्भ्या पाणितर्लं पाणिना समाहृत्य ।

यमरमुपहसति स्त्री ददातु तस्मै मही रन्ध्रम् ॥६३१॥

अग्निं शिनोद कर मगी क दाग का दाग म टाँक कर स्त्री जिन पुरुष की नित्री उड़ाती है उसे पत्नी अन्न में शरण दे ॥६३१॥

पुण्यान्तरगुणरीर्तनमयोद्देशेन चारमनो निन्दाम् ।

शृण्वन्नपि य स्वस्य स्वस्योऽस्त्री फालपाद्यवद्वोऽपि ॥६३२॥

कामन्य जन के बहाने हमरे पुरुष के गुणों का गान और अपनी निन्दा सुना सुना यो भी स्वयं रहता है वह मय के पाठ म बँधा होकर भी हरस है ॥६३२॥

अवगम्याभिप्रायं स्वामिन्या परिजनोऽपि यं पुरुषम् ।

अपहसति तिरस्करय सस्य न मृत्यं यराट्टिया पंथ ॥६३३॥

कामजिन का अवगम्य शक्य कर नीर-बन्धर भी जिन तिरस्कार के योग्य पुरुष की हँसी उड़ान है उसकी बीमत पँथ कीही भी नहीं है ॥६३३॥

सत्त्वात्त्वसमूह्यव्यवहृत्यज्योत्तरं न जानाति ।

स्थानं भवति स पशुपतिरपसंशयमर्धघन्त्रसामस्य ॥६३४॥

अ पशुपतिर अरुण के रूपकारी में मेह नगी जानता वह पशुपति (वृषभ, श्लेघ वृषभ से शिर) निःशब्देह अर्धघन्त्र (गणपति, पशु में चन्द्रार्ध) का नाम का पात्र है ॥६३४॥

क्रमकृशितगौरवांशो रिक्ततया साधवं परापतित ।

अप्राप्तपरिच्छेदं प्लवतंश्री युवतिसरिति कुमनुष्य ॥६३५॥

धीरे धीरे शिखर गौरव (भागीन) जाटा रहता है और काली हो जान से जिसने साधन (इन्द्रायन) ध्या जाता है, ऐसा साधन न पाया हुआ निन्दनीय पुरुष वरुणी रुची नदी में तीरता रहता है ॥६३५॥

यत्नेन कपटघटिखान् शृंगारोद्दीपार्यमनुभावान् ।

रतिशिल्यजीविकाभिर्मुखास्तत्वेन गृह्णन्ति ॥६३६॥

रतिशिला स जीवन निवाह करन वाली बेरसाओ द्वारा क्लृप्तक शृंगार का उद्दीपन करन के सिद्ध छल में प्रशिक्षित बराह विद्युप आदि अनुभाषी की मूढ़ बुद्धि के पुरुष क्लृप्त ममकले लगते हैं ॥६३६॥

या धनहार्या नार्यो निभर्यादा स्वकार्यतात्पर्या ।

सह तामिरपोहन्ते यत्त मन्दा संगतमजर्यम् ॥६३७॥

जो शिरसा धन चोरण कर मिलती है और मयासाओ में रहित एवं अनन्य मतलब साध होने मर की होती है उनके साथ भी मन्द लोग कभी पुरानी न पढ़ने वाला मैत्री साधते हैं ॥६३७॥

अपरोक्षधनो गम्य श्रीमानपि मान्ययेति निर्दिष्टम् ।

कन्दर्पशास्त्रकारैः कुत मया सुप्तविभवस्य ॥६३८॥

जिह आदमी की धन हीनता जाहिर है, कामशास्त्र के रचयिताओ में उमे गमन के योग्य कहा है और जो कि धनी होता हुआ भी दन वाला नहीं है उम गमन पर योग्य नहीं बताया है, फिर शिखर काष्ठ पूंजी हो नहीं उभरने बल ही क्या ॥६३८॥

ध्यासमुनिनापि गीतं द्वाबेन नराधमी मनो द्रहृत् ॥ ४

योऽज्ञाहृष कामयते बुध्यति परधाममुत्वपुस्तोर्जि ॥६३९॥

ध्यासमुनि के म भी संसार में हो प्रकार क अथम पुरुष जाय है एक वह

जो दमिद्र दाहर भी रूपा करता है, दूसरा यह जो अक्षमय होकर भी बोल करता है ॥६४६॥

क्षीणद्रव्ये देहिनि दारा अपि नादरेण वर्तन्ते ।

किमुसादानैकरसा शरीरपणवृत्तयो दास्य ॥६४०॥

बिचक पास द्रव्य नही उस पुरुष में पत्नी भी आकर नहीं रखती, फिर जो अक्षम लेने में ही रक्तक और शरीर का विकल्प क्रिया करती है उन दासियों की बात क्या है ॥६४०॥

अविदितहेयादेयास्तिर्यचोऽपि स्यति पीतरसम् ।

कुसुम किमु कार्यविवो वेरया नरमात्सर्वस्वम् ॥६४१॥

जो पत्नी त्वाग्य और माय की बात नहीं जानते वे भी तुझे रंग वाले फूल का झोंक दत्त है फिर अक्षम की पार चरपाएँ छुट्टे भन फाल आदमी को छो छोड़ देती है ही ॥६४१॥

उत्पादयति सदानो रागं रागारमको यथान्मधिकम् ।

निर्देहं निर्दानोऽपि सदा नो निःसन्दहं तथैव मनुजन्मा ॥६४२॥

जिन प्रकार दत्त बासा प्रेमी निरिक्त्व रूप में प्रेम उत्पन्न करता है उक्त प्रकार निगन्देह नहीं देने वाला आदमी मनु प्रेम उत्पन्न नहीं कर पाता ॥६४२॥

यदतीतं तदतीतं भाविनि लाभेऽपि नातिबहुमान ।

सत्त्वानहस्तनिपतितमनियतपुसा मुदे वित्तम् ॥६४३॥

जो क्या गया वह ही क्या गया, आप इतने कल्ल लाभ में भी कोई आकर नहीं, जिनके पुरुष निक्त्व नहीं अभी बेरपाएँ का बरी भन पुरुष परता है जो अक्षम रूप में दत्त जात ॥६४३॥

पीडितमथु मधुजालं सुन्द्रीभूतं च ममयप्रस्तम् ।

मुसन्ति मदनरोषं सुद्वारा प्रपटरामाश्च ॥६४४॥

मधुमयिणी जिन प्रकार तिल छुन से मधु निर्यात जाता गया है और जो बह्निदग्ध माष अग्निदग्ध रह गया है जो अक्षमय कर देती है उगी प्रकार अक्षमय माष अक्षमय माषों का पत्नीता कर देती है ॥६४४॥

एकं क्रीणात्यद्य प्राप्तमविता तथापरं क्रेता ।

अन्यदसौ क्षणमेकं न विक्रम्य शारवतोऽस्ति वेरयानाम् ॥६४५॥

एक आत्मी प्राप्त करीदता है तो एक सरेरे वृत्त आदमी गरीशर होगा, उनका एक क्षण भी दूसरे के अधीन होता है, वेरयाओं का किन्तु हमेशा-हमेशा के लिए नहीं हो जाता ॥६४५॥

सन्दर्शितपरमार्थं भ्रूक्षेपकटाक्षदृष्टिहसितादि ।

शृम्भति ये सकर्णास्तत्कृतमन्यत्र संक्रान्तम् ॥६४६॥

दूसरे का मुँह के प्रति संभ्रस्त, परम अर्थ को स्पष्ट कर देने वाले प्रभिलास, कट्यादृष्टि और हँसी को कानबाजे मुन ही लेते हैं अर्थात् बुद्धि मान लोग आराध को समझ ही लेते हैं ॥६४६॥

यदि नाम निराकरणे न समर्थाच्चिद्धशकार्यबन्धेऽपि ।

काचिन्महानुभावा बोद्धव्यं तदपि चेतनावद्भिः ॥६४७॥

यदि कोई महातुभावा बेरया लेन-देन के सम्बन्ध हूट जान पर भी पुरख का निराकरण करने में नहीं समर्थ होंगे तो अकलमन्दों को कुछ समझ लेना चाहिए ॥६४७॥

तेनार्थेनोपकृतं तथापि तस्य स्वदेहदानेन ।

तच्चातीतं सम्प्रति निरर्थकं शुष्कभृंगारं ॥६४८॥

पुरख न जन से उपकार किया था उसने भी अपना शरीर अर्पित करके उसका उपकार किया, अब हा वह उपकार अतीत हो गया फिर क्या श्रद्धार किन्तु काम का ? ॥६४८॥

अथधीरणा रसायनमवमानो भवति यस्य परितुष्ट्यै ।

योम्योऽसौ पुरखखरं खरखरनिर्भस्मितोत्तिकुलटानाम् ॥६४९॥

हा बेरया के निरन्धर को रसायन मानता है और उनके हाथ आमान से प्लुत्त हाता है वह गन्हा आदमी बड़-भ बड़े दुनार के, सगुट-वहार के योग्य है ॥६४९॥

दीपज्वालात्तस्मिन् प्रजसत् एतु निवृत्तिं तयोस्त्वियया भेदः ।

प्रथमा स्नेहेन विना तथापरं स्नेहयोगेन ॥६५०॥

दीप की ज्वाला और परया होना बुझ जाती है किन्तु दोनों में इतना भेद

हे कि पहली स्त्र (सिंह) के बिना बुझ जाती है और दूसरी स्त्र (उग) के योग से बुझ जाती है ॥६५०॥

धमं कामनममिनयगुणवसिस्वस्य मदनमोगवत् ।

अर्थोऽर्षवतोऽभिगमात्काम समरत्तिनरोपभोगेन ॥६५१॥

(वशवार्य) कामागुर हरिद्र प्राप्ती की रतिदान परके 'धम' साम करती है, पनगान् व्यक्ति के साथ सम करके 'अर्थ' साम करती है और 'समल' १ व्यक्ति के साथ उपभोग करके तीसरे पुत्राय 'काम' का लाभ करती है ॥६५१॥

यस्तु न धर्मप्राप्तये नार्थाय न कामसाधनोपाय ।

स पुमान्स्त्वनरितनरीः पर्यनुयुक्तः किमाचष्टे ॥६५२॥

जो पुत्र न धर्म की प्राप्ति के लिए न धर्म के लिए और न काम के लिए उतरोगी है वह आचारवात् लोगों से पूछे जाने पर क्या करेगा ? ॥६५२॥

कामोद्वेगगृहीतं पूर्वैस्वहृत्पमानशृंगारम् ।

दारिद्र्यघहृतं यौवनमनुयानां केवलं विपदे ॥६५३॥

ना समझ लोगों का यौवन, जो स्वकर्मिता उद्वेग से धम है धर्मों द्वारा बिसक शृंगार की गिहरी उद्गार जाती है और गरीबी से पुरी तरह विगना द, धम विपदि का कारण है ॥६५३॥

व्यपगतकोपे रागिणि याति सयं पानमात्रलामकृते ।

दुष्टा मधुकरिकाजे न तु गणिता चितितस्वार्था ॥६५४॥

उठ काम में गिनिना कोर (कृष्ण) गमाहो पुत्रा है, अगत् निवदिन हा बुझा है तप्य जो उगयुक्त है, काम मपुत्रान के लिए दुर्भार दुष्टा मधुकरि हीन हो जाती है, किन्तु स्वाय साधन में म्यानुन विश वाशी गदिना देका मरी करती ॥६५४॥

यासां पापविद्या सपटादानिरीदणेष्वपि वैरयानाम् ।

दर्शनमात्रदानितैर्वैभ्यति तां पर्यं पुर्यै ॥६५५॥

जिन वैरपात्रों का बरधमरी हरि से देगने में भी बुझ न बुझ प्रयोगन

१—धमप्रमाण गुणवाणी स्त्री-पुरुष का रतिप्रयोग । पुरुष में काचित्त्व होने पर 'उपवास' एवं ही में काचित्त्व होने पर 'भीरत' होता है ।

होता है व उन पुरुषों में जो फल देने में मात्र से विचलित हो जाते हैं किम
लगी या सज्जी है । ॥१५४॥

कलेशाय दुमगानां नाना स्थिति गात्रभंगविन्यास ।

गंगिकाभिनयवपुत्रयमाकृष्टयै स्वापतेयपुष्टा नाम् ॥६५६॥

मान सुद्धि, गात्र-भङ्ग और विन्यास व गान्धिकायां के चार अभिनय दृष्टिों
का वृष्ट रूप है और वनराजों का अरुणी द्वार आकृष्ट रूप है ॥६५६॥

किं घक्षयति भौमोऽपि ज्वलनं खालु तादृशं कुलांगारम् ।

यो दह्यतेऽविरामं विरक्तदासोतिरस्कारिः ॥६५७॥

जो आदमी रागग्रस्त भ्रमण के कारण उद्विग्न होकर म नही देखे जाता,
वहा किम कुलाङ्गार का पक्षिपि अग्नि ज्वाला पक्षी ! ॥६५७॥

गृहमेतदीरवराणां कांतारं दुष्प्रवेशमयेषाम् ।

फृक्कृतमिदमुदमुजया न मालती कामसुत्रदानपरा ॥६५८॥

पर पर दिन कालों के लिए है, दूसरों के लिए अरुण की मति दुष्प्रवेश
ह सुन्दर मुत्राङ्गो काली मालती में कुलकार कर कह रहा है कि मालती
काम (कामध) का उदासन नहीं बनती ! ॥६५८॥

इति शोवितनिजचेटीनिगदितकट्टकाक्षरान्वकृतलक्ष्या ।

धाकणयतो वाचो देवोपहृतस्य तस्य मर्मरुजं ॥६५९॥

प्रति तुर्ह दूरी लक्ष्य का विचार न करके इस प्रकार कड़ अक्षर करेगी
जबकि व मिर्म मर्म बाला माग्य का मर्म मुनता रहना ॥६५९॥

एवमभिधेयमानो भुष्यति यदि नो पगुर्नराकारः ।

तन्दिं सुन्दरि वाच्यं प्रधितवजसा स्वया कामो ॥६६०॥

इत प्रकार बड़े जगत् में यदि वं प्रथमी के अक्षर बाला वृत्त नहीं

१—'इमं ताव जगत् में कानुके में वरपामाता की रूप प्रसार वृत्त-दि है—
धैर विषय, इस लक्षण भी अक्षर नहीं रहे कि एक अक्षर भी अक्षरों की
हैं । फिर लक्ष्य के अक्षर पर अक्षर क्या करेगा । वृत्त की मात्रा नहीं वरपाम
का दिने को मीत होती है । वृत्त अक्षर पर अक्षर नहीं मुनी कि रंही विषय
को । इस लक्षण सुख्यत करें तो गायें क्या ? को अक्षर आकृष्ट, अक्षरों पर है मना
नहीं करती । अक्षर अक्षरों अक्षरों अक्षरों का मर्म वरपाम होता वरपाम ।

तपस्ते तो इ मुन्दरि, नू विनीत पणन होय उर कामी मे सह करना ॥६६०॥

प्रोयत एव तयोपरि हृदयं मे किन्तु गुरुस्वनाधीना ।

मातृवधोऽतिक्रमणं न समर्था संविधातुमहम् ॥६६१॥

तुम पर मेरा दिल हुआया ही दे किन्तु मैं नहीं करती हूँ माता की बात का उल्लंघन करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं ॥६६१॥

अर्हसि तावदतस्त्वं गंतुमित्तं कतिपयान्यपि दिनानि ।

पुनरपि भवतैव समं मोक्षार्थ्यं जीवसोकसुखम् ॥६६२॥

इतमिदं तुम यहाँ से कुछ ही दिनों के लिए चले जाओ, फिर ठा तुम्हारे ही साथ मुझियों के मनो संगे ॥६६२॥

निर्वासितेभ्य तस्मिन्प्य कामी पूर्वमुज्जितो भुक्तवा ।

तस्य प्राप्तविभूतेषु क्तिरित्यं मित्रसंघाने ॥६६३॥

उसके निकाला पाहर लिए जाने पर जो कामी पहले भ्रम करके छोड़ दिया गया था उगफ राम यन इपहा हो जाने पर उम लूटे हुए के साथ मिलान करने में यह मुक्ति है ॥६६३॥

उपवनलीलाविहरणहावोग्न्यसर्मजुनस्य सह तेन ।

यणनमितिपुस्तस्य स्मरजविवाराश्च वीक्षिते तस्मिन् ॥६६४॥

जब वह मिले तो पहले जो ठगके साथ हाव-गुणक मजोर ठपान छोका (पुष्पावयव आदि) और विचार (बभर्कन आदि) आदि लिए वे उन काली पटनाओं का (गले मुनावे हुए) पणन करना और कामजना विचार प्रकट करना ॥६६४॥

१—वामगृह ई—

‘वर्जमाने निर्भीदिताभमुस्त्वन्वी विर्रांसेन सह सन्दभ्यात्’

अर्थात् जब सीहरा कामुक का मारा कम विचोच लिया जाय तब उसे छोड़ती हुई केसा पुन पहले के एरे हुए कामुक के साथ मर्त्य बन । इसकी नहीं मित्र सम्पाद' बना है । अब इसमें अनुपार बुद्धी विहराता माकली को 'मित्रगणपत की मुक्ति' समझना समझना करती है ।

इदमुपवनमतिघन्यं निर्भरमासिगितं सुरमिसदम्या ।

मत्सकन्भापितपाणिर्वन्नाम स यत्र जीविताधीश ॥६६५॥

शैरभस्वयति से पूर्य आतिरहित यह उपवन अतिभय है जहाँ ये
मासेरुवर मेरे गल्ल में हाथ डाल कर मृमा करता था ॥६६५॥

सख्य इतो भ्रमरकुलनासितया प्रियतमो मया सहसा ।

वक्त्रेभवत्पयोधरमुपगुडोऽधोरसीत्कारम् ॥६६६॥

सखियो, यहाँ मीरों से डरी हुई मैंने पियतम को पीरे पीरे सीन्कार करते
हुए इस प्रकार सहसा आसिद्धन में कब कर बोध लिया कि मेरे स्तन दब कर
पच हा गए ॥६६६॥

रणदिन्दिन्दिरवृन्दे कूजत्कसफष्ठवाररमणीये ।

अनातिमुक्तकगृहे मरुदीरणमिधूतकुसुमसंघट्टने ॥६६७॥

बासन्ती लता के इत कुछ में, जहाँ मीरे गुंवार कल रहत हैं, कोपल
की कूक से रमणीयता बनी रहती है और जो कुछ हवा से झिलमल हुए फूलों
से सजादित है ॥६६७॥

मयि जाताविकरागो बसवति मदने सह्यायसामप्रभा ।

कान्त पत्सयस्यने नो सुप्तिमगाद्विविक्तकार्येषु ॥६६८॥

मुझमें उल्लस राग बाता प्रिय लहाफक सामग्री के कारण यद्न के ओर
मारण पर फलस्य के वन सत्र पर पडाठ में होने वाले कार्यों में मृत नहीं
हुआ ॥६६८॥

प्रेखोलनस्य युक्त्या विध्यन्पारवंद्वयं नक्षिभूर्तं ।

अत्रे मां मदनमयी व्रततिप्रेखामिमां समारुद्धाम ॥६६९॥

जब मैं लता के बल भूज पर बैठी थी तब उल्लस भयंकर मारण के
बहाने मेरे दन्त पार्यों का नगरी से पारोन्त हुए मेरे काम की जगा
शला ॥६६९॥

स्पृहणीपोऽयमशोष स्पृष्टो यद्वस्तभेन हस्तेन ।

मस्मदधर्तसकार्थं नूतनदलपल्लवान्विधारयता ॥६७०॥

पद अशोष का स्पृष्ट स्पर्शीय है त्रिग दिन न मेरे बानों के अपवर्तक

समये तो हे सुन्दरि, तू विनीत बचन दोष्य उस कायी से यह करना ॥६६०॥

प्रीयत एव तवोपरि हृदयं मे किन्तु गुरुजनाधीना ।

मातृवधोऽतित्रमणं न समर्था संविधातुमहम् ॥६६१॥

तुम पर मेरा दिल हृमाया ही है किन्तु मैं वही क करीब हूँ, माता की पाल का उल्लास करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं ॥६६१॥

मार्हेसि तावदतस्त्वं गंतुमित्तं कतिपयान्यपि दिनानि ।

पुनरपि भवतैव समं भोक्तव्यं जीवन्नोकमुक्षम ॥६६२॥

इसलिये तुम यहाँ से कुछ ही दिनों के लिए चले जाओ, फिर ता तुम्हारे ही साथ मुनिर्वा के मनो लगे ॥६६२॥

निर्वासितेषु तस्मिन्व्यं कामी पूर्वमुज्जिभृतो भुत्तवा ।

तस्य प्राप्तविभूतेषु किरियं भिन्नसन्धाने ॥६६३॥

उसके निष्कास पाहर किए जाने पर जो कामी पहले माग करके छोड़ दिया गया था उसके पाग धन एकत्र हो जाने पर उठ छूटे हुए के साथ मिश्राप करने में यह पुक्ति है १ ॥६६३॥

उपवनलीलाविहरणद्वायोज्ज्वलमंजुलस्य सह तेन ।

वणनमितिवृत्तस्य स्मरजविकाराश्च वीक्षिते तस्मिन् ॥६६४॥

जब यह मिले तो पहले जो उसके साथ हाव-भाव मनोहर उपवन झोला (पुष्पापत्रय आदि) और विहार (जलकेलि आदि) आदि किए थे उन छोटी पटनाओं का (उसे सुनाते हुए) बचन करना और कामज्वलित विकार प्रकट करना ॥६६४॥

१—कामगूत्र ६—

‘पर्वमानं निष्पीडितार्थमुत्सृजन्तो विशीलैश्च सह सन्दध्यात्’

अर्थात् जब मीठरा कामुक का माता जब निष्पीडितार्थ जाय तब उसे दोषही हुई करवा पुनः पहले के एते हुए कामुक के साथ स्थिति कर । हमारी यहाँ मित्र सम्पादक है । जब हमके अनुभार हुईगी विकाराता सासती को ‘भिन्नसन्धाने’ की पुनिर्वा सम्बन्धा धारण बरती है ।

इदमुपवनमस्तिघन्यं निर्भरमालिगितं सुरभिलक्ष्म्या ।

मत्सकन्धापितपाणिर्ब्राम स यत्र जीविताधीश ॥६६५॥

शौरभक्तमति से पूरा आभिहित यह टपवन अतिभय है बरि मर
माशरवर मेर गले में हाथ डाल कर पूसा करता था ॥६६५॥

सख्य इतो भ्रमरकुलवासितया प्रियतमो मया सहसा ।

वक्रोभवत्पयोधरमुपगुहोऽधोरसीत्कारम् ॥६६६॥

प्रभिया, महा मीते से बड़ी हुए मने प्रियतम का धीरे धीरे सीन्कार करत
हुए इस प्रकार सहसा आसिद्धन में कस कर बाप शिवा कि मर स्वय दब कर
नच हो गए ॥६६६॥

रणादिन्विन्दिरवृन्दे पूजत्फलकण्ठवाररमणीये ।

भ्रान्तिमुक्तकगूहे मरुदोरणविधूतकुसुमसंश्लन्ने ॥६६७॥

बातन्ती लता के इत कुत्र म, बड़ा मरि गुंवार करत रहत है, शोयल
को कूक से रमणीयता बनी रहती है और जो कुछ हवा स हिलत हुए फूलों
से सजाति है ॥६६७॥

मयि आताधिकरागो बलवति मदन सह्यायसामप्रथा ।

कान्त पन्तबधमने नो सुप्तिमगाद्रिविलकार्येषु ॥६६८॥

मुझमे उन्मत्त राग बाला प्रिय सदाबक कामग्री के कारण मदन के ओर
मारण पर फलत क पन सेठ पर पकान्त में होन वाले कार्यों में मृत नहीं
हुआ ॥६६८॥

प्रेक्षालनस्य मुक्तया विध्यन्यारवद्वयं नखीभूतं ।

चक्रे मां मदनमया व्रततिप्रेक्षामिमां समास्त्राम ॥६६९॥

जय में लता क कम मूले पर बड़ी धी ठव ठग भूत मर्षय मारने के
बदान पर दानों पारगों का नमो स प्ररान्त हुए मरे बाप की ब्रगा
शक्त ॥६६९॥

सूहृणीयोऽयमशोकं स्पृष्टो यद्वस्त्रभेन हस्तेन ।

धस्मदबतंसवार्थं नूतनदलपल्लवान्विचारयता ॥६७०॥

पद अशोक का रूप गुरुदीव है विन विन म मर जानों के अनंतक

पनाने के लिए नव पत्राओं का तोड़त हुए सख किया था ॥१७०॥

अस्मिन्सहकारतले तस्योरसंगे सलीलामासीना ।

अभ्रूणत्वमहमिति वाच पर्यतो विलसितानि तस्मानाम ॥६७१॥

इस श्राप के पैड़ के तले उखरी गोद में पड़ी, तब्यों की विलास सीला देवती हुई मैंने यह बतलें सुनी ॥१७१॥

उत्थापय मानरस दयितं चरणाग्रनिपतितं सूर्णम् ।

अस्याकुर्वुं न्रुत्पति सुदृढमपि प्रेमवन्धनं मूढे ॥६७२॥

(मानिनी नायिका को सली का उपदेश) 'अरी मानिनी, पैरों में गिरे प्रिय को छोड़ उठा, मूढ़े, सुदृढ़ प्रेम का बन्धन भी ब्यारा सीधने पर टूट जाता है' ॥१७२॥

तिष्ठन्नपि यातसमं किं तेन निवारितेन सखि पशुना ।

यामीति निष्प्रकम्पा विनिःसृता यस्य साधरे घाणी ॥६७३॥

(नायक की अरविक्ता से बन्ध नायिका की सली के प्रति ठकि) 'अलि, उहए दुआ भी तो यह बसे गए ही के समान है उस पशु को रीतने से क्या ? जिसके मुख से आता है' यह बाणी बिना बकाबट के अंधर पर आ गई ॥१७३॥

आयुःसारं मौवनमृतुसारः कुसुमसायकन्ययस्य ।

सुन्दरि धीवितसारो रतिभोगरसामृतस्वादः ॥६७४॥

(आतपीतना मुग्धा अथवा मानिनी नायिका के प्रति किसी इच्छि व्यक्ति की ठकि) 'सुन्दरि आयु का सार मौवन है मृतुओं का सार कामदेव का सला बसन्ध है और धीवन का सार रतिभुग के रतामृत का स्वाद लेना है, ॥१७४॥

रम्यं कुसुमस्तवर्षं कुद मे प्रिय कैकिरातमवर्षसम् ।

तिष्ठतु वा विमनेन प्रत्यग्रमशोकविस्तसयं घाघ ॥६७५॥

(स्वापीनरतिश्च प्रगल्भा नायिका प्रदयी स आरर के साथ बनदूस बनाने के लिए निर्दोष करती है) 'प्रिय, मुन्तर अशोक के फूलों के गुच्छे को मेरे कान का अर्पण पना ही अथवा रदने दो इतसे क्या ? नया मुन्तर अशोक का किछप ही लगा दो ॥१७५॥

अस्तामास्तामेतत्प्रापय मां सिद्धुवारमभिरामम् ।

नहि नहि राजति सुतरां घृतद्रुममञ्जरी कर्णे ॥६७६॥

इस भी जाने दो, मुझे सिद्धुवार दो । नही नही, कान में घाम की और ही बहुत अच्छी पकती है' ॥६७६॥

विक्तास्थिमकान्तं विककान्तं यौवनेन रहितं च ।

विस्तद्वयमपि मन्मथसामर्थ्यविकासितं विना मुरतम् ॥६७७॥

(विस्तद्वयमपि को मुरत के लिए परमावित्री क्विती नायिका की आदेश-शक्ति) उस बहानी को बिछू है जो प्रिय के बिना गुजरती हो और उस प्रिय को बिछू है जिसमें बहानी मरी है और उन दोनों को भी बिछू है जो कामशास्त्र के प्रयोग वाले मुरत में रहित हैं ॥६७७॥

अनितोऽप्यपराधशतैवमि तस्मिंश्चिरप्रख्योऽपि ।

अवगतमधुना सख्या न वसन्तमसीत्य वर्तते मान ॥६७८॥

(गुरुमानवानी 'नायिका के बहुत दिनों के मान की सहाय मंग देता कर आनन्द करके लगी उससे बहती है) 'उस प्रतिकूल प्रिय के विषय में सीझों आराधनों के कारण उत्तम और बहुत दिनों से बढ़ा हुआ भी लगी का मान अभी पट्टेचे हुए पशुस्त का पार नहीं कर सका ' ॥६७८॥

वर्षस्तस्य हि सारं कान्तसव प्रथममेतकस्मानम् ।

सचकितमागच्छन्ती सौत्कसिकैर्यत्र हरयते रमणी ॥६७९॥

(लगी के द्वारा प्रिय के समापन के लिए नायिका की प्रणामन) 'बह नमन का लक्षमान भी वर्षों का मार है अब उच्छरताओं में मरी रमणी प्रथम मिलन के लक्षण-ग्रहण पर आनन्द-भाव से छाती हुई दिगार देती है ॥६७९॥

किं निर्मितोऽसि धात्रा नबोऽपर किमु वसन्तगुण एष ।

कुमुमघरपूजतुण विमुतानवन्त्य एष फंदर्प ॥६८०॥

(प्रिय के प्रति न-दारा का आनन्द बनन) एरा गुण विपत्ता का घृण निमाय हो लक्षणा बना एक क्षण मूर्ति बनने हा, प्रथम का कुमुम क शायी से मरे तरकन की शय्या करम पता दूसरा कामदेव ही हो' ॥६८०॥

नो पर्यसि यदि ककुभ प्रचुरोऽज्वलकुसुमसुरभिरमणीय ।
परमृतकूननमिभ न शृणोपि यदि द्विरेफर्मकारम् ॥६८१॥

गन्धं यदि च न समसे वासितविग्ध्योम सुमनसां हृद्यम् ।
अनुभवसि यदि स्पर्शं नो शीतसदाकिणात्यपवनस्य ॥६८२॥
रसनेन्द्रियैकशेष परसंचायद्विनेन परिभूत ।
नाहंसि तदिति त्यक्तो निजाश्रमं गन्तुमन्यतो निरख ॥६८३॥

(किन्ती नायिका के प्रणयि को कोई दूसरी नायिका मिठाई का निम्नका देकर अपहरण करने की चेष्टा वाली थी कि ठकी समय नायिका ने प्रणयि को उपालम्भ दिया) बहुत से किञ्चित् फूलों की सुरभि से रमणीय दिशाओं को यदि नहीं देखने ही कोयल की हूँ से मिले मीरे की मन्दार को यदि नहीं सुनते हो दिशाओं और आकाश की कला देने वाली फूलों की मनोहर गन्ध यदि नहीं सुंने हो शीतल बक्षिण पवन के स्पर्श का यदि अनुभव नहीं करते हो तो किञ्चि एक रसनेन्द्रिय ही शेष रह गई है ऐसे तुम अन्य नारो के साथ भूलने के कारण लोगों द्वारा परिभव प्राप्त कर चुके हो तब भी करना आभव छोड़ कर कहीं दूसरी जगह विसकुल नहीं जा सकते हो ॥६८१-६८३॥

अस्मिन्सरसि सलीलं करयंत्रवित्तिर्यदंबुधाराभिः ।

दयितेन ताडिताहं मयाप्यसावाहृतो मृणालिकया ॥६८४॥

इस सरोवर में प्रिय ने हाथ की निबकारी स निरलती हुए अम्भाराओं से सीका पूवक मुझे ताड़न किया था और तब मैं भी उस मृणाल से आहत किया ॥६८४॥

पुनरन्तर्जलममनो मामुपगम्याविभाविता सहसा ।

उच्चिक्षेप सहासं हासितसन्निहितपरिवारः ॥६८५॥

जि पद पानी के मीनर पैठ गया और मरे पाठ अनजान में आकर मुझे चम्पा हँकते हुए उग्र उड़ान दिया इस दृश्य की देन कर पान की क्षिपण हँस गयी ॥६८५॥

संसक्ताद्रविरणं जघनं न परयतस्तदा तस्य ।

प्रथमाकाशाकूर्तं भेजे सम्भोगशृंगारः ॥६८६॥

जब उसने मेरे जघन को जिसमें मीमांसा रूपका विषय था देखा
तब उस देवदर उसन (मेरी) परली इच्छा के आशय ने सम्भोग-शृंगार का
आनन्द पाया ॥६८६॥

कामप्रदेशवेद्यपारस्यितिविशेषपटनामि ।

चिरस्थोऽपि हि यूना नवत्वमुपनीयते राग ॥६८७॥

समय म्यान यप व्यागार और भित्ति-विशेष की पटनाओं के कारण
पुरा का बहुत दिनों का भी राग नया ही जाता है ॥६८७॥

सादरमर्पयतोऽङ्गं गोत्रस्तलनापराधिनस्तस्य ।

सख्यं स्मरामि सहसा विलसता हित्यहसितस्य ॥६८८॥

कनिका, मुझ वार आता है जब कि वह मुझे आनन्द-रूपक कमल देने
लगा उठी समय वह बूखी का नाम क देने का आशय कर बैठा, तब तबसा
वह छात्रा के कारण बहुत श्लेष की होती है उतन लगा ॥६८८॥

प्रत्यग्रनक्षत्रणितस्तनान्तरे क्षिपति लोचने स्पृहया ।

प्रेयसि ह्रीताब्ध्वादनमकरवमहमञ्जिनीपत्रम् ॥६८९॥

जब उस प्रियतम ने नक्षत्रों के नये छतों से पापन मेरे स्तन पर लक्ष्यार्थ
छाँसे वाली तब मैं कनकिनी के पत्र में उमें ठक लिया ॥६८९॥

क्षिप्त्वातक्षितमम्भोगमितनलिनीपलाशपटुमारात् ।

प्राहृतया यद्विहृतं स्वस्पर्धिया तप्त शक्यते कसुम् ॥६९०॥

पराश का मापुट (पेना) बना कर उतमें जल भर कर उसने जब तबसा
मेरे आनन्द पर दूर ही से फेंका तब मैं का आनन्द कर उठी उमें काइ कापारण्य
आनन्द की स्त्री नहीं कर सकती थी ॥६९०॥

सुरिसप्तो हावविधिमदनालसगात्रञ्जुम्नितं स्वलितम् ।

गूढस्यानप्रकटनमंगुलिविस्फोटनं स्मितं मुनगम् ॥६९१॥

अनन्तर मुझ पर आर म हास्य का प्रयोग, मदनकलित आनन्द का

कारण सुन्दर बंमार्ग, गोपनीय अङ्गी का पकटन, वैगसियों का चटकाना,
मुमग मुस्कान ॥१६१॥

नौवीं अर्धविमोक्षो मुहुर्मुहु केशपाशविरलेप ।

स्वाधरदशनग्रहणं बालकपरिचुम्बनं रत्नोत्सुकता ॥१६२॥

नीकी की गाँठ खोलना, बार-बार बंधे केशपाश का शिथिल करना,
अपने अंग को दाँवों से पकड़ना, कंधे को घूम लेना, और मुख की
उत्सुकता ॥१६२॥

साकांक्षितं क्षिपंत्या सरनायतनोचनं मूढः कान्ते ।

उद्दिश्य उद्वयस्यकमिति शोक्तप्रस्त वस्तुगिरः ॥१६३॥

प्रिय के प्रति बार बार साकांक्षापूर्वक वग से अपनी तरफ और आस
आस करती हुई उछके छापी को उधरेम करने इस प्रकार शोकमती बन्धी
बोली ॥१६३॥

एकीभावं गतयोर्जसपयसोर्मिषचेतसोश्चैव ।

अतिरेककृन्ती शक्तिर्हंसानां दुर्जनानां च ॥१६४॥

'पानी और दूध तथा दो मिश्रों के छुटप जब मिल कर एक हो जाते हैं
तब उन्हें अलग-अलग करने की शक्ति / हंसों की तथा दुर्जनों की होती
है ॥१६४॥

येन सदा मामूषे परिजनमुत्सार्य विधृतनटमन्युः ।

दर्शितहितस्वरूपं परपीडाकरणपण्डितं प्रसक्तं ॥१६५॥

(जब तुमसे मेरा निश्चय हुआ) उस समय दूसरे का पीठित करने में
पंडित (सिद्ध ब्रह्म) परिजन की पाश से हटा कर अज्ञान बनावटी शोक प्रकट
करके मेरे हिनकारी का रूप धारण कर मुझसे बोला ॥१६५॥

अविदितगुणान्तराणां यो दोषं प्रान्तदेशवासानाम् ।

स्वाधानुभुङ्क्त्वा अपि यद्विदधति बहुमति नीले ॥१६६॥

जिन्हें दूसरे गुणों का परिचय प्राप्त नहीं आता वही देशान्तर में रहा करता
है उनका कोई दोष नहीं, क्योंकि केन्द्र के दूर अस्वीर में रहने वाले लोग
'नीले' का ही अज्ञान धारण करते हैं ॥१६६॥

कव महोत्तररम्भा त्वं यमकृतचन्द्रप्रभा स्वदेहहृत्वा ।

चित्रलता कव घराकी नीचैरुपधेक्षितारोहा ॥६६७॥

अपने शरीर की कायि से चन्द्र की प्रभा का स्तिरमृत करने वाली
पूनीतका की रम्भा ही तुम क्या और क्या बेचारी चित्रलता किगके नितम्बों
को नीच पुकर मने रहते हैं ? ॥६६७॥

मस्य न क्षतु विगणित्वा प्रह्लात्मानो महाघना कुलजा ।

सोऽथ हृदयेन तस्यां त्वयि तिष्ठति वाह्यवृत्तेन ॥६६८॥

त्रिकके बसते तुमन बड़ पनयानों और कुलीनों को भी दुःख दिया वह
आज तेरे प्रति करी स्वरुहार प्रकट करके यत्ना है ॥६६८॥

तामेव समाचरणा सद्भावेन प्रवर्तितं निपुणै ।

विन्दन्ति सत्र कुशला स्नेहविरुक्षप्रमेदेन ॥६६९॥

सुभाय सं किए गए विष आचार-स्वरुहार को निपुण जन जानते हैं,
उसे ही स्नेह के विरतीने होने पर कुशल लोग विष प्रहार से जान
के हैं ॥६६९॥

सव तु विरुक्षप्रभ्यास्तत्कर्मविचेतनं मनोवृत्तिम् ।

नारोहति तु मयैव निवेदितं पारित्येन ॥७००॥

मल त्रिकका प्रेय पद पुका है उसकी मनोवृत्ति स्कार्य के त्रियंय
करने में प्रवृत्त नहीं होती उसे ही मीन जान परजान के कारण निवेदन
किया ॥००॥

इति कुर्जनामिति सुतवाग्निपद्रूपितसमस्तबपुपो मे ।

ईव्याय्य प्रवृद्धारिचररुद्रप्रणयस्रण्ठनप्रमवा ॥७०१॥

इस प्रकार कुजन रूपी सप के मुल स निकले बचन रूपी विष के कारण
मेघ स्वयं शरीर दूजिन हो उठा आर अथिक दिनों के पड़े प्रणय के गणहन
हो जाने से उग्रम ईप्सा के कारण अनियय उर्दीन हो गया ॥०१॥

सपुहृदयतया तस्माद्भापितयज्यपातविहतानाम् ।

वस्तुविरोधवितर्को न स्पृष्टति प्रायशो मन स्त्रीणाम् ॥७०२॥

स्त्रियां का हरय आश का दृष्टा होता है इस लिए कुष्ट बातों के बर
से ब्राह्म होने पर उनके मन में यह विदक करने की साम्प्य नहीं रह जाती
कि करने वाला कौन है ? ॥७०२॥

प्रियमपि वदन्दुरात्मा क्षिपति विपत्सागरे दुस्तारे ।

आसाद्य प्राणमृतो मृतये परिलेडि जिह्वया सङ्ग ॥७०३॥

पुरात्मा पुरुष मरुत बचन बीसता हुआ भी क्षिपति के दुस्तर समुद्र में फेंक देता है, सङ्ग मृत्यु के लिए प्राणी को पाकर उसे जीम से बाटने लगता है ॥७०३॥

प्रतिकोमलमतिपरिमितवर्णं सद्युतरमुदाहरति स्रु ॥

परमार्यस्य स हृदयं दहति पुनः कालकूटघटित इव ॥७०४॥

‘स्रु’ शक्ति बहुत कोमल बड़े नये-शुले शम्भो से सुन्दर रंग से बीसता है, बलुतः विप का बना हुआ कैसा वह हृदय को दग्ध करता है ॥७०४॥

हितमधुराक्षरवाणीव्यवहारमनुप्रविश्य तत्क्षीनम् ।

सरसा दुरारायानामुपघातं फलत एव विन्दन्ति ॥७०५॥

दुष्ट अमिग्राम वाले बनों की बाणी को, जो व्यवहार में पुस कर उसी में पुस-मिल कर एकाकार हो जाती है, सरसा प्रकृति के लोभ विनाश के परिणाम या फल को मुग्त कर जान पाते हैं ॥७०५॥

परसंतापविनोदो यत्राहनि न प्रयाति निष्पत्तिम् ।

अंतमना असाधुर्न गणयति तदायुषो मध्ये ॥७०६॥

जिसे दिन दूसरे को संताप देने का विनोद पूरा नहीं हो जाता उस दिन को तिस्र घटापु पुरुष अपने जीवन की आयु के बीच गणना नहीं करता (अदृष्टकार्य हो जाने के कारण वह सोचता नहीं कि उस दिन भी वह जीवित रहा है) ॥७०६॥

दिवसांस्तानमिनन्दति धनु मनुष्ये सेषु जमनो क्षामम् ।

ये यान्ति दुष्टबुद्धे पर्यपतापाभियोगेन ॥७०७॥

उन दिनों का बहुत स्वागत करता है और अपने अल्प लाभ का बहुमान करता है, जो उस दुष्ट बुद्धि वाले पुरुष पर दूसरे को कष्ट पहुँचाने के कार्य में पूरा अभिनिवेश के साथ यानित होते हैं ॥७०७॥

विशसितघदनं पिशुनं प्रोत्फुल्लविलोचनो यथा अमति ।

मन्ये तथा न जातः सदहितकरणश्रमो वक्ष्य ॥७०८॥

गिन्ता मुग मडल वाला गल पुरुष अपने हतोत्थन करके जो धूमता है

उससे जान पड़ता है कि सगुनां का अहित करने का उसका प्रयत्न असफल नहीं हुआ है ॥७०८॥

शठमृगयुः कुमतिशरैरज्ञातप्रतिविधौन्ताधुमृगान् ।
अभ्यस्तलक्ष्यवेवो निमग्नपरिध्रमं प्रजति ॥७०९॥

त्रिधका निराणा सप गया है एसा शठ पुण्य रूपी बहेलिया निरन्कार के बाधां स उन साधु जन की मृगों को, जिनमें प्रतिनिधा की मायना जितकुस नहीं, मारका हुआ नहीं पड़ता ॥७११॥

प्रानुसूलवरपुररधिपु पुरुषाणां वद्धमूलरागाणाम् ।
नयति मनो दुःशील कुसुमास्तो हीनपात्रेषु ॥७१०॥

अनुसूल और अष्ट नारिकों में जिन पुरुषों का राग बद्धमूल है एम पुरुषों का मन को बुझील कामदेव हीन पात्रों स पड़ना देता है ॥७११॥

सावरणं प्रजतोऽन्यां कौतुकदृष्ट्या प्रसङ्गतो दयिताम् ।
वृद्ध्यापि विदग्धयियो वर्तन्ते नाट्यधर्मणे ॥७१२॥

सुख-द्विज कर कौतुक के लिए प्रसगत पर्यई के पास जात हुए जिन जन को जान कर भी वाक्ताक रिजनां नाटकीय व्यवहार करने लगती हैं ॥७१२॥

सत्यं प्रेमणि वृद्धे व्यथयति हृदयं मनागपि स्थलितम् ।
प्रवधृतनिजमाहात्म्यास्तथापि धीरा न मुह्यति ॥७१३॥

एर टीक है कि प्रेम के अधिक हो जान पर धीरा भी विचलन हृदय को बच पड़वान सगता है तब भी अपनी महता पर अवलम्बित रहने वाले धीर जन विमोद नहीं प्राप्त करते ॥७१३॥

स्वच्छन्दं पितृसु रसं भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा वनानि कुसुमेषु ।
प्रानुभूतगुणविशेषं पुनरेष्यति मालती मधुप ॥७१४॥

भीय स्वच्छन्द होकर नाना वनों में भूमता हुआ मधुप का रक्षण करे फिर तो गुण की विशेषता का अनुभव करके मालती के पास आपगा ही ॥७१४॥

मानत्या गुणवता नो सम्यग्वेत्ति मधुकरस्तावत् ।
प्रानुभवमेति न यावत् सुमनोन्तरसङ्गमास्वादे ॥७१५॥

भीय तब तक मालती का गुणों की बात का सम्यक् प्रकार म नहीं

जान्ता अथ तत्र वृष्टे पूस्त क सगम का आत्वाद अनुभव नही करे
(सेवा ॥७१४॥)

कोमलमानकदर्शो भजमानो भजति दीप्ततामधिकाम् ।

सञ्चाल्यमानदासं पावक इव सुप्रमस्नेहं ॥७१५॥

अग्नि जिस प्रकार काष्ठ के सञ्चालन करने से अधिकतर दीप्तता प्राप्त करता है सुप्रम स्नेह उसी प्रकार सजु मान को उपभोग करके और भी उद्भिष्ट हो उठता है ॥७१५॥

यं पुनरतिकोपानलसन्तापवशेन दूरमाकृष्टं ।

काधमणिं क्षुसु स यथा परिणामे क्षण्डक्षण्डमुपयाति ॥७१६॥

जिस प्रकार काचमणि देर तक अग्नि में सन्तप्त होने के पक्षस्वरूप लखट लखट हो जाता है उसी प्रकार स्नेह कोपजनित सन्ताप के कारण अन्त में क्षिप्त-मिष्ट हो जाता है ॥७१६॥

वेतनलाभाद्बहुवं सेव्यन्ते सौष्ट्येन पञ्चजनाः ।

विश्राम्यति यत्र मनः स तु दुष्प्रापः सहस्रेषु ॥७१७॥

पारिभाषिक पाने के लिए बहुत पुरुषों की वेश्याएं पूर्वा रूप से सेवा करती हैं लेकिन जहाँ मन को विश्राम मिलता है वह हजारों में कठिनाई से मिल पाता है ॥७१७॥

मन्वादिमुनिवरैरपि कालप्रयवेदिभिः सुदुर्ज्ञेयम् ।

तत्सुकृत्तं यस्य फलं रमसागतवत्स्रभारलेपं ॥७१८॥

एह पुरुष, जिसका फल सुख हाकर आई प्रियतमा का आभिन्न है, भूत मविष्य और यत्मान को जानने वाले मनु आदि भेष्ट मुनिवों द्वारा भी कठिनता से जाना जा सकता है ॥७१८॥

यातेऽपि नयनमार्गे प्रेयसि यस्यां स्मृतिर्ष्यलीकेषु ।

मन्ये तां प्रति नियतं कुण्ठितशरपंचको मदनं ॥७१९॥

प्रियतम के दिग जाने पर भी जिस स्त्री को उसके अपराधों की याद बनी रहती है, मैं मानती हूँ कि निश्चय ही उसके प्रति कामदेव के पंशों काय कुण्ठित है ॥७१९॥

जोष्यत एव कर्षधिदिम्बुनिमिमां महद्भिरवगीताम् ।

विजहाति यत्र गणिका तदाक्षितरमणलामलोमेन ॥७००॥

जिस किसी प्रकार श्रीना रहेगा ही, ऐसी स्थिति में गणिका भेद प्रतीक में निहित इस कुम्भित वृत्ति का जो नहीं परिष्कार करती उसका कारण उसे कमलिपित कामुक के साम का साम है ॥७००॥

कष्टकिन् कट्टफरसान्करीर खदिरादिविदपतस्युल्मान् ।

उपमु जाना करमी दवादाप्नोति मधुरमधुजालम् ॥७११॥

कुट्टनी कट्टेदार एवं कट्टफ रस बाल करीर, खीर आदि वृत्त और गुल्फो को बहाती हुए मांस से मीठ मधु के दूध से को लो पा लेती है ॥७११॥

का स्त्री न प्रणयिवशा का विलसितयो मनोभवविहीना ।

को धर्मो निस्वयम् कि सीस्य वल्लभेन रहितानाम् ॥७२२॥

धर्मो के बश में न रहने वाली स्त्री कोई स्त्री है ? काम मारना से रहित विगत को विलास है ? स्वभाव से रहित धर्म काई धर्म है ? और धर्म से दूर रहने वाली को कोई आनन्द है ? ॥७२२॥

स्वाश्वत्थफलं घाल्यं तारुण्यं रुधिरसुरतभोगकलम् ।

स्यबिरत्वमुपयामकलं परहितमम्पादनं च वामकलम् ॥७२३॥

बकरन का फल स्वश्वत्थता है, सुन्दर मुरत पीपन का फल है शान्ति सुहाय का फल है और बूतरे का मन्ना करना फल का फल है ॥७२३॥

भ्रमिदधसोनिदमासीमवगम्य गृहीतयेव नूतेन ।

यीवनमुखेन सार्धं मयेव यूर्यं परिच्छिन्ना ॥७२४॥

दर करती हुई लक्ष्मी को पाग मुन कर विद्याय से प्रत्य को मालि मीने हो पीपनमुग के साथ नूतें भी विच्छिन्न कर डाला ॥७२४॥

मधुनानुष्ठापपावकमभ्यगता पच्यमानसर्वाङ्गो ।

निष्कलजन्मप्राप्तिर्बोवाम्युद्धृत्वासमात्रेण ॥७२५॥

इस समय परपाकर को प्रग में पड़ गई है, मरे अंग-अंग पच रहे हैं, मग क्रम बना निष्कल हा रहा है मैं उद्धृतान मार म जीवित है ॥७२५॥

स्यानेषु येषु युष्मत्संगतया क्रीडितं चिरं धृत्वा ।

तानि ससु धोक्षमाणा भवामि कण्ठस्थितप्राणा ॥७२६॥

जिन स्थानों में हमारे साथ धैर्यपूर्वक देर तक खेती की उन्हें देखती हैं तो मरे प्राण कूट तक आ जाते हैं ॥७२६॥

अन्यवशेन विसंज्ञा क्लृप्तमूषा यंत्रसूत्रसंचारा ।

दारुमयीव प्रतिमा विदधामि विडम्बना बह्वी ॥७२७॥

दूसरे द्वारा सजाई-बनाई गई, यंत्र-सूत्र के अनुसार संचार करने वाली अचेतन कठपुतली की भाँति बहुत-बहुत विडम्बनाएँ करती हैं ॥७२७॥

यदि नामोदरभरणप्राप्त्यै कुस्त्रेऽन्यपुण्यसंश्लेषम् ।

तदपि न पुष्टिर्मुग्धा अपियन्त्या अरविन्धमकरन्दम् ॥७२८॥

यद्यपि मौंठी पेट मरग के निमित्त दूसरे कूसा का आलिङ्गन करती है तथापि जब तक वह कमल के रस का पान नहीं करती तब तक उसे वृष्टि नहीं होती ॥७२८॥

आस्तामपरो लोकं क्रीडापेक्षी परापदि प्रीतः ।

व्यसनान्तरे पतन्ती न धारिता परिजनेनास्मि ॥७२९॥

श्रीज्ञा की अपेक्षा रखने वाले दूसरों के कष्ट में प्रसन्न होने वाले आत्मी की बात जाने दीक्षिण्य, यहाँ तो अपने किसी परिजन न भी दुःख के समुद्र में गिरती मुझे यही निवारण क्रिया ॥७२९॥

किं वा बहुभि कथितै सम्प्रति हि मयापि नियमिता बुद्धिः ।

स्यास्यामि संनियुक्ता भवद्गुहे प्रेष्यभावेन ॥७३०॥

बहुत कहन का क्या ? अब मैं भी अपनी बुद्धि रोक ली है ! आपक घर में नियुक्त होकर दासी के रूप में रहूँगी ॥७३०॥

इति नेत्रादिविकारिवंशमुपनीतं प्रलीनधैर्याङ्गम् ।

मारग्रहामिमूर्तं परिमृष्टप्राङ्गिनराकृतिस्मरणम् ॥७३१॥

हे मुझ, इस प्रकार यह जब हमारे नेत्रों के विकारों में पशु में आ जायगा ठलकी पीरता जाना रंगी काय के ग्रह में अमिभूत हो जायगा अपने पहल के निष्काम की घटना की याद भिद जायगी ॥७३१॥

प्रादुर्भूतरिरसे क्षणे क्षणे जघनवेरागतदृष्टिम् ।

पक्वाम्रमिष विमोक्षसि पूर्ववदाचूष्य निशेषम् ॥७३२॥

उठकी रससन्ध्या पुन उताम हा उठगी क्षण-क्षण में ठरे जघन की क्षार दृष्टियात करंगा, तब परत की मति पक्व आम की तरत उन पूर कर स चूम कर छोड़ दना ॥७३२॥

स्वशरीरामिपदिग्धं वक्स्मितदृष्टिपातवाम्बुद्धिशम् ।

प्रक्षिप्याकृष्य जहं स्फुरणैर्न विवर्जितं सुपरिपुष्टम् ॥७३३॥

उद्गो मुक्कान, डेढ़ी निगाह और उद्गो पत फ बती (मदना पदान पार्श्व) को फेंक कर अपने ही शरीर क मास से मुक्त, विवर्जित पक्व-पुष्ट म रहिन, मोटे ठाज (कामुक बती) मन्य का गीब कर ॥७३३॥

हस्तद्वयान्तरागतमुपचारय परिव्ययेन संस्करय ।

मुक्त्वा यावमांसं त्यज्यसि चर्मास्त्रिशयितं मत्स्यम् ॥७३४॥

हाथों में आए हुए उन मिष-नमाजा म तब कर मास क पूरे शर का गार कर चमड़ी और हड्डी को शय करके छोड़ दना ॥७३४॥

शृणु सुश्रोणि ययास्मिन्कमलेखरपादमूसमंजयर्षा ।

प्रथराधार्यंदुहित्रा राजसुतश्चवितश्च मुक्तरथ ॥७३५॥

हे मुन्दर मय्यमाय बानी, मुन जैसा कि यहाँ (बायागुनी में) मरतबाप की लड़की और कमलेखर पाद स्थायी म शिवा हुए मरते न राजपुत्र को पता करके छाड़ दिया ॥७३५॥

प्रासोष्ठीसिंहमतो नाम्ना नपतिर्महीयसां श्रेष्ठः ।

सत्यात्मजोऽर्षितस्वी निवेद्यं देवराष्ट्रसम्बद्धम् ॥७३६॥

मञ्जुगे क्व आग्यान

'य' गज-भ्रों में मच्छ भी सिंह मत नाम का राजा था उतथा पुन (ममामर) देवराष्ट्र (भारतीय मटराष्ट्र) क अन्तगत निरत कता थ ॥७३६॥

स बन्धाषिद्वयमध्वजिदसया परिमिताप्तपरिवारः ।

अनुवर्तमान प्रागात्तादन्वोदीणवेषवितानि ॥७३७॥

शौच क उचित कर और छापरण का अनु-तन करत हुआ वह सिन्धी

समय काशी विरवनाथ के दर्शन की इच्छा से थोड़े से परिजनों के साथ वहाँ आया ॥७३७॥

मूर्धन्निभागसंस्थितवृहदम्बरचौरकेशसंयमन ।

अन्याच्छगात्ररागो घनकुंकुमलिप्तकणकेशाग्र ॥७३८॥

वह अपने माथ पर तीन भागों में कटाबदार बंधी हुई पगड़ी धारण किए था। उसके शरीर की साक्षी हस्ती और अश्वी थी। उसने कान के समीप केश फ ध्रुवभाग को गाढ़े कुंकुम रंग से रंग लिया था ॥७३८॥

सिद्धार्थबीजदन्तुरसलाटतिलकोष्पुक्तताम्रूल ।

श्रवणनिवेष्टितकुण्डलटिट्टिमकप्रायफन्धरामरण ॥७३९॥

उसके सहाट पर सफेद सरसों बिपके हुए थे जो तिलक का काम देते थे। बड़े पान लाल था। उसके कानों में कुण्डल और गले में, 'विहिन्क' नाम का धर्मकार था ॥७३९॥

केयूरस्थानगत सुवर्णमृत्तमन्त्रगर्मजतुगुहक ।

मणिबन्धनविन्यस्तप्रवसांकुरजातल्प मणिमाल ॥७४०॥

केयूर के स्थान में उसने सोने के पत्र से बंध डाल कर मड़े लाल की गुटिका पहन रखी थी और हाथ की कलाईयों में बकमक करती हुई सोने की माला डाल रखी थी ॥७४०॥

धृतवेत्रदण्डकूर्चपरिवेष्टितसासिधेनु सङ्गश्च ।

मृदुतरपटिकारवण शब्दोत्पणसुञ्जुवानचरणत्र ॥७४१॥

उसके हाथ में बेंत का माण्डार डंडा था, अट्टि वंश में छुरे और क्लवार थी। शरीर का बल बड़ा हस्ता था और गले जोर से धरमपने की आवाज करते थे ॥७४१॥

गम्भीरेश्वरदास्यां लम्न किल तव वयस्यको धीर ।

प्राप्स्यसि सापि दुराशा यपन्निवयेन यमया प्राप्तम् ॥७४२॥

सभा नियुक्त परिजन भाग से भीड़ हटा रहे थे। वहाँ बिट और थेटियाँ मरी थीं। उनके बीच स जान हुए गमरमन से बनड़ी व घातें गुनी—

(फिरी मदिहा की गिट के घनि उक्ति) तिरा लायी धीर गम्भीरेश्वर

दामा^१ में आनन्द है दुराशा यह भी तीन बगों में जो मीने पाया है वही पावेगी ॥७४२॥

वर्षयति दिशं फलिता अमृतगमस्ति करेज्वतारयति ।

सुरदेवि चन्द्रवर्त्मा निर्वस्तुमत्वाक्प्रपंचन ॥७४३॥

(किसी विट की वाचालता के सम्बन्ध में गणिका की उक्ति) 'सुरदेवि, चन्द्रवर्मा नाम का विट अपनी व्यय के वाकप्रपंच से दिशाओं की लामों से मरी बनाया है और अमृत की किरणों वाले चन्द्र का हाथ में उतारता है' ॥७४३॥

त्वामनुयान्तं सम्प्रति परयामि कुरंगिकेऽथ वसुरोपम् ।

सुनिरूपिता भविष्यसि विपमा गुडजिह्विका तस्य ॥७४४॥

(निन्नी गणिका की विट का अनुगमन करती हुई किसी गणिका के प्रति उक्ति) 'कुरंग, इन दिनों तुम्हें वसुरोप ७ वर्षों चलती देख रही हूँ। बाद में उतरी मिठासमरी देखी थीम का तुम्हें पता चलेगा ॥७४४॥

चर्चयसि जलं योज्जौ हरिणि हृषो घूर्ततामिमानेन ।

लिखति शतं दशवृद्धया स निमज्जति तरलिकावर्ते ॥७४५॥

(गणिका के घर में पड़ पड़के के सम्बन्ध में सारी के प्रति गणिका की उक्ति) 'हरिणि, अपने घूट होने के अमिमान में जो पर प्रत्येक को टगता रहता है—एक तो बच दे कर (अपने पाठ में) उसका दसगुना करके बच करता है, वह अथ (मायाकिनी) तरलिका के चपट में पड़ गया है ॥७४५॥

गृह्णासि यस्पटान्ते मम परयत् एव नन्द मदिराक्षीम् ।

अत आशयोरवरयं मा वक्ष्यसि नोत्तमतरं भवति ॥७४६॥

(बोरे विट अपने साथी की अलावधानी को लेकर उसका विस्कार

१—कहरी स्थित रामतीरेवर के मन्दिर की देवदामी। सम्भवतः यह मन्दिर आज भी कशी में सिंधिया घाट के उपर विद्यमान है। प्राचीनकाल में देवमन्दिरों में शृंग-गाने के लिए सुबति त्रिचो काल पर त्रिपुक्त की जाती थी और 'देवदामी' कहलाती थी। यह प्रथा आज भी कश्मीर के सामाजिक कुशासन के कारण बन्द कर दी गई। कश्मीर के मन्दिरों में कुपु घाट में यह प्रथा अब भी प्रचलित है।

कृता है) 'मूख, मेरे देखते ही जो तू मविराधी का आश्रय लीवता है तो हम दोनों का न कहना । हृदय (का भाव) कहा नहीं जाता ॥७४६॥

योष्यं गृहीतवृषिकं कुशकणी विधृतदण्डकापाय ।

लोकस्पर्शाशंकी कृतापसारो विलोक्यन्पारवी ॥७४७॥

(कोई गयिका किसी पाशु के आचारों से उसके बनापटी होने का अनुमान करके अपने मनोरथ की सिद्धि का निर्वारण करते हुए कहती है) हे कुमुदिनि यह जो बगल में आसन लिए, कानों में कुश लगाए, हथकड़ी और कपाय वस्त्र बांध लिए, लोगों के लुभाने के डर से उम्हें हटाता, बगल में हथकड़ी देखता ॥७४७॥

कुर्वाणो मौनव्रतमुत्पादितसकलवैष्णवश्रद्ध ।

हरिशासनं प्रपन्नस्त्रिपुरान्तकदर्शनापदेशेन ॥७४८॥

मौन व्रत धारण करता, विष्णुभक्तों के मन में भ्रष्टा की भावना उत्पन्न करता (नारद पञ्चरात्र आदि) वैष्णव शास्त्रों की शरण में प्रपन्न, शिवजी के दर्शन के बहाने ॥७४८॥

स्त्रैर्ण परयति मुक्त्या साकार्क्षं वर्जितान्यजनवृष्टि ।

कुमुदिनि मम हृदयगतं भवितव्यं व्याजलिगिनानेन ॥७४९॥

मुक्ति से दूखे लोगों की आँसों पका कर औरतों को हठरत मरी निगाह से देखना है इस देव मरा हृदय कहता है यह बीबी साथ होगा ॥७४९॥

परमपर्यहरयमानो निरीक्षितो वीक्षते परां ककुमम् ।

द्रुते किञ्चित्सस्पृहममियुक्तो भवति कोसित्तुध्वान ॥७५०॥

(बिरहा शय जन् कामुक का वर्णन) 'इस तरह (हमें) देखता है कि जब उसे कोई (दिग्गज) न देगा तो । लोगों की आँसों जब उस पर रहती हैं तब यह अन्य रिशवा की शरण लगता है, कुछ भी स्पृह शत्रु शोचता है और पृथ्वी पर उसकी आवाज बस जाती है ॥७५०॥

म अहाति समासन्नं नोत्सहते पार्वर्गोचरे स्थातुम् ।

एष मनुष्यो मन्ये निष्प्रतिमं सामिलापश्च ॥७५१॥

न बड़ी-छ म्यान छान्ता नहीं और पाप में पड़ने दान का साहस नहीं करता, मुझ लगता है यह आखी बादा और बादन बासा है' ॥७५१॥

तेऽश्रीताः खलु दिवसा क्रियते नर्म त्वया समं येषु ।

भवुनाचार्याणी त्वं पाशुपताचार्यसम्बधात् ॥७५२॥

(कोई अपनी गणिका द्वारा धनराम् प्रती क मिल बन क बा उपाधिग हुआ उसके प्रति ईप्सा-वश करणा है) 'बि दिन अब नही रहे जब तरे साथ हसी-नबाह करते व । अब तो पाशुपताचार्य की उद्गति म नू मी 'आचारिन बन गई है' ॥७५२॥

अमसि यथेष्टं सावत्कुर्वाणो युवतिपत्न्यवग्रहणम् ।

लोलिकदास न यावन्नरदेवीपाशिनार् विद्यसि ॥७५३॥

(शठ सेवक के प्रति गणिका की ठकि) 'लोलिकदास, अब तक नरदेवी के पास में नहीं फँस जाता तब तक जबान औरतों का पत्न्या पत्न्ये हुए अपने मन से नू भूमता रहता है ॥७५३॥

एवंप्रकारवाक्यप्रसक्तविटघेटिकासमाकीर्णम् ।

सेवान्तुरपुरसर्तं विजनीकृतवत्समदेवकुलम् ॥७५४॥

(सिवा निपुण परिवनो द्वारा आगे-आगे माग में मीइ इत्यप जाने पर कियो और घेटिकाओं से मरे मन्दिर की और जात हुए उठन हव प्रकार उन हागा की बातचीत मुनी) ॥७५४॥

उत्पादितहरपूजो निष्कुरयाष्टीकनियमिते सोके ।

स्वरितनियोगित्यापितमासनमध्यास्तं समरमटं ॥७५५॥

निरनाथ की की पूजा करके, कइ दिन वाले लगेतो द्वारा लोभने के रोक दिए धन पर ममरमट भूषो द्वारा शोभ ही रूप हुए आसन पर बैठ गया ॥७५५॥

अप्रोपविष्टनर्तकवाशिकगात्प्रफाद्ययुवतिगणं ।

श्रेष्ठिप्रमुखवर्गिजनडीकित्ताम्बूलकुमुदपटयासं ॥७५६॥

उसके आग नानन वाली पयो बबान बाजो, मान बानो तथा बरग औरतों (प्रायमुनिषो करपात्रा) का कनूह पैय । फिर सगे और महावनो म उस पान पूज और पटयास (रुप्ये प्राय आसन का मुगटिपन पूर्ये) उद्धार में अर्पित किया ॥७५६॥

विविधविलेपनस्ररटितचक्रकवरखङ्गधारिणाद्युन्य ।

पुष्टत आसक्तकृपाणै शिरोभिरक्षैश्च विम्बस्ते ॥७५७॥

उसके पाठ नाना प्रकार की चित्रकारी किए चक्रक धारी (बन्धकार बाल पारस करने वाले) और तलवारधारी पुरुष विद्यमान थे। पीछे की और कृपाय लिए विरमन्त अंगरदन लड़े थे ॥७५७॥

ताम्बूलकरकमुता सन्देसगृहीतवीटिकाग्रहृष्टे ।

ईयत्स्पृष्टं कुर्वन्मन्दं सटकामुखेन वामेन ॥७५८॥

अब ताम्बूलकच्छुनाहक पुरुष ने संदेश के प्रकार से पान के बीड़े को पकड़ा तब उठते उठते अपने बाएँ हाथ के एटकामुख के प्रकार से थोड़ा स्पृष्ट करते हुए ताम्बूल ग्रहण किया ॥७५८॥

पारर्षावस्मिन्ननर्मेप्रियसचिवन्यस्तपूर्वतनुभाग' ।

पप्रच्छ कुशलवार्त्ता स घणित्वननर्तकप्रमृतीन् ॥७५९॥

उठते अपने बगल में बैठ परिहास-श्रेणी मित्र की ओर शरीर का ऊपरी अंग भाग मुका लिया और वनिषे तथा नर्तक प्रवृत्ति से कुशल-समाचार पूछने लगा ॥७५९॥

अथ वैतालिक उष्णैरुपसंहृतलोककस्तकम्ने धीरम् ।

अभिसुष्टाव तमित्यं प्रसन्नगम्भीरया वाचा ॥७६०॥

अनन्तर वैतालिक ने, अब लीगो का जोलाहल प्राप्त हो गया तब उसे

१—हाथ से किसी बस्तु को पकड़ने की शक्तिवाली सुत्राणी में 'संदेश' और 'एटकामुख' का उल्लेख अभिनयशास्त्र के ग्रंथों में आता है। प्रस्तुत में ताम्बूल करके बटुक पुरुष ने 'संदेश' हस्त से ताम्बूल अर्पित किया और 'एटकामुख' हस्त से राजा के उर्म ग्रहण किया। अंग हीअकार ने इसके विवरित अर्थ किया है जो बधावस्थित अर्थात् संगत नहीं बैठता। 'अदेश' हस्त (अर्थात् सबसोनुमा हाथ की मुद्रा) अब सर्वज्ञ की शक्त के अन्तर्भाग का संयोग होता है तब नीचे बायाँ कीर्तनीय वाक्का दिग्मा देहा नहीं होता ऐसी स्थिति में वह मुद्रा 'संदेशहस्त' कह जाती है। एटकामुख—अब तबकी धीर प्रथमा का योग किसी बस्तु को पकड़ने के लिए होता है और उर्ममें अन्तर्भाग का योग होता है ऐसी स्थिति में वह मुद्रा 'एटकामुख' कह जाती है।

२—वैतालिक—सुतिपादक स्थावर पुरुष। जो समय समय पर राजाओं का गुण-अंग करते हैं। उनका कर्मण्य शारदालोक सिद्धते हैं—

तापत्रहरकर्मोप्यै रागैस्तास्यलक्षणाभिनिः श्लोकैः ।

एतदप्यस्यै विद्यायै तावत्त वैतालिकाने भवति ॥ (अन्तर्भाग)

दिकुलुस साह, गम्भीर तथा ऊँची आवाज में धीर स्वभाव वाले उठ रावपुत्र की इस प्रकार स्तुति की ॥७६०॥

जय देव परदलान्तक गुस्वरणाराधनैक कृतचित्त ।

वरवनिताजयनासन दारिद्रघतम प्रचण्डकर ज्वाल ॥७६१॥

देव आत्मी जय हो आर शत्रु सेना को नष्ट कर देम बल है, गुस्वरणों की सेवा में आरका चिह्न लगा रहता है भक्त बनिताजन को आर मोहित करने वाले है, दारिद्रपक्षी आचकार के निवारण करने वाले आर स्व है ॥७६१॥

रणवीरर्वशामूपण गुस्वसुधादेवपूजनप्रह्व ।

शरणागताममप्रद हितवाधवबन्धुजीवमध्याह्न ॥७६२॥

रणवीर नायक अम कुलपुत्र क पशु के आर भूय है गुस्वरणों और आत्मणों की पूजा में नम्रभाव के युक्त है, शरण में आर बनों के आर अमर प्रदान करने वाले है, हितजनों, बन्धु-बाण्यको और बन्धुकीय पुत्रों के आर मन्दा आर पोषणता है ॥७६२॥

ईदम्प्रठापदहनो भावस्को व्याप्तगगनदिक्ष्वक्रः ।

दष्टो जलायमानो रिपुवनितातिलकशोमासु ॥७६३॥

उठ प्रकार आकार और दिक्प्रमाण में ब्रह्म आरकी प्रत्यक्षिण शयु-बनिताओं के तिलक की शोमा में जल हो जाती है (स्त्रोत्रि जल के द्वारा ही शयु बनिताएँ अमर पति क मारे जान पर अमर पाये क निकल ये देनी है) ॥७६३॥

एष विद्योऽस्य स्पष्टो बह्वेश्व स्वप्नतापवह्वेश्व ।

प्रकुरति तेन दग्धं दग्धस्यानेन नोद्भूतो मूय ॥७६४॥

अग्नि और तुम्हारी प्रकृत्याग्नि इन दोनों में पर स्वप्न में निद्र देना है कि अग्नि से बसा हुआ फिर प्रकुरित हो जाता है और तुम्हारी प्रकृत्याग्नि से जले हुए वा उदभा फिर नहीं होता ॥७६४॥

धोक्लभुक्त्तवृत्तो विप्रहरसिनो विमुक्तस्त्ररति ।

राजस्विति न मुषति हृतनदमीवोऽपि तव विपन्नगण ॥७६५॥

तुम्हारे शयु रा-नदमी क हर लिए जान पर भी क पशु का योग

करते हैं (श्लेष—वन में जाकर श्लेष अर्थात् विश्वच्छ का मोहन करते हैं), पत्र अर्थात् पत्रों से भिरे रहते हैं (श्लेष—पत्र अर्थात् पत्रों से अर्पण शरीर को ढके रहते हैं), विग्रह अर्थात् युद्ध के रतिक हैं (श्लेष—विग्रह अर्थात् शरीर के रतिक हैं, शरीर को निरन्तर क्रम से हृद बनाते हैं), शूल का अनुराग छोड़ बैठे हैं (अत्र शूल उनके लिए स्पष्ट हैं) इत प्रकार अत्र वे राम्य की मर्वादा नहीं छोड़ रहे हैं ॥७६५॥

दवतो वाञ्छितमर्थं सवानुरक्तम्य तव गृहं त्यक्त्वा ।

स्त्रीघापलेन कीर्तिर्नगमासक्ता गता ककुभ ॥७६६॥

अपकि तुम मनवाही चीज देते हो और अनुराग करते हो तब भी जी जाति की स्वामाधिक चरित्र के कारण कीर्ति नग (नग, श्लेष से बड़ी बन) बुद्धि में आसक्त होकर दिशाओं में चली गई ॥७६६॥

भवतो भवसो धैर्यं तेन हि मिश्रोऽश्वको रिपु प्रणत ।

मुक्तास्त्वया हि बहवो रिपवस्तु प्रेक्षका समरे ॥७६७॥

आगता पैरं शिवजी से भी अपिक है, क्योंकि उन्होंने नग्रीभूत अन्वय मुर को माया और आपने युद्ध में देलने वाले बहुत से शत्रुओं को भी मुक्त (मुक्ति को प्राप्त) कर दिया ॥७६७॥

भटता घाथीमखिलामिदमाश्रयं मया परं दष्टम् ।

घनदोऽपि समननन्दन परिहरति यदुग्रसम्पर्कम् ॥७६८॥

मैंने लारी बरती पर अमय करत हुए एक आश्रय देता कि दे आलों को आनन्द देने वाले, तुम 'वनर' (उभर) होकर भी 'उग्र' (शिवजी) का सम्पर्क त्याग करत हो (परिहार यह कि घन देने वाले होकर भी उग्र या अभिमानी जनो का सम्पर्क त्याग करत हो) ॥७६८॥

इवमपरमदभुतमं युवत्सिहस्रैर्विलुप्यमानस्य ।

वृद्धिर्भवति न हानिर्यत्तत्र सीमायकोपस्य ॥७६९॥

इसका परम आश्चर्य यह है कि हजारों युवतियों द्वारा सीमाय को गजामे को लूट करनी है तथापि उनकी वृद्धि ही होती है हानि नहीं ॥७६९॥

१—अर्थ कि जो बड़े बड़े युद्धों में आसक्त होकर दिशाओं में चला जाता था वह वृद्धि के अर्थात् तुम्हारी कीर्ति को बढ़ावा के लुपि-वाक करके वाले लोग विगिच्छत में अन्वय अर्थात् करत हैं ।

अपरं विन्मयज्ञानं धवलसत्त्वं नापयाति यद्भवत ।

सलनालोचनकुवलयदलस्त्रिपा श्वलितस्यापि ॥७७०॥

आम्रवप यह भी होता है कि ललनाद्यो क कुवलय दलो की कान्ति मे मिथिा हामे पर भी आरदी बरषिमा (सकरी) नहीं जनी ॥७७०॥

हृदयेषु कामिनोनामेकोज्जेकेषु वससि येन स्वम् ।

अनन कुसुमास्त्रपाणौ पुष्ट्योत्तम तेन विश्वरूपोऽसि ॥७७१॥

शिव काश्य एक हाकर भी अनक कामिनियो क हृदयो में रहते हो उषी काश्य हे पुष्ट्योत्तम पून के साथ काश्य कमन बाल कामरुष का उत्तम कमन काले शुभ विरपण्य (नागवश) हो ॥७७१॥

किं बहसि वृषा गर्वं प्रियोऽहमिति योपितां नरायीश ।

कांसन्ति स्म मुरारि वोढ्यगोपीसहस्राणि ॥७७२॥

हे नरघोष मिथो का मे प्रिय हूँ यह व्यर्थ ग्व परण करत हो मुर के यनु भीरुण्य को जानद हजार गोपियां काहती थी ॥७७२॥

कार्पण्येन यमात्रे मत्तसमये यो बसि हूपीकेषा ।

न स भवति समो भवता दानैकनिपण्ड्रदयेन ॥७७३॥

शिव हरीण्य अयात् विष्णु ने दोन भाव प्रक करके फलाल में राका कलि स पावना की, यह एक मात्र दान करने मे शिवका हृदय मिथ है ऐस कायक लान नही है ॥७७३॥

भूमिमृतामुपरिस्थित उप्रतये सक्तसजीवलोदम्य ।

सृष्णासंवापहरो मेघ इव कदा न ददास्त्वम् ॥७७४॥

समल जेबलोड की उन्नति क शिव भूमिभू अयात् राकाद्यो (रतेर मे

1--अमरेश के उन्नत करने काले कातापय पद में अक या पिता और राकपुत्र के पद में कामोदीपक । अयात् पुष्ट्योत्तम श्रीरुण्य प्रपुष्ट के जक लब मरके करण में रहने के कारण 'विरपण्य' बने जात है--

इत्यतः परमृतानां दृष्टेः शब्दो निष्ठति ।

गीता

अथय समल गाविधी के हृदय में समाव रूप न निराय करते है । यह राक पुत्र बुदरी में उत्तम है चार कामिनियो के मरुत को उरुपिन करने कला है जब समल कामिनियो क मन में अपिहार कर लवे क कारण 'विरपण्य' बदा गया ।

पवता) के ऊपर स्थित रहने वाले, सन्ताप को शपन करने वाले एवं कार्य करने में निपुण आग मेह के समान देने वाले हैं ॥७७४॥

वहुमार्गो भङ्गयुतः क्रुसृतिपरो गोत्रभेदकरणपापद्व ।

गंगाजल प्रवाहः पूज्यविद्या केवलं तव समानः ॥७७५॥

पुरुष के कारण ही गङ्गाजल का प्रवाह हमारे समान है, क्योंकि हम बहुमार्ग (बहु प्रकार के मार्गों या व्यवहार-नीतियों वाले) ही और वह अपने-अपने मार्गों से चलता है, हम मद्रयुत (सुबस से युक्त) ही और वह मद्र अर्थात् क्रम्याय से युक्त है, हम क्रुसृतिपर ही अर्थात् बोझा षड़ी करने वाले क्रुडित लोगों के प्रति शठता की नीति अपनाते ही और वह मेढ़े-मेढ़े मार्ग में प्रवर्तित है, हम गोत्रभेद अर्थात् अपने को कुछ अन्य कुलों से विशिष्ट करने में निपुण ही और वह गोत्रभेद अर्थात् पर्वतों की भेदन के कार्य में समर्थ है ॥७७५॥

दुष्यवहारोत्पत्तिमैर्गिष्यप्रसरो येन विवेकितावसति ।

एकस्त्वं दोषज्ञः कृतीकृतो येन कलिकालः ॥७७६॥

दोषों को जान कर उनके निवारण करने वाले अकेले अपने कलिकाल को जिसमें दुष्प्रवहारों की उत्पत्ति होती है, मूढ़ता से जो मरा रहता है और जो अविवेक वाला है, इतयुग (वस्युग) बना दिया है जिसमें कुल से (राज्य) व्यवहारों की उत्पत्ति होती है, जिसमें निष्प्रयत्न भाव होता है और जो विवेक से युक्त होता है ॥७७६॥

सुगतोऽपि नाजिविमुक्तो धृषध्वजोऽपि न विपादितायुक्तः ।

उद्यतशस्त्रोऽपि रिपौ कथमसि सप्तासिको जातः ॥७७७॥

आप जैसे सुगत (बुद्ध) होकर भी दुःख से विमुक्त नहीं हैं और धृषध्वज (शिव) हाकर भी मैं विपादिता (विपमद्य की प्रकृति) से युक्त नहीं हैं, शत्रु के प्रति उद्यतशस्त्र हाकर भी कैसे सप्तासिक (इके हुए अति अर्थात् प्रपाय वाल) हैं ॥७७७॥

समगिरनेव भोगो गुरुभारसहः स्थिरात्मतास्थानम् ।

नरदेव बिभ्रमेतद्यदशेषगुणैस्त्वमारिसृष्टः ॥७७८॥

हे मरुदेन सन्निधि (मरुजनां ये भेष्ट कर्तों पर मर्ति धारण करने वाले) अपने-अपने भोग (बहुविध सुग भोगने वाले ; इबार कर्तों वाले) गुरुभारसह

(गुणों के पालन का पारख कर काम करने वाले) धैर्य (या स्वैर्य) के नाम गुण, आश्चर्य तो यह होता है कि इस प्रकार शेष सर्वात् सर्पराज के गुणों से कुछ होकर भी अराज गुणों से कुछ हो (अर्थात् शेष या सर्पराज के गुण तुममें नहीं हैं, परितर यह कि शरै गुण तुममें विद्यमान हैं) ॥७७८॥

प्रकृतिलघोर्णेन कृता जघन्यघणस्य गौरवापत्तिः ।

जघन्यपला यदायां स पिङ्गसस्ते कर्त्यं तुल्यं ॥७७९॥

छन्दःशास्त्र के रक्षिता यह सिद्धसाचार्य कैसे तुम्हारे सद्य हैं ? जिन्होंने प्रकृतितुल्य (स्वभाव से ही छोटे, हीन जाति वाले) जघन्य (अशुभ, निन्द्य) ब्रह्म (अक्षर, आत्म्य आदि ब्रह्मों में शक्ति) को गौरव (गुरुता उत्कर्ष) प्राप्त करवा है तथा जघन्य-पला (इस नाम का एक आवा छन्द व्यभिचारिणी स्त्री, जो अपने जघन से जपल है) को जो आयां (छन्द, सम्भारिता नारी) माना है ॥७७९॥

यस्य न जातिर्नात्मा नार्थज्ञानं न मानमे प्रथमं ।

भवसि भवसागररत्नं सेनाद्वयवादिना सद्यः ॥७८०॥

। किन्तु तुम जाति का बान्धव नहीं हो ? किन्तु आत्मा (अर्थात् अपने आदमी) नहीं हो ? मन के लिए किन्तु तुम ज्ञान के विषय नहीं ? और शक्ति मान तुम किन्तु के हृदय में निवास नहीं करते हो ? इस प्रकार तुम सद्य के उत्कृष्ट रत्न होकर अज्ञानवादी अर्थात् विज्ञानाभेद (विज्ञान के अतिरिक्त सबको मिथ्या) करने वाले बुद्ध के द्वारा उपनेय नहीं हो ॥७८०॥

सत्रापि वृद्धियोगस्तस्मिन्नपि पुष्ट्यगुणगणभ्यापत्तिः ।

परिभाषा सत्रापि व्याकरणान्नातिरिभ्यसे सेन ॥७८१॥

उक्त व्याकरणशास्त्र में भी वृद्धि का योग है, वहाँ भी पुष्टर के गुणगणों से व्यापत्ति है, परिभाषा वहाँ भी है, इस लिए तुम व्याकरण शास्त्र में अतिरिक्त नहीं हो ॥७८१॥

निर्भ्याजस्तवनोऽपि त्यक्ताक्षेपोऽपि निक्षपमानोऽपि ।

सद्रूपव्यतिगुणैर्नायं स्वं गामलकुस्ये ॥७८२॥

न्यायपूर्ण सति से रहित होकर भी आक्षेप (अर्थात् मिथ्यानिन्द्य) की

घोड़ कर भी उगमान शून्य होकर भी हे नाथ तुम अपने सद्गुण (धर्मों की
शोभन का) और जाति के गुणों से पूर्णों को बलवृत्त करते हो १ ॥७८२॥

अन्यैव वर्णनैषा भवत्सु लोकान्तरास्त्विता कापि ।

वामो भयैव शत्रुषु मित्रेषु तथैव वामोऽसि ॥७८३॥

यह हमारा गुण रखन कुछ और ही लोकोत्तर है बीसा कि तुम जिस
प्रकार शत्रुओं के सम्मुख में वाम (पतिवृत्त) ही उसी प्रकार मित्रों के सम्मुख
में वाम (मुन्दर) हो ॥७८३॥

पूजयसि येन गुरुजनमभिनन्दसि येन साधुचरितानि ।

प्रीण्यसि येन विप्रान्पुनन्दन तेन तेन धूपलस्त्वम् ॥७८४॥

जिस कारण अपने गुरुजन की सेवा करते हो, जिस कारण सत्कार्यों का
अभिनन्दन करते हो और जिस कारण ब्राह्मणों को प्रथम करते हो, हे उर-
नन्दन उक्त कारण वाम (धर्म धरणा भण्ड) हा ॥७८४॥

दैन्यमिदं यच्छृणाथा क्रियते ते रक्षसापि न समस्य ।

न सबलमकरोद्योपिस्त्रि भवोस्तु भुक्ते प्रसह्यरिपुसदमीम् ॥७८५॥

यह दयनीयता की बात है कि तुम जो कि राक्षस के भी समान नहीं हो,
फिर भी तुम्हारी प्रशंसा की जा रही है, क्योंकि उस राक्षस ने नारी सीता पर
घरना बलाघरण नहीं किया और तुम शत्रु की लक्ष्मी का हठपूर्वक उगमोप
करते हो ॥७८५॥

सावणिकासाद्दुष्यस्तनं यस्तामहेतुरस्माकम् ।

वत्पतति ते स्वल्पे यामि नम संतु सौख्यानि ॥७८६॥

हे रवशाय कष्टपूर्ण पवनो द्वारा मृति करता जाकि हम लोगों के लिए
प्राप्ति का लाभ का हेतु होगा ते वत् ता तुम्हारे स्वरूप के साथ संगत हो जाऊ
है, घना जाता है, तुम्हें प्रणाम, तुम्हारे सुख हो ॥७८६॥

१—यदि रत्नय के प्रकार से धर्म ने ज्ञानमृति प्राप्त करके प्राप्ति प्राप्त करने
का उद्योग किया है ।

श्रुत्वानन्तरमवदधुन्दिनमभिनंद्य साधुवादेन ।

आस्त्व किमाकुलता ते यान्यसि सुष्टो मया प्रहित ॥७८७॥

तब मुन कर उसन बैठासि को 'साधु' 'साधु' कह कर धमिनन्त क्रिया
घोर कह—अरु इतनी तुने इइबड़ी क्या है ! मरे हाथ कनुप करके मरे
बने पर जाना ॥७८७॥

पुनरपि पठ तद्युगलं गीतिकयोर्मत्पुरा पठितम् ।

कक्षांसरितेन मम स्थितस्य कुलपुत्रिकावासे ॥७८८॥

अरु मी कुप पुत्रिकाबास में कक्ष के मोतर बैठा या उस समय जिन दो
गीतिकाओं का तुमने पढ़ा या उन्हें फिर पढ़ दो ॥७८८॥

त्वयि वदति साधुवादं वागियमुन्मुद्रिता मुघसमाजे ।

अभिषायेति पपाठ त्रिस्त्रायनविशुद्धनादन ॥७८९॥

'तुम्हारे हाथ साधुवाद किए जाने पर मरी मह बागी किलकुल उल्लसित
हो उठी है' यह कह कर उसन उठ, बसठ घोर सिर के स्थान स विशुद्ध
आपात्र में पाठ किया ॥७८९॥

एका स्रष्टनकुपिता विरसान्या प्रणयमंगत्रैलक्ष्मात् ।

काचिन्निकटवरासनमप्राप्य विमर्ति निर्वेदम् ॥७९०॥

'एक सुन्दरी अवन निरन्धर (गण्डन) स कुनित हो गई है, वृक्षी प्रणय
के मग्न हो जाने के कारण सजा म रूढ़ है, बार किलकुल अवन कमीन अवन
न पाकर न अनुमन करती है ॥७९०॥

अन्या कलहान्तरिता नवपरिणयसज्जयापरा सहिता ।

रमणीगणमप्यगतं स्मरातुरं किं करोतु बहुजानि ॥७९१॥

बोरे पति को अन्मानित करके पाछे पछता रही है, जोर न शारी म
कर्मरु है, स्वयिषी क बीष पन बहुत पसिने याना कामतुर क्या
करे ! ॥७९१॥

अम्युपस्यवबोधमस्तकचननं विधाय विहृतम् ।

मृत्पाचार्यमवादीदेतस्मिन्नि सुमंगातम् ॥७९२॥

अनुप का स्तक शिररपावन कर, मी उल्लसत पर मृत्पाचार्य स दोना,
'अब क्या कमीन होगा' ! ॥७९२॥

स उवाच ततो यण्डो नेतारो यत्र यत्र पात्राणि ।

शाठ्यातर्न दास्यस्तत्र कुतः सौष्ट्वं नाट्ये ॥७६३॥

तब ठगने कहा, 'जहाँ बनिसे नेता हो, जहाँ शठ्या के निरास-रूपान
दासिवा पात्र हो जहाँ नाट्य में कहा से अष्ट्यार होती ? ॥७६३॥

काचिद्वलिनाक्रान्ता काचिन्न जहाति कामिनं रुभिरम् ।

अन्या पानकगोष्ठ्या नयति दिनं प्रीतकौ सार्वम् ॥७६४॥

किन्ती पर बलशाली पुरुष सवार है, कोई मनभाये कामुक को नहीं छोड़ती
ता कोई प्रेमियों के साथ पान-गोष्ठों में दिन बिताती है ॥७६४॥

नोत्सुञ्जति सततमेका पुरुष्यागमनायया गृहद्वारम् ।

शूलापालः कथयति लब्धोत्कोचो रजस्वलामपठम् ॥७६५॥

कोई हमेशा पुरुष के आने की आशा से घर का दरवाजा नहीं छोड़ती ।
वेत्याप्यस्य' वृत्त पाकर वृत्तों को रजस्वला कह देता है ॥७६५॥

रंगगतापि क्षुद्रा शृणोति यदि परिचितं गृहायातम् ।

उद्दिश्य चापि कार्यं प्रजति ततः प्रकृतमुत्सृज्य ॥७६६॥

रङ्गभूमि में पहुँची हुई भी क्षुद्रा वेरया जब वह सुनती है कि उसके घर
कोई परिचित आदमी पहुँचा है तब कार्य का उद्देश्य करके प्रकृत काप छोड़
कर बल देती है ॥७६६॥

शाठाक्षयोद्भेदात्कान्ते इष्टिर्यया न्यस्ता ।

सामाजिकमधस्या सा कथमन्यासु याति परभागम ॥७६७॥

शिशुने यौवन के रिजते ही अरने मुन्वर प्रिय म अरियें डाली है वर
सामाजिकों के बीच आर्य कैसे अजिह होमा की प्राप्त करेगी ? ॥७६७॥

१—वेरयाप्यस्य—यह एक क्लेश-वीर्य का प्रभाव कमचारी होता था जो वेरया
के मृत्यु अरिय के सम्बन्ध की पूरी संपत्ति करता था । कुट्टनीमत के ६८ में लब्धोत्
में हमें ही 'शूलापाल' कहा है—

शूलापालस्यापितरतिपद

चेतोवशिता सत्त्वं सत्त्वे सति चास्ता प्रयोगस्य ।

न भवति सा वेर्यानामल्पापि पुष्यहृत्हृदयानाम् ॥७६८॥

मन के बिना सत्यत्व नहीं होगा, सत्त्व के होने पर अमिनय की चास्ता होती है, और वह अमिनय की चास्ता शराव, मांस और पुष्य में द्रिष्ट लगाने वाली वेर्याओं का नहीं होती ॥७६८॥

धममपि देवनिर्केतनमनःहर्षे गते त्रिदशलोकम् ।

प्राश्रितवतोऽगारया तीर्थस्थानानुरोधेन ॥७६९॥

हम लोग भी महाराज अनन्तर्यामी के स्वर्ग सिंघारने पर इसके तीर्थस्थान होने के कारण और दूसरी राह न होने से यहाँ बस गये हैं ॥७६९॥

इह तु कदाचित्किंचिद्वृत्तिनिरोधामिद्यंन्या निवृत्साहा ।

रत्नावल्पामेता विदधति करपादविक्षेपम् ॥८००॥

यहाँ कमी-कमी तो निवृत्साह से वेर्यायें कुछ भीषिका के तत्व हो जाने के डर से 'रत्नावली' (हरदेव रचित नाटिका) के अमिनय में शाय-पीर का विधेय कर देती हैं ॥८००॥

वत्सेयामूमिकास्या ह्यमनुकुप्ते नरेश्वरवमस्यम् ।

वासवदत्ताचरितप्रयोगमेवा विदम्बयति ॥८०१॥

महाराज की भूमिका इसकी होती है, यह उसके नमस्त्रिभुवा का अनुकरण करती है, यह वासवदत्ता के चरित्र का अमिनय करती है ॥८०१॥

उद्यमसाहित्यवशाच्छोमातिशयेन मदनवन्द्येन ।

धनया प्रसिद्धिराप्ता सिंहसराजात्मजानुवृत्ती ॥८०२॥

शामा के उद्यम के सहित उद्यम के समग्र्यय के कारण एष मरी प्रेरणा

यहाँ का प्रसंग है कि शूलात्मज या वरशाप्यज गणिका म एम (उन्मोच) पारर उमे अभिवय के सिद्ध बुजान बाबोंम बट देना या कि वह तो धमी रजम्बला है जैसे का सगनी है ।

१—अनन्तर्यामी—यह 'रत्नावली' के रचयिता महाराज हरदेव का उपनाम है । विश्वरूपेण में उनकी कल्पित हनी उपनाम स थी । मंजुल के राज्य चरिणी के भी उनके सिद्धी विसृपण अमन्तरी बगल के कारण उपनाम बन पड़ने से ।

स इमं सिंहं राक्षसी (रत्नावली) के अमिनय में प्रसिद्धि पाती है ॥८०२॥

विविधस्यानकरचनां परिक्रमं गात्रचलननालित्यम् ।

काकुविमक्तार्थगिरो रसपुष्टिं वासनास्यैर्यम् ॥८०३॥

मञ्जरी के नाना प्रकार की स्थानक^१ रचना के लिए परिक्रम अङ्गों को मोड़ लेने के लालित्य, अङ्गस्वर की मिश्रताओं (काकु) के द्वारा वाली के मिश्रण के प्रकाशन रस की पुष्टि वासना की स्थिरता ॥८०३॥

सास्त्रिकभाषी मौलनमभिनयमनुस्यवर्तनाभरणम् ।

मित्रामिश्रे वाद्ये लयाध्युक्तिं वर्णयति मञ्जर्या ॥८०४॥

सास्त्रिक भाषों के उन्मीलन, अमिनय, सूत्रिका के अनुरूप कठन अर्थात् नेत्ररूप रचना और आभूषण द्वारा मिश्र-अमिश्र वाद्य या (पृष्ठ भेद के अनुसार) नाट्य^२ में लयच्युति (अर्थात् लय का इतत होना) की सांग सज्जना करते हैं ॥८०४॥

एषाभिधानकीर्तनगुणितस्वधरीरकुसुमधरोपा ।

सहस्रोद्भिन्नमनोमयभावदद्या सिद्धुवारविवरेण ॥८०५॥

(रत्नावली की सूत्रिका में) उदयन का नाम लेते ही जितके अपने शरीर पर अक्षय का धार पड़ गया है जितकी कामजनित विचार की अक्षयता सहसा उद्भिन्न हो उठी है ऐसी इस पञ्चरी में सिद्धुवार वृद्ध के विवर से ॥८०५॥

१—स्थानक—मूत्रामिनय के समय चार प्रकार का पदचर होता है—मण्डल उत्पन्न भ्रमरी और चारी । 'मण्डल' के स्थानक, भाष्य आलीक प्रत्यक्ष मूल्य व रित स्थलिक, भोदित समतुली और पारबन्धी इत्यादि भेद हैं । स्थानक का अर्थ—

कटिसुप्याऽर्धपद्मारपपाशिम्या समपादतः ।

समररानया तिष्ठ त् तत् स्वात् स्थानकमदलतम् ॥

स्थानक के धीरे भी १ भेद है—समपाद ०२ वाद कागवन्ध, ०३ गदक और मद्य (अमिनय वर्ण) ।

२—वद नास्य वा स्थक जो मूत्र गीत आदि में सम्मिलित हो मिश्रमात्र है जैसे किन्तोर्योर्कपीक स्थानकी इत्यादि । अंगमें मूत्र-नीत्यादि का समन्वय न हो वद अमिनमात्र है जैसे मातृनी-मातृ गुवातावन इत्यादि ।

पर्यंती बत्सेरवरमनुकायानुकरणभेदपरिमोपम ।

साधुध्वनिमुखराननसामाजिकजनमनसु विदधाति ॥८०६॥

बत्सराज की भूमिना वाले व्यक्ति को 'साधु' 'साधु' की आवाज से सुनकर सुख वाले सामाजिक लोगों के मनो में अनुकाय और अनुकरण का भेद विदा रिया है ॥८०६॥

वत्सपतिमालिखंती कामावस्यां क्रमेण भजमाना ।

धेयपुपुलकस्वेदैरावहृति विसंपुलं हस्तम ॥८०७॥

बत्सराज का विश्व मीयती हुई क्रम में कामावस्था का प्राण करती हुई इस मञ्जरी का हाथ कम, रोमाञ्च तथा पक्षीने के कारण बिलकुल बेकाम हो जाता है ॥८०७॥

सद्योऽभ्यनुभावगणे बह्वणरसं विप्रलम्भतो मिश्रम् ।

दर्ययति निरमिकांक्षितमुद्वन्धनगोचरापन्ना ॥८०८॥

दृष्टिय में आए यह अनुभाव सन्तु के समान होने पर भी विप्रलम्भ शब्दों से मिश्र बह्वणरस को लवोगमुल की आशा से रहित करके प्रदर्शित करती है ॥८०८॥

तस्मिन्निदर्यंतीत्यं मञ्जरिनीं सामिसापमवलोक्य ।

पत्सरां राजपुत्रं किन्मसाविति वेप्रदण्डेन ॥८०९॥

इस प्रकार वृत्त्यायाय मञ्जरी का गुण पण्य कर ही रहा था कि राजपुत्र

१-अभिनेता की समय बड़ी सफलता यह मानी जाती है कि वह दर्शकों के मनमें अनुकाय और अनुकरण का भेद अपने विपुल्य में मिश्र है। उन्हें यह बताना हो कि व्युत्पन्न का अभिनय किन्ती व्यक्ति के द्वारा किया जा रहा है और व अभिनेता का हाथ रह है बल्कि उनके मन में यह भाव हो कि वह एक मात्र व्युत्पन्न की ही रंग रहे हैं। यह अभिनय की सर्वोच्च भूमि मानी जाती है।

२-बह्वण और विप्रलम्भ शब्दों के अनुभाव प्रायः एक ही बात हैं। केवल तब ही जो लोक व्यापी भाव होता है वह दूसरे में मञ्जरी भाव हो जाता है। दोनों की सहाय सुख भेदक बात यह है कि बह्वण में विप्रलम्भ की आशा नहीं होती और विप्रलम्भ में होती है।

ने मञ्जरी को उत्कण्ठ से देखकर 'क्या कह है' (यह कहते हुए) उसे वेग वेगदंड से स्वर्ण दिया ॥८०६॥

धुश्याय तस्य भावं प्रसारयन्वुवत्तिसंख्याकेतिम् ।

न्यक्कुर्वन्वारवधू सधियः प्रशस्तं बन्धकीगमनम् ॥८१०॥

रामपुत्र के मनोभाव को ताड़ कर, युवतियों के सम्बन्ध में वातकीत की केलि फैलाते हुए मन्त्री ने वेदशास्त्रों की निन्दा करते हुए कुसुमा (बन्धकी) की के गमन की प्रशंसा की ॥८१०॥

दाररतिः संततये व्याधिप्रशमाम चेट्टिकारलेपः ।

सत्सलु सुरतं सुरतं कृच्छ्राप्यं यदम्बनारीपु ॥८११॥

झगनी स्त्री में अनुराग सन्तान के लिए किया जाता है और दासी का आशिर्वादन व्याधि के शमन के लिए करते हैं लेकिन वही मुख्य सुरत है जो परकीय नारियों में बड़े बड़े से मिष्ट पाठा है ॥८११॥

स्वध्यापारिषमते परचिन्ता नास्ति मे कदाचिदपि ।

परयन्त्यास्त्वामीदृशमद्य तु मे मानसं व्यपितम् ॥८१२॥

(यह कह कर उसने परकीय नारी के प्रति शूरी के बचन का उदाहरण दिया)

'मैं अपने काम-काज में लगी रहती हूँ, कभी भी दुखों की चिन्ता मुझे नहीं होती। जब मुझे ऐसा देखते ही मेघ मन व्यपित हो उठा ॥८१२॥

यदि वेधि तस्य वसतिं सामर्ष्यं यदि भवेत्ततोऽप्यविफलम् ।

सदगरवा दग्धविधिं नगुर्वे संजूर्णमिव्यामि ॥८१३॥

अगर उसका घर जानती और अगर उससे भी आर्थिक सामर्थ्य वाली होनी तो उम जले विपाता का सभी बानर लाठियों से पूर कर देती ॥८१३॥

वपुरिदमनुपममीदम्यदि विहितं तव पुत्राणि हृतघात्रा ।

अनुस्परमणादिरहात्स्निमितिं वृत्तं धग्यजमफलम् ॥८१४॥

उमम इस प्रकार उम अनुपम शरीर बनाया है तब अनुपम मिय से न पिपा कर क्यों उमल सर अगम की निष्फल बना दिया है ॥८१४॥

शैशवमस्तु जरा वा व्याधिर्वाह्येन्द्रियप्रणाशो वा ।

स्वाकारं तादृष्यं न तु कुपतिकदर्पनाप्रस्तम् ॥८१५॥

सङ्कपन हो या बुढ़ापा हो या व्याधि हो या किमी रोग से मृत्यु हो लेकिन
शामन आकार से युक्त यौवन कुरूप पति की पीड़ा से प्रस्त न हो ॥८१५॥

केसि प्रदहति मज्जां शृंगारोऽस्थीनि चाटव प्राणान् ।

न करोति मनस्तुष्टिं दानमभयस्य गृहमतु ॥८१६॥

कुरूप पति के साथ शरीर देह के मांस को, उसका गृहकार इन्द्रियों को,
उसके चाटुबचन प्रार्था को मुक्तकाने शकते हैं, उसके कुछ देने म मो मन को
कृतोप नहीं होता ॥८१६॥

कुत आगतासि कस्मिन्वेलामियतीं स्थिता किमर्थमिति ।

पुच्छन्नस्वस्यमना जनमति गेही शिरःशूलम् ॥८१७॥

कहाँ से आ रही है ! इतनी देर तक कहीं रही ! क्यों रही ! इस तरह
असह्य करके पूछना दुःखा पर बाला शिर रद पैदा कर देता है ॥८१७॥

यदि भवति दैवयोगाच्चक्षुर्विपमे समुज्ज्वलस्तृष्णा ।

तत्रात्मानं क्षपयति जायां च रटन्गृहस्वामी ॥८१८॥

यदि दैवयोग से कोर सुन्दर जवान आँसों के सामने आ गया तो परवासा
पत्नी को झोसते-झोसते अपने को पीड़ित करता है ॥८१८॥

सविवादे परलोके जनापवादे च जगति बहुवादे ।

देवाधीने प्रलये न विदग्धा ह्यारयति तारुष्यम् ॥८१९॥

परलोक के सम्बन्ध में तो बड़ा विवाद है, संसार म बहुत लोग बहुत तरह
की बातें करते हैं, प्रणय देव के अधीन होता है, देवी स्थिति में बहुत क्रिया
अनी जगती धर्म नहीं नष्ट करती ॥८१९॥

दुर्मसृफरास्फालनमलिनोऽप्रियमाणशोभमनुदिवसम् ।

सुहृमपि पतितकल्पं स्तनद्यालिनं तव पयोधरद्वन्द्वम् ॥८२०॥

द मनी पानी, कुरूप पति क हाथ के आभरण म प्रतिदिन जिनकी शोभा

मस्तिन की जा रही है ऐसे उग्र भी स्नान गिरे-झिसे ही है ॥८२ ॥

पर्यङ्क स्वास्तरण पतिरनुकूलो मनोहरं सवनम् ।

सुखयति न लसाद्यं स्वरितक्षणघ्नीयसुरतस्य ॥८२१॥

सुन्दर बिछानन वाला पलग अनुकूल पति और मनोहर निवास-गृह जस्ती से घबरा कर के बौर्य सुख के सामर्थ्य दिम्से की बराबरी नहीं कर सकते ॥८२१॥

सहसा संकटयत्संन्यवितर्कितसंमुखागतेनापि ।

अभिलपितेनोद्वृष्टकमनस्पशुभकर्मणा सम्यम् ॥८२२॥

सकुरे माग में सहसा बिना पहले सोचे-बिचारे सामने आ पहुँचे दिव के द्वारा टक्कर अनल्प पुण्य हो वमी प्राप्ता है ॥८२२॥

प्रीतिं किल निरतिशया स्वर्गं परलोकचिन्तकैर्गवित् ।

तस्यास्तु अमलामो हृषयेप्सितपुण्यसंयोगात् ॥८२३॥

परलोक के चिन्तक पुरुषों न निरतिशय प्रीति को स्वर्ग कहा है और वह प्रीति मन पादे पुण्य के संयोग से होती है ॥८२३॥

अतटस्यस्वादुफलग्रहणव्यवसायनिश्चयो येषाम् ।

ते शोक्वसेशुद्धां केवलमुपयाति पात्रतां मन्दा ॥८२४॥

अस्तिर (या तट पर स्थित न रहने वाले) मीठे फल के ग्रहण के लिए उपयोग का बिन्दे निश्चय होता है वे मन्द पुरुष केवल शोक, क्लेश और रोगों के पात्र बनत हैं ॥८२४॥

फि प्रतिभूला ग्रहगतिस्त परिणतमन्यअमदुर्धरितम् ।

स्वानुष्ठानाभ्यसर्न कि वा तस्यात्मयोनिहृतकस्य ॥८२५॥

क्या महो की गति हो अनिकूल दे या अपना पाप ही अथ पफ शुका है निष्ठा उक्त सुप विबला का अपना भटना बरु है ॥८२५॥

येन सपत्नी स युवा स्तौति समीरं त्वदंगसंस्पृष्टम् ।

त्वत्पादान्तप्रान्तभुवे स्पृहयति ककुर्भ त्वदाश्रितां नमति ॥८२६॥

त्रिगुण बेनारु बर पुत्र उर अन्न के सम्पर्क वाला समीर को स्पर्श करता

दे, मेरे परण वहीं चल रहे हो उस परती की ध्या करता है और तरे द्वारा सेवित दिशा को नमन करता है ॥८२६॥

ध्यायति मुष्मद्रूपं त्वन्नामकवर्णमालिकां जपति ।

एकप्रोक्तचेतास्त्वदङ्गव सौख्यसिद्धिमभिकांक्षत ॥८२७॥

तरे रूप का ध्यान करता है तरे नाम क अवर्णों की माला पढ़ता है । उसने जानने विषय को स्वप्न कर दिया है तरे अंग से छोटप की सिद्धि प्राप्त हुआ ॥८२७॥

उत्सुष्टसत्र कार्यस्त्रियंग्ग्रीबलोक्यमवतीम् ।

कुस्ते प्रहाप्ररण्यां यातायाते शतावर्ताम् ॥८२८॥

सारा कामकाज छोड़ कर कुछ गहन उड़ी करके इगता हुआ पर के ध्यान वालों वाली में मीठों चक्कर लगाया करता है ॥८२८॥

दृष्टेऽसि सया सुचिरं गेहाम्याये परिभ्रमन्स्पृहमा

सदृश एष दत्त प्रामृतमेवतय प्रहितम् ॥८२९॥

(दूती का कामुक क प्रति वचन)

पर क नशीक मृत हुए तुम्हारे । उसने हठरत म दर तक देगा है उसने यह संदेश और उपहार दिया है ॥८२९॥

शुष्यति सालममाना भवत्कृते घेरमनिगमावसरम् ।

इति अतुरशठरुप्रोभिविसुष्यते त्वदपदेशेन ॥८३०॥

तुम्हारे लिए पर स निराल काम का माग न पाकर वह खगती का रही है—इस प्रकार है अतुर, भूत तिनको तुम्हारे निमित्त करके ठठका चीज हरण करती है ॥८३०॥

कि वा कथितरधिकैरस्यानाबिष्टचेतसस्तस्या ।

मनुतिष्ठ ययामुत्तं स्वतो माशरच जीवरदा च ॥८३१॥

कथित वचन में क्या ? जो कि उपाय जाना उपाय में धनना विषय लगा है तो कैसा उनि हो परी करे, कौनसे सुमम उगमा नय कर जीवरदा दोनों गप्पन है ॥८३१॥

कुलपतनं जनगर्हा नरकगतिं प्राणित्तप्यसन्देहम् ।
भङ्गीकरोति सखणमवसा परपुख्यममियाती ॥८३२॥

पर पुख्य का अमितरस करती हुई अथवा तत्सख कुलपतन, सोमों की निन्दा नरक की गति जीने में सन्देह अङ्गीकार कर जाती है ॥८३२॥

स तु लिखति वासपत्रं त्यजति कुटुम्बं ददाति सबस्वम् ।
यावन्न भवति पुरतः परमुवति प्रोजिम्भतावरणा ॥७३३॥

परबीमा में आसक्त कामुक नौकरी का स्वीकृति-पत्र लिखा देता है^१ परिवार को छोड़ देता है अपना सब कुछ हटा देता है तब तक जब तक कि पर्याय मुक्ति आबरस छोड़ कर उसके सामने नहीं हो जाती ॥८३३॥

दृष्टं यद्दृष्टव्यं व्यपयास कौतुकं विदितमन्तः ।
इति याति मनसि कृत्वा विहितविधेयस्वतस्तूर्णम् ॥८३४॥

जो देना या देख लिया कौतुक चला गया, आसक्तनी जान ली, पैसा मन में करके कृतकृत्य होकर बह शीघ्र चला जाता है ॥८३४॥

सापि छिन्नाद्योतनगृहीतमुक्ता विसोव्यन्त्याशा ।
विद्यति गृहं संवृस्ता सर्वत आशंकित्वा सर्वैलक्ष्यम् ॥८३५॥

बह पुरुबली कुटुम्बी बजाती, दिशाओं को निशाणी, डरी-डरी सब घोर से आशंकित होकर लज्जा के घाप पर में प्रवेश करती है ॥८३५॥

नवचारित्र्यं शा सुरचितकुलटोदितेषु नो निपुणा ।
पुष्टा नव गतासि त्वं न भवविदिति सम्भ्रमाद्भ्रूते ॥८३६॥

त्रितया शील अभी-अभी का मंग हुआ है, जो कुलटा की बही बानों के अनुकार चलने में निपुण नहीं है ऐसी स्त्री 'तू क्या गई थी' पर पूछ जाने पर हड़नही में बह पढ़ती है 'करी मरी' ॥८३६॥

१—वासपत्र लिखति—बीकरी करना स्वीकार कर लेता है। प्राचीनकाल में छिन्नी के पदों बीकरी करके के निपु विद्यमानुसार ताम्र-पत्र लिखन की प्रथा थी। बहुत बरार के प्राचीन दामन पत्र मिले हैं।

एते दोषा बहव पुर्या अपि घपलकौतुक्यं पाय ।

स्वं च ग्रहेण सग्ना कार्यविमूढात्र तिष्ठामि ॥८३७॥

बंधन और कुत्सल-भरे पुरुष अरण्य चौड़ा होने पर भी कुपित हो जाते हैं। पुरुष का इत पकड़ लिया है और मैं यह कुछ मा नहीं कर पा रही हूँ ॥८३७॥

इति दोलायितहृदया स्थिरीकृत्याम्यस्तकर्मणा दूत्या ।

दृष्टेति शङ्कमाना पदे पदे चलति पर्णेऽपि ॥८३८॥

जो अजन काम में अम्मल है एसी पूरी तरह इत प्रकार की बल से चलने के लिए स्थिर कर दी गई, दोलायित हृदय बाणी यह पदों के भी गहरने पर भी देख ली गई यह शंका पद-पद पर करने लगती है ॥८३८॥

सर्वत्र विक्षिपन्ती मुहुमु हुश्चकिततरलिते नेत्रे ।

प्राप्ता संकेतमुर्व शतगुणितमनोरथाकृष्टा ॥८३९॥

बार बार अने अन्तित तरलित नेत्रों को शिवाओं में फँसाती हुई तीव्र मनोरथा से विषयों यह संकेत स्पष्ट तक पहुँचती है ॥८३९॥

भयभृङ्गारप्रीठामिथ्रीमुतानुमायसन्दोहम् ।

जनयन्ती लोलांगुणदृष्टादृष्टांसकुचनानि ॥८४०॥

यह मन, शृङ्गार और लज्जा से मिले उसे अनुमाय-अपूर को प्रकट करती है, अंगुण पक्ष के बंधन होने के कारण उसके कच, स्तन और नाभि कमी-कमी दिख जाते हैं ॥८४०॥

नीवीरमघनारम्भं निरपत्तो न न न यामि यामोक्ति ।

निमृतास्फुटानिधानैः पल्लवयती स्मरस्य कर्तव्यम् ॥८४१॥

नीवीर-अभि को शिथिल करने का काम यह रोजन लगती है, भूत में जाती है, यही जाती है इस प्रकार के अन्वय अंगुण यमनों से कामदेव के कसप्य की पल्लवित करती है ॥८४१॥

नयतीवान्तविलयं प्रसमाना सवगानाणि ।

यं हिसप्यतेऽययोना तित्त सस्यामूर्धं पुरत ॥८४२॥

मानों छोटे अहों को प्रगती हुई कामुह को अरन भीतर केत निर्जित कर

लेठी है, जो कि परकीया का आसिद्धन किया जाता है ठठके लाने समुत मी
कन्वा है ॥८२॥

न कृतं तव रहसि पुरो वा व्यावृत्तकण्ठकुण्ठया वाची ।

गेहस्वामितिरस्कृतिनिष्पादितदुःखयोगनिर्वहणम् ॥८३॥

'एकान्त में हमारे लाने बाण से कथे कंठ के कारण कुपितत वाली से
पर के लामी के हाथ तिरस्कारों के कारण हुए अपने दुःखयोग की समाप्ति
पवन्त ब्यानी मीने ननी करी ॥८३॥

उपधानोद्भूत्य भुजाबन्धोन्व निर्विशंकमाबन्ध्याम् ।

संभनितोष न सुष्यं शिथिलाङ्गं रतिविमर्दखिन्नाभ्याम् ॥८४॥

भुजाओं को तक्रिया बनाकर शङ्करहित मात्र से रतिविमर्द से हम दोनों ने
परस्पर में बांध छटा कर शिथिलाङ्ग हां शयन नहीं किया ॥८४॥

भारतगुहादानीं प्रभ्रष्टाद्य स्वादुभोजनं विजने ।

स्वकरेण मया दत्तं निवृत्तहृदयेन नापिर्तं भयता ॥८५॥

अपेक्षे में अपने पर से स्वदिष्ट भोजन दिया कर ले आई और अपने
हाथ से दिया मी ठव मी मुझे दिस वाले हमने उसे बँक दिया ॥८५॥

न कृता धरित्ररसा न च भुक्तं त्वच्छरीरमपर्यन्तम् ।

दृष्टादृष्टमप्यत्र क्व यामि किं वा करोमि दुर्जाता ॥८६॥

मीने छपने रहित को रता नहीं की और न हमारे शरीर को त्वेच्छापूयक
उपभोग किया, दृष्ट और अदृष्ट दोनों और से अप्य दुर्जात में नहीं व्यर्क,
क्या करूँ । ॥८६॥

अथगुण्डनमिनयस्ती स्वैरासायं च मन्दसंधारम् ।

सम्प्रति मम पापायां करपिहितमुखा हसन्ति तत्त्वशा ॥८७॥

मैं पापिन परा बरमे और तिलक-मात्र में प्रेम करती हूँ, पीवी धाराज में
बार्ते बरती ठव पीवी गणग में पत्रले हूँ ठव मधाम पर जाना वाले सांग
हाथ से मुद दक कर हैंठ है ॥८७॥

यासामासीत्सख्यं मया सप्तं समवयंकुलस्त्रीणाम् ।

ता वारयति मत्त कुसङ्ग इति तद्वियन्तार ॥८४८॥

बचकर की अपत्या वाली तिन कुलाग्रनाथा ही मेरे साथ मेरी ही उनक निबन्धन करने वाले साथ 'कुसंग' कह कर उन्हें मुझसे दूर लेते हैं ॥८४८॥

पिम्वादान्परिजनत् सहमाना मन्युरोपगतवदना ।

विष्ठासि निरभिमाना निजनिमित्तदोषदोर्वत्यात् ॥८४९॥

धरने ही दोष सह हूँ कमजोरी के कारण परिजन में विश्वास की बातें सहती हूँ, कुल में उत्तर न दे पाती हूँ मुझे मूल्य वाली बिना अभिमान के पढ़ी है ॥८४९॥

सद्भिर्विधीयमानं प्रसङ्गपतितं पतिव्रतास्तवनम् ।

हृदयं न दूयमाना मूढा सीदामि शृण्वन्ती ॥८५०॥

सत्युक्तों द्वारा बचकर पर की गई पतिव्रता वाली की स्तुति सुनती हूँ मुझ में हृदय में पीड़ित होती है ॥८५०॥

भासन्न उपविशन्ती मन्दाक्षा मां निपेक्षु मसमयां ।

धन्योन्यमीक्षमाणां शक्तिजना संकुचन्ति भुञ्जानां ॥८५१॥

भीजन पर बैठे हुए बिरादरी के लोग पास में बैठती हूँ मुझे उगारना के कारण मना करने में अत्रमय होते हुए परस्पर पर-दूरे की साझने हुए संकोष का अनुभव करने है ॥८५१॥

प्रकटोक्तास्त्वयैवं क्षणमात्रममुञ्चता गृहोपान्तम् ।

प्रस्मासु इयं मन्तां प्रेमस्निग्धामनुद्धरता ॥८५२॥

मेरे पर के आश-वचन के ग्यान की क्षण भर भी न छोड़ते हुए और हम पर पढ़ी प्रेम से स्निग्ध दृष्टि को न हटाते हुए तुम ही मुझे बाहर कर दिया ॥८५२॥

परगृहविनाशपिशुना सुभगं मन्याभिरुपप्लुतदर्पां ।

इकलासतुल्यपणा भवन्ति युष्मद्भिषा एव ॥८५३॥

उपसारे बच ही लाग दूरे का पर बौरद करने में पणपण गण, करने

को अमिमानपूर्वक तुमग एषं ससुप्तोत्सव माननं बाले, गिरगिट के समान राग
(रंग, प्रेमभाव) बदलने वाले होत हैं ॥८४१॥

अनभीष्टव्यवहारप्रभवशुभा पौडिताक्षरा ह्यस्यम् ।

सोपालम्भा विजने धन्या शृण्वन्ति बन्धकीवाच ॥८४२॥

इस प्रकार अनभीष्ट व्यवहार के कारण उत्तरक क्रोध से दीर्घित अक्षरों
वाली उपालम्भ मरी कुतूहल शिकी की बातें एवान्त में मन्व शोभा ही सुन पते
हैं ॥८४२॥

परतक्ष्णीसद्भावस्नेहापितनयनभागवत्स्य ।

वेरयारचितविभासा करिता पुरतः पुरणतृणस्तुत्या ॥८४३॥

परक्षीया ठकरी के शाय छद्मभाव और स्नेह से अर्पित लोचन के बीच से
देखे गए पुरुष के सामने कहे हुए वेरयाओं के निताघ पुराने पाष-मूठ के
समान हैं ॥८४३॥

उपवनरचितमहोत्सव आराधितदेवताविशेषाणाम् ।

वचनमपि प्रेमार्द्रं स्त्रैरिष्या श्रवणमेति पुष्पवताम् ॥८४४॥

अिन्दोने अपने देवताओं की आराधना की है उन्हीं परक्षीया ठकरी रति-
महोत्सव का आनन्द देती है, उठ स्त्रैरिषी नारी का प्रेमार्द्र वचन भी पुरुषवनों
के हान तट पहुँचता है ॥८४४॥

वा गणना विषयवशे पु सि बराके पराङ्गनास्पृहया ।

व्याजेन बौक्षमाणा ध्यानभियां स्पृष्टति संज्ञानम् ॥८४५॥

विषयो के बचीभूत बेकारे पुरुषों की गणना क्या ! तथम स्त्री किसी प्यात्र
म ट प्यगत करती हुई फिर ध्यान-भावना बाधे मुनियों के भी सम्मान को छू
लती है ॥८४५॥

शिरसा रचिताजलमो वसति निदेशं त्रिविष्टपे गणिका ।

परदाररसाङ्गटस्तथापि भेजे शचीपतिरहस्याम् ॥८४६॥

स्य में गदिकाएँ गिर पर अजलि बधि आशा वाचन करती छती हैं

तथापि परकीया के प्रेम में स्मरुष्ट होकर शचीरति इत्यादि न करन्त्या को उपमोग किया ॥८५८॥

अप्सरसः किं न वशा वैदग्ध्यवतां च किं न धीरेयः ।

येन अकारासक्तिः गोविन्दो गोपदारेषु ॥८५९॥

क्या जीहृष्ट्य के वश में अप्सराएँ न थीं क्या वे स्वयं विदग्ध जनों में भ्रष्ट न थे कि उन्होंने गोपियों में आसक्ति की ॥८५९॥

श्रैलोक्यागता वैरया स्वाधीना यातुधाननापस्यः ।

तदपि जहार कान्तः दशरथतनयस्य रामस्य ॥८६०॥

वीनो लोको की वैरयाएँ राष्ट्रतापिस्ति उषस्य के अर्पित थीं तथापि उन्होने दशरथतनय राम की पत्नी का अपहरण किया ॥८६०॥

यद्यपि मङ्गल्यं जननी निजपक्ष समर्थनि कृतोत्साहाः ।

आक्षेप्तुमाचक्षते नपसुतसचिवाधितां वाचम् ॥८६१॥

तब धरने पक्ष के समर्थन में उन्माह करके मङ्गली की माता न राजपक्ष के पक्षी की बात के परहनाय कहा ॥८६१॥

षट्युवतिषु प्रगल्भो नागरिकादशनहृतपु स्त्वः ।

प्रामोषितोऽविदग्धो निन्दति गणिकां भवद्विषोऽञ्जयम् ॥८६२॥

षट्कारिणों में प्रगल्भता दिखाने वाला, नागरिका की ही देखते ही अपने दुस्व से स्तुति हो जाये वाला, गर्वीर और अविदग्ध धारा प्रिया आरमी गणिका की अपहृष्ट निन्दा करेगा ॥८६२॥

नाद्र यस्ति मनः पु सामवगाहितमोनकेतुरास्त्राणाम् ।

मरादशनदातहीनं श्रीषत्पतिवन्द्यनीसुरसम् ॥८६३॥

जिन पुरुषों में सामवाय का धरगाहन किया है उनके मन को जीरित यदि वाली कुलदय नारी का नगरण और दस्तएन में रहित मुरत नहीं निपकता है ॥८६३॥

स्यापय घटकं सावत्कृद भूमितसे तृणं समान्तरणम् ।
सुरतोपक्रम ईषम् प्रायो ग्रामोणतृष्णामियुनानाम् ॥८६४॥

पशु को एक एक रख दो और जमीन पर पाल की सिद्धावन बाल दो इस
कार ग्रामीण सुबह-सुबहियों के सुरत का उपक्रम होता है ॥८६४॥

बहस्रोशीरविलिप्तं क्षुत्सितजूटककोणमत्सिकामाल्यम् ।
पामरनार्या दष्टं स्मरोऽष्टमिति मन्यते विटो ग्राम्यम् ॥८६५॥

रात्री कूट के छेप लगाए, बाली में मत्सिका की माला लपेटे गाँव का
रहने वाला विट अथ गाँव की स्त्री को देखता है, तो अपने को मैं क्रमदेव हूँ
मानने लग जाता है ॥८६५॥

गृहकर्मकृतायासप्रस्थिन्नां सप्तिलकार्यनिर्याताम् ।
उपपत्तिष्यैति हर्षान्तिद्यागमे पामरीं प्राप्य ॥८६६॥

घर के काम-काज में परिभ्रान्त पर्वीने उस तर पानी लेने के लिए निकली
पामरी को बार के रात्रि के आरम्भ में पामर प्रणम होना है ॥८६६॥

कूपसिन्धुषट्टाया नार्मास्तत्फाणुनिहितचरणया ।
बलितप्रोषं बोक्षितमुद्यति मनो ग्रामवासिनां यूनाम् ॥८६७॥

कुर्वे में पहा डालकर, बीच वाले काठ पर पैर रखकर उस नारी के हाथ
गहन मोड़कर दृष्टि डालना ग्रामीण सुबह के मन की उभार देता है ॥८६७॥

सम्नोप्रसि यत्र गात्रे कयमपि देवेनदेवयात्रायाम् ।
अद्यापि तन्न मुञ्चति पुसकोऽगमकष्टकं तस्या ॥८६८॥

गाँव में ठाकुर जो भी वात्रा के समय किसी प्रकार देववश किये चण्ड में
हम झूट ही उठके उठ चण्ड को आज भी रोमांच नहीं छोड़ता ॥८६८॥

उन्वेतु कर्पासं प्रविष्टया गहनवाग्निर्का शून्याम् ।
टंकारितेन संज्ञा कृता तया त्वं तु वेदिस नो मूर्ख ॥८६९॥

कयम सुवन के लिए निज्जन कारिष्ठा में गई उमने टूट्टू की आवाज न
इत्याग किया फिर भी तुव एके मूर्ख ही कि न समझ सक ॥८६९॥

शालिगितमुसलायास्त्वय्येव निविष्टचघुपस्तस्या ।

श्रावुस्या भ्रमति पुरो जात सन्नु शालिकण्डने विप्र ॥८७०॥

मुक्त को शालिगन किए हुई उस स्त्री की शक्ति समान श्रावण-गम चक्र पर काटते पुणे, हुमते जो लगी रही उसमें माथे के धान कृत्न में विप्र हो गया ॥८७०॥

त्वा मोष्टमाक्षिपन्तं पारर्वस्यै स्तूयमानसामर्ष्यम् ।

गृहकर्तव्यं त्यक्त्वा सापरमदाटरेध्रेण ॥८७१॥

जब तुम गुणेल बला रहे व धीर पास जाने मुन्गरी प्रथमा कर रहे व तब वह पर का काम छोड़कर तुम्हें दरवाज के द्वार में निहार रही थी ॥८७१॥

त्वयि मार्गनिकटवर्ति यत्रिचेतितन्नेदमा तथा सुमग ।

प्रत्यासन्नगृहेष्वपि कृत् प्रसह्य स्मरातुरो लोक ॥८७२॥

हे सुमग, जब तुम पर के निकट मार्ग में रहते व तब वह प्रान्त आदि जगित कर की परबाह न करके का तुम्हें देगन के लिए गयी रहती थी उस तबव बहोस के रत्न पास लोग इच्छान् कामतुग हो उठे ॥ ८७२ ॥

इति चतुरदूतिकोन्तवर्धितसीभाग्यवकपूर्णस्य ।

कर्मिसहस्रोत्तसितं भवति मना प्राम्ययिद्धस्य ॥८७३॥

इस प्रकार सागाह कृती के कहने पर धरम बहु रूप शौभाग्य के रूप में पूरा गाँव के निवासी कामुद का मन दृष्टी तरंगों में उलझा हो उठता है ॥८७३॥

विनिवार्यं सत्यवतितबाक्यविभासं मतोलमाङ्गेन ।

श्रीसिंहमदस्य सुतं समुवाच यचोऽय नर्तकावाय ॥८७४॥

अन्तर उस यदिका द्वारा प्रकृतिक धरम विन्दार को शिष्टमन करके साक्षर नमदानाय में धीनिमद के पुत्र में रहा ॥८७४॥

मायनभूमी भवत कुशीलवा पोहनात्या मुनय ।

अप्सरसः स्त्रीसास्ये गाधर्वे बन्धनजन्मनस्तनय ॥८७५॥

'धनिना व नरक की भूमि में (उठ भूमि का स्वयं धरना कर)

मरुत और वृषदे नटविशेष कोइल आदि मुनि, स्त्री-रात्र क नाट्य में अष्टाष्टक,
गान्धर्व में कमलाग्न्ना प्रजा के पुत्र नारद ॥८७५॥

सुपिरस्वरप्रयोगे प्रतिपादनपद्धितो मतङ्गमुनि ।

यदि रञ्जयन्ति हृदयं भवती भूमिस्पृशां कुत शक्ति ॥८७६॥

तथा बंशी आदि के यजाने में निपुण मतंग मुनि जैसे लोग जब आपके
हृदय का रंजन करते हैं, फिर हम वृषो क वादियों की शक्ति कहाँ ? ॥८७६॥

अभ्यधिकं घृष्टत्वं प्रायेण हि शिल्पजीविनो भवति ।

आश्रितनर्तकवृत्तविशेषतो विजितरङ्गस्य ॥८७७॥

यात्र शिल्पजीवो (कलाकार) लोग बड़े ढीठ हुआ करते हैं, उनमें विशेष
रूप से वह जो रंगमंच पर अधिक पाया हुआ नटक की जीविका वाला प्राणी
है ॥८७७॥

विज्ञापयाम्यतस्स्वो निर्मितनाट्यप्रजासुजा सद्यम् ।

अवसोकयाङ्कमेकं मा भवतु मम धर्मो वध्य ॥८७८॥

इसलिए हे राजन्, मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप नाट्यप्रेमी प्रजा के
के लिए अधिक एक अङ्क का अवसोकन कर लें जिससे मेरा धर्म निष्कल न
हो ॥८७८॥

इति वषमन्नरभर्तुं पुत्रेण स चोदितो भ्रुघोन्नतया ।

रक्षिते सकलातोषे नियोजयामास सूत्रधृतम् ॥८७९॥

यह कहने पर राजपुत्रद्वारा भीरे ऊँची करके प्रेरित हुए भगवाणार्थ म तथा
प्रकार के बातों के स्वयमेव हो जान पर सूत्रधार की नाटक आरम्भ करने
के लिए आज्ञा दी ॥८७९॥

१—वषान् बीजा मुरज पंती और कांस्व ह्य चतुर्विध वाद्यों के सुर मिला
जैन के परवान् ।

२—सूत्रधार—बीजसहित नाटक का अनुष्ठान सूत्र कहल ता है उसे धारण
करन वाला नाट्यशास्त्री ।

वायिकदत्तस्यानक उद्ग्राहितमित्रपंचमे सम्पक् ।
प्रावेधिकया ध्रुवया द्विपे ग्रहणान्तरेऽविश्लूत्रो ॥८८०॥

क्यों ब्रह्मण बाण (वायिक) के हाथ स्थानक लिए ब्रह्मण पर उभर करु
कार मन्त्रक प्रकार म मध्यम स्वर की भुक्ति स पुत्र पंचम स्वर क मण पन्ने
पर, प्रावेधिकी मूकानि के समान होन पर एवं द्वितीय मय (एक विद्युत
प्रकार के लय) के अन्तर लेन के बाण मन्त्रपर मे प्रवेष्ट किया ॥८८०॥

उत्साहभावयुक्त सामाजिकहृदयरंजनं बुध्यन् ।
कविनैपुणवत्तेश्वरचरितन्वविधेयशब्दसामग्रया ॥८८१॥

उत्साह के मन म पुत्र कवि की निरुक्त की प्रकृत अन्त बाण वाग्युक्त
क चरित क प्रयोग में अन्त बाण की सामग्री हाथ सामग्रीक (एक) लोगो
क विश्व का अनुभव करता हुआ ॥८८१॥

षष्टकलापरिमाणार्ण ध्रुवां परिक्रम्य शाललयमुक्ताम् ।
प्राह्वय नटो कृत्वा तया समं स्वगृहकायसंलापम् ॥८८२॥

काल और लय से पुत्र अठ कलाओं (नाचों) के परिमाण वाली मूक

१—वायिक उच्य स्थायक (स्वर स्थायता) देना है अनुसुमार गात्र कला अथवा
मित्र-वद्यम स्वर को उनके माप मंगल कर कला है देना कि करा है—

‘स्थानद्यदिमया-मिक्षो गनद्यत्यः सुगतरः ।
श्रीमहस्त कथामिक्षो वायिको रल उच्यत ॥

तथा—

‘गातृणां स्थान-गातृनां तदावच्छेदने तथा ।
वायिकस्य गुणा प्त मया संक्षेप दक्षिणः ॥

संगीतदामोदर

२—एक एक प्रकार का गीत है जो गत द्वारा पात्रों के अन्त की मूकता के लिए
गाया जाता है ।

३—स्थानक की प्रायोगिक प्रयोग इस प्रकार है—

का गान कर, नदी को पुष्पा, उसके साथ अपने घर के काय सम्बन्धी बातचीत कर ॥८८१॥

सूचितपात्रागमनं किञ्चिद्गत्वा पदानि ललितानि ।
निश्चक्राम गृहिष्या सार्धं निःसरणीतेन ॥८८२॥

पात्र के आगमन सम्बन्धी सूचना दे, कुछ ललित पदों की प्रस्तुत कर, निःसरण गीत गाते हुए (बद रूपधार) नदी के साथ सम्बन्ध से निश्चक्र गया ॥८८२॥

आधित्यं कयोद्घातं प्रविशेश ततः सविस्मयोऽमात्यः ।
दुर्घटसंघटनेन क्षितिनाभस्योदयेन मुदितश्च ॥८८३॥

तब कयोद्घात का आभय लेकर आत्तुर्य से मरे भंभी (वीरगणराज) ने प्रवेश किया, बद रूपधार के विचित्र रूप से घटित उदय के कारण मुदित गया ॥८८३॥

भीहृषो निपुणः कविः परिपदप्येषा गुणप्रहिणी ।
लाकं हारि च यस्मिन्परितं नाटये च दद्या वपम् ॥

१—बद पात्र रूपधार के बड़े हुए अपने वृत्त के समान वाक्य या अर्थ प्रकृत करके प्रस्तुत करता है बद आभुय 'कयोद्घात' करवाता है—

स्वेतिवृषस्य वाक्यमय वा मय सूत्रियाः ।
गृहीत्वा प्रविशत् पार्थ कयोद्घातः स उच्यते ॥

जैसा कि 'रत्नावली' में रूपधार के बड़े हुए 'हीनाम्बस्मात्पि (१११) इस वाक्य को पहले हुए वीरगणराज प्रस्तुत करता है ।

२—विचित्र यज्ञा यह हुए कि रत्नावली को ज्ञान के लिए वीरगणराज ने अपने बंधुओं को भेजा था । वहाँ से भंभी समुभूति और रत्नावली को लेकर लौट ही रहा था कि समुभूति भीम भीम राज्य में आने ही गई । रत्नावली बहूत-बहूत कुतूहलपूर्वक बंधुओं द्वारा यथा भी गई और वीरगणराज को चर्चित कर ही गई । उपर बंधुओं और समुभूति के भी यह ज्ञान की खबर मिल जाती है । इस प्रकार भंभी गर्वनाशान्त पंगण उदयन के समुद्र की भगवान्ता में बहुत प्रसन्न था ।

प्रासादमास्हन्तं कुसुमायुधपर्वचर्चरीं द्रष्टुम् ।

निदिश्य वत्सराजं समनन्तरकार्यसिद्धये निरगात् ॥८८५॥

द्विः प्रासाद पर मन्मथोन्मथ^१ क हरप बचरी^२ को देखन क-णिण मयन के प्रासाद पर बङ्गन हुए बत्तराज की मूयना दकर आग क पाप की सिद्धि क लिए^३ निकल गया ॥८८५॥

अथ विद्यति स्म नरेन्द्र प्रासादगतं समं वयस्येन ।

अवलोक्यन्प्रमोदं प्रमुदित चेत्ता स्वसीक्यसम्पत्त्या ॥८८६॥

तब अपने मिन विदूषक के साथ प्रासाद पर गए, उन्मथ क आनन्दोन्नात का अवलोकन करते हुए, अपने सीक्य की सम्पत्ति से मुग्ध राजा ने प्रवेश किया^४ ॥८८६॥

विस्मयमानाकृष्टं प्रोत्फुल्लविमोचने ततो विसृजन ।

नृत्यति पीर जनाथ प्रोवाध वयस्य परम परयेति ॥८८७॥

आश्चर्य के साथ स गिवा हुआ, विस्मित प्रांगो को दीङ्गता हुआ राजा नाचते हुए नामरिही की आंर इशाण करके बोला—मिन देतो दगो ॥८८७॥

१—यह शायद प्राचीन काल में बसन्त ऋतु के आरम्भ पर किया जाता था जो आज 'होली' के नाम से कहा जाता है । इस उत्सव में विशेष रूप से उद्दाम नृत्य-नाच के साथ नगर के धी-मुदर मगजान् बसन्तरेव के आपनन (मन्दिर) में पहुँचते थे और उनकी आचना करते थे ।

२—बचरी यहाँ गीत भेद न होकर हृदय शीतल के अर्थ में संगीत होती है ।

३—रानाबली को उद्दाम से मिथान और उसके साथ विवाह करान की वयस सिद्धि के लिए ।

४—इस प्रसंग का श्लोक है—

राज्यं निर्वृत्तं शत्रु पाप-साधिषु नस्तः समस्तो भर ।

सम्पद्पालनसासिताः प्रशमिताशपायसर्गा प्रजाः ॥

अद्योतस्य मुता समन्तमयस्सै चति नाम्ना धृति ।

कामः काममुपलव्य मम पुनर्मनं महानुल्लसः ॥

रत्नावली १७८

तुल्यशिशुतरुणवृद्धं समगुप्तागुप्तमुवतिपरिचेष्टम् ।

अगणितवाच्यावाच्यं त्रिभन्तिजना प्रवृद्धहर्षरसा ॥८८८॥

सौग इस तरह मझी कुशी से श्बेडा कर रहे हैं कि यालक, नवान और बूढ़े में कोई भेद नहीं रह गया है वेरदा और पदानशीन औरतें भी बराबर हो गई हैं उनके एस हंसी मबाऊ हा रहे हैं, यह कोई ध्यान नहीं रह गया है कि क्या कहने पाम्य है आर क्या नहीं कहने योग्य ॥८८८॥

पिप्लातकपिजरितं रश्चितोचितविविधकुसुमनिर्युहम् ।

गात्रायाससमुत्पितवहृनिश्वासप्रकोणपदगोक्षम् ॥८८९॥

यह बूढ़ा गुलाल स पीतबस का हो गया है, नाना प्रकार के फूलों के गुच्छे फिर में लौक लिया है, आँवों के एक बाने से उठले हुए मारी निम्नबावों के कारण उसके शरीर पर पड़ा हुआ पट्यास^१ उड़ पड़ता है ॥८८९॥

सूर्यखव्यामिश्रितकरतलतामोदमुञ्जं प्रनृत्यन्तम् ।

मुहुरपि जातस्त्रसनं संदर्शितदाढ्य सीष्ठये स्वविरम् ॥८९०॥

दुही की आबाज से हाथ की टाली मिश्राकर ऊपर हाथ उठाए और से नाच रहा है, बारबार महत पड़ता है और फिर भी अरने शरीर की मजबूती और दुबस्ती को प्रदर्शित करता है ॥८९०॥

अस्तु वसन्तं सततं स्वाधीनामीष्टजनसमारभेयं ।

इति गायन्ती रमसादालिगति मदवशात्तच्छी ॥८९१॥

‘अरने अपीन रहने वाले पिय जनो के आलिङ्गनों वाला यह वसन्त हमेशा रहे यह गान क्यती हुए कोई तच्छी मसी में वेग से आलिङ्गन कर लेती है ॥८९१॥

त्रिभन्त्या श्रमरहितं शृंगवसलिलेन सादितस्तस्या ।

सीमसिन्या गणयति तुष्टारमा सुमगमात्मानम् ॥८९२॥

भम की परगाद न करक शीन परती दुरें नाथ द्वारा विचकारी (शुद्धक) के जम न मारा गया सुरङ्ग गुठ हाकर अरमे को सुमग समक रहा है ॥८९२॥

१—अर्थात् पिप्लातक, त्रिभे दरदा। आबत और कुट्टम अर्थात् त्रिभे को मिला कर बनात थे ।

भग्ने सज्जासेवी पर्वविसरेण कुलधधुवदनात् ।

धरसीलोक्तिजमौधो निर्याति केन वार्यते प्रसरन् ॥८६३॥

इस मन्त्रमहीलन के एक के अन्तर में सग्रा के मंत्र के दृष्ट करने पर कुलधधुवदनात् क मुत्र न निकले हुए यानी के बचनों के प्रसाद की दृष्टपूर्वक हीन रीत करना है । ॥८६३॥

तुल्यव्यापारगिरा सलनानां देवनप्रसक्तानाम् ।

धार्मानार्यावगमं वदनाद्विजालिका कुप्यते ॥८६४॥

जुमा जेगने में निरत, समान व्यापार और बचनों वाली सलनानाओं की कुर पर की जाती ही बताती है कि पर आका ६ और पर अन्वार्थ ॥८६४॥

अथ सहचरनिर्दिष्टे मदस्त्वलञ्चरणविघटितामिनयम् ।

वासवदत्ताप्रहिते नृत्यांती विविशुञ्चेटपी ॥८६५॥

यह बन्मराज के साथी पत्निक से दिग्याता कि वासवदत्ता क द्वारा मंत्री हुई ही के टिका मन्त्री में पते के लक्ष्मणान के कार्य विपणित अभिनय के साथ चल करती हुई प्रवेश करती है ॥८६५॥

दशिससरोजवर्तनसाम्यामिनये शरैर्मिनेतभ्ये ।

विदधाने शोरदद्यावायुधमात्र समाधिरय ॥८६६॥

यहें कमलवदन नामक अभिनय^१ दिग्गान के शर औ शय का अभिनय^२

१—यह एक प्रकार का शत्रुकरण अभिनय है जिसमें हाथों को कमल की अनुकृति पर रखा जाता है । कोहल के यथा है—

पद्मश्रीशामिणी हस्तां व्यापृच्छादिक्रियान्विता ।
आदिलटा च करौ शत्रु व्यापृच्छपरिपन्तिता ॥
भियाः पराठमुरा सन्ता सेवा कमल वर्तना ।

२—कमल में बुरा बाण के अभिषेक का शीघ्र है ही, यन् अरिण्य भावक हस्त के द्वारा शय का अभिषेक प्रकृत किया । मंगीतरथा-शर के अनुसर—

करना या उसे न करके बीर रस की दृष्टि^१ वाली उन दोनों ने आयुष्यका कर्म
आभय लेकर अभिनय किया ॥८२१॥

धलितनयनप्रवृत्ति कौतुकहृतमानसो नराधिपति ।

निजगाढ निर्भरमहो क्रोडितभनयोर्विलासिन्यो ॥८२७॥

कौतुक से हृमाये हुए बभयव ने आँसु फेर कर (बसन्त से) कहा—
‘उन दोनों विलासिनियों ने रूप कीड़ा की’ ॥८२७॥

करपीडनोपमैदव्यतिफरसमये कश्चिर्मानोऽपि ।

स्तनमंडले स्थितोऽहं स्वं पुनराकृत्य कृत्रचिरिवाप्त ॥८२८॥

अधुनान्तरयसि मामिति कोपादिय बाणवारमभिरामम ।

बहुषित्रपदन्यासैर्वल्गत्या हृदि हार उच्छलित ॥८२९॥

अपिउ आश्चर्य उन्नत करने वाले परबासों से रस्य करती हुई विलासिनी
का उच्छाल मरता हुआ हार उसकी बाली में शीघ्र से यह कथत हुए वाचन
कर रहा है कि कामुक के हाथों से बबने श्रीर मन्ने जाने की पीड़ा का अनुभव
करता हुआ भी मैं मनो पर ही पड़ा रहा और तू तो निकाल कर कहीं डाल ही
गयी अब मेरे शीघ्र में आकर पड़ती है ॥८२८-८२९॥

धृतलठा धम्मिस्त्वस्वानच्युतशेखरं दधी श्लाघ्यम् ।

अधृतपतन्निमूहं न त्वेषा मदनिकावेगी ॥८३०॥

धृतलठा न केवे अग्राराज क स्थान स गिरी हुई भाजा को अश्ले वद्व से

‘अनुष्ठापेण लम्बा स्यात् तर्जनी शिरारस्य चेत ।

अपरिभः स्यात् तदा ॥

धम्मभापगन्तैर्य सरकपादिकमसि ।

अन्योन्यप्रयविपया कर्पितशिरसा अचित् ॥

१—भारत लिखने हैं—

धृता कक्षारणोपुत्तनिष्टपुनतारस ।

उत्स्नमप्या दृष्टिस्तु र्भरा पीर रसायया ॥

बारण्ड कर भिया, लेडिन इग मन्निडा ने वेडी को त्रिममे लाग फूल का गुण्ड्या दिगडकर गिर रहा था, नहीं सप्याका ॥६००॥

स्तनभारावनतस्य प्रतनोमभ्यस्य नास्ति लेज्यंक्षा ।

इत्थमिव पादतन्तौ क्राडन्त्या नूपुरा रसत् ॥६०१॥

'स्तनों के भार से कुछ हुए बिजडून बुबले अगन मज्जमग की तुके परवार नहीं' माली उषके पीरो में लग हुए रुपुर 'त मकार चिक्तामे लग ॥६०१॥

वहति स्म यं नितम्बं कथमपि कुञ्चयेण मंदसंचारा ।

कलयति तं तुसलधु जयति मनोजमनो महिमा ॥६०२॥

उठ मनोडसा कामदप की महिमा चिक्पिनी हे जिनके बारण्ड यह अरने त्रिन निगम को कही कठिनार्द मे थीरे-थीरे मन्वार करतो हूड बारण्ड करती हे अभी उठे कर के समान हन्का ममक रही हे ॥११०२॥

उदयनसमनुज्ञात् प्रननत वसन्तकीर्षि मुदितात्मा ।

हास्यप्रयामिरामं चर्चरि तालेन तमध्ये ॥६०३॥

कलराज उदयन से आका लेकर उनका मिदूग यमन्तक भी ममप्र हाकर उन चेटियो हे बीच हूँगे और लरडा की अमिरामता क साथ नचरी रीन का आवा डुकाग गा-गाकर बार-बार नृत्य करने सया ॥६०३॥

धीरोद्धतसलितपदै ग्रीडित्वा से चिराय नरनापम ।

प्रद्योतस्य सुसाया सन्देशमथोचतु समुपगम्य ॥६०४॥

वे रोनी चर्चरि हेर तक धीरोद्धत और सलित पररिद्यतो म कौडा करके राजा के पास आकर प्रगत की पुत्री बातबरका का सन्देश काली ॥६०४॥

प्रादिशति देव देवीस्यर्षोक्ते सलज्जमन्योन्यम ।

भवतोस्य मुग्धं नहि नहि विनापयति प्रणम्य विनयेत् ॥६०५॥

दिनी अन्धेय दती हे एगना आघा कर कर दी व लरडा क साथ परन्पर एक रुपरे क पूरे का ठाक कर (बार्फी)—'नरी, मरी, प्रणाम करक ठरिनय निवेदन करती हे ॥६०५॥

मकरध्वजस्य पूजां त्वत्पादसरोजसन्निधौ कर्तुम् ।
पुण्यवीमण्डलमण्डनं समीहृते मे मनोवृत्ति ॥६०६॥

कि, हे पृथ्वीमण्डल के भूपति, आपके चरणकुमलों के सन्निध्य कामदेव की पूजा करने के लिए मेरा मन इच्छुक है ॥६०६॥

प्रियरतिभोगो मदतो दयितवसन्तो जनस्य मनसि वसन् ।
भावेन भवान्युज्यो लोकस्त्रियया तु कुसुमशरपाणि ॥६०७॥

(इस अक्षर पर) आप प्रिय रति के भोग करने वाले, मदन, कन्तवला और लोगों के मन में वास करने वाले हैं, सुतरां मन के मात्र द्वारा आप ही पूज्य हैं किन्तु लोकाचार के अनुसार फूलों के बाण वाले कामदेव की पूजा करते हैं ॥६०७॥

इति दत्त्वा सदिशं प्रकृतिवयंकालसमुचितं धान्त्वा ।
ते मदमदनाविष्टे बभूवतुर्जवनिकान्तरिते ॥६०८॥

यद गदेश देकर अपनी प्रकृति, अक्षया एवं समय के अनुसार भ्रमण करके मर और मरन में आविष्ट वे 'चेटियाँ प्रवतिका' के भीतर चली गई ॥६०८॥

अपनीवतिरस्फुरिणी ततोऽभवन्नपसुष्टा समं चेटया ।
अविदितरत्नावल्या पूजोच्चित्रवस्तुहस्तयानुगता ॥६०९॥

इसके बाद पर्व (निरस्फुरिणी) उठते ही अपनी आसन्नपरिचारिका

१ - जवनिका—रंग रस पर चमकने के अक्षर का पर्व। पादान्तर 'पक्ष-विद्या' है। निरक्षर ही यह शब्द मेरे का टैर (शरणागत) के हँकने वाले बन्धु के रूप में लोकप्रचलित या जो शार्ङ्गिक पारमात्मीयों के साथ लग गया। कुछ विद्वानों के अनुसार 'पक्षी' शब्द में हमका साधुका मात्र कर यह अनुमान है कि भारतीय राज्य पर पूर्वाधीन प्रभाव पड़ा था। पर कई पृष्ठ प्रमाणी में, आचार्य व बमदेव उपाध्याय ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास (पञ्चम संस्करण) में इसे 'जवनिका' का 'जवनिका' ही माना है और वरुण के अर्थ में हमका अनुपासना अर्थ भी दिया है, जिसमें उपर्युक्त मत पिछला हो जाता है (दे. पृ. ११३)।

(कांचनमाला) और अकाल रूप से पूजा के योग्य सामग्री हाथ में लिए रत्नावली (जगदिका) द्वारा अनुगत यज्ञपुत्री सायवन्ता उन्मिष्यतुर्ह ॥१०१॥

अथ इष्टवा सागरिकां प्रमादितां परिजनस्य निन्दित्वा ।

कांचनमालामवदन्नुपमहिषी जातसंसोभा ॥१०२॥

सागरिका को नष्टकर उसने अपने परिवारों की अक्षयपानी की निन्दा की और उन्मिष्य हीकर कांचनमाला से बोली ॥१०२॥

प्रेपस्य कन्यामेनामवरोषं त्वं गृहाण कुसुमादि ।

यावन्न भवति विषये वीक्षणयोर्भूमिनायस्य ॥१०३॥

‘इस लड़की को अन्त-पुर में मंत्र दे और इसका हाथ में कुसुम आदि न अपने हाथ में ले ले, जब तक कि यह राजा की अंगना में आने न हो ॥१०३॥

उपगम्य ततश्चेटी तामभ्यवदत्किमर्थमायाता ।

मेधाविनी विमुच्य व्रज तस्मिन्मा विलम्बस्व ॥१०४॥

तब अपनी सागरिका के पास आकर उनसे बोली—‘तुम्हीं मेधाविनी सागरिका की छोड़कर क्यों आई है ?’ ज. बही, दर मत कर ॥१०४॥

बिहिते देव्यादेशे मनसोद संनिधाय सा तस्यी ।

बिहगो सुसंगताया हस्ते निहिता मनोमबसपर्याम् ॥१०५॥

देशी का इस प्रकार आदेश होने पर वह मन में यह सोचकर फिर गई कि सागरिका की भीमे कुम्भिका के हाथ में लौट रणा है तब तक ॥१०५॥

अवलोकन्यामि तावत्तिरोहिता सिदुवात्विटपेन ।

तातान्त-पुरिकाभिर्यथाध्वंसे कि तपैतदुत नेति ॥१०६॥

किन्तु तब की दाली की आँसु में छिपकर सायवन्ता की पूजा देखनी है कि निताली के अन्त-पुर की मिनपों जिसे पूजन करनी है किता यहाँ हाता है अथवा नहीं ॥१०६॥

पिण्डीकृतमिव रागं हृच्छयमिव सञ्चविप्रहोत्कर्षम् ।

समुपेय्य वत्सराजं जगाद सा जयतु जयतु देव इति ॥६१५॥

बह (बातबदला) मानो उसका राग (स्नेह) एक स्त्रिय के रूप में (बल राब) हो गया हो, या कामदेव ही शरीर का उत्कर्ष प्राप्त कर चुका हो, ऐसे वत्सराज के समीप जाकर बोली—'देव आपकी जय हो' ॥६१५॥

परिमुक्तमपि मवत्वं शृंगाररसं मदनपबंधानोत्तम् ।

भजमानो भजमानां स्वागतवचसाभिनयं ताम्ब्वे ॥६१६॥

पहले उपभोग किए हुए भी मदनोत्सव के कारण नवीनता को प्राप्त गृहकार का उपभोग करते हुए राजा न उपभोग करती हुई उस बातबदला को स्वागत वचन से अभिनन्दन करके कहा ॥६१६॥

भर्गविसोचनपावकदाहाम्यधिका मनोमबो मन्ये ।

प्राप्स्यति तव करसङ्गमसुखविच्छसमुत्पितां पीडाम् ॥६१७॥

'मैं मानता हूँ कि कामदेव शिवजी के नेत्र की अग्नि के राह से भी अधिक तुम्हारे हाथ के सङ्गमसुख के विच्छ से उत्पन्न पीन का अनुभव प्राप्त करेगा' ॥६१७॥

अथ मन्मथमभ्यर्च्य क्षितिनाथं तदनु समधिकं तस्याम् ।

परमां मुदं बहुर्यां विप्रह्वममदनमनसि कन्यायाम् ॥६१८॥

तब बातबदला ने कामदेव की टिड बाद में राजा की अचना की । (एत हरय की देगतर) बह लण्डी (गागरिका) अतिथय आनन्वित हुई और उनके मन में राजा के रूप में शरीरकारी कामदेव प्रवेश कर गया ॥६१८॥

शृंगाररससमृद्धे सौत्वलिकं निपतिते तथा नृपती ।

सारमधुरस्फुटार्यं नम्राभार्यं पपाठ नेपथ्ये ॥६१९॥

उन समय राजा भी टकभिनान्धो (नरगी पत्र में अधिकापाओ) से भरे शृंगाररस के समुद्र में नब गया । इसी समय नैनालिक (नम्राभार्य) न मारण में ऊपे मधुर और नाच गत में पाठ किया ॥६१९॥

नयनानन्दमसङ्गितमण्डलमभिरामममृशरश्मिभिव ।

सायंतन आस्थाने क्षितिपतयस्त्वस्युदयनं द्रष्टुम् ॥६२०॥

‘सामंकाश राजसमा में बन्द की भांति नेत्रों को आनन्दित करने वाले, प्रसन्नित मरदल वाले, शर्मिताम, महाराज उदयन क दशन क लिए राज्य लीग विद्यमान हैं’ ॥६२०॥

उच्चारितेज्य नास्ति त्रिवशमतौ सत्क्षणं व्यपेतायाम् ।

उत्पन्नविस्मयरतिर्निन्दधे मरमनु रात्मजा हृदये ॥६२१॥

लकाश (बैनालिक मुग से) निगत पन वाली आया में राजा के दूतरे नाम के उच्चारित होने पर विस्मय और प्रम के भागी से भरी राजपुत्री ने हृदय में यह विचार किया ॥६२१॥

‘अथमुदयन स राजा सात सत्कृत्य मा ददौ यस्मै ।

हन्त परप्रोपणमपि न निष्कले साम्प्रतं जातम् ॥६२२॥

‘श्री यह उदयन राजा है अठक निर उच्चारणरूपक दिनात्री न मुक्त अर्धित किया है । बाद ॥ दूतरे की सेवा में इस समय विचल न हुई ॥६२२॥

यावन्न वेत्ति कश्चित्तावदितस्त्वरितमेव निर्मासि’ ।

इति नथमपि नायकतो हृत्वा च्यमुत्ससज रङ्गभुवम् ॥६२३॥

जय तक मुझे कोई नहीं देगा होता तब तक मैं जल्दी स निरल जाऊँ ।

यह कहकर किसी प्रकार नावक (उदयन) स अर्धि पचार उठने रङ्गभूमि की छोड़ दिया ॥६२३॥

कंदर्पमहमहोत्सवहृतहृदयेनविधारितोऽस्माभिः ।

संध्यातिक्रमकालं परय त्वं प्रियवयस्यक तथाहि ॥६२४॥

(समराज उदयन से अरने विष विदूतक स करा—)

‘यदन-मनोकर में हम लोग इस तरह तस्वीर ही रूप कि सम्पादन के पुत्र भाग का पता ही न रहा । विवरण्यर, देगी ॥६२४॥

सदयसदान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ् निधानायम् ।

परिपाण्डुना मुञ्जेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ॥६२५॥

यह पुरुषिणा उदयानल से क्षिपे चन्द्र को उत प्रकार सूचित करती है जैसे कोई रमणी शयन हृदय में स्थित प्रिय का पीने पके हुए मुख से सूचित करती है ॥६२५॥

देवि त्वमुत्सपथ पथान्विदधाति परय विञ्छयान् ।

मलयोऽपि लज्जिता इव शनै शनैस्तदुदरेषु लीयन्ते ॥६२६॥

देवि, वह हमारा मुख कमल कमलों की भाँतिहीन कर रहा है और भी भी लज्जाएँ जैसे बीरे-बीरे उनके ठरते में घुसे जा रहे हैं? ॥६२६॥

एवमभिधाय चित्रैश्चरणन्यासैः परिक्रमं कृत्वा ।

निष्कामिष्या ध्रुवया विनिर्ययो नायकोऽपि सह सर्वे ॥६२७॥

इस प्रकार बहुरंग शयन सुन्दर पं-बिछेपों द्वारा परिक्रमा करके जब (नेत्रपथ में) निष्कमल क शरधर की मुखा (गीति) गाई जाने लगी, नायक (उदयन) समस्त पात्रों के साथ निकल गया ॥६२७॥

अंके जात समाप्ता गीतातोषध्वनौ च विद्यन्ते ।

प्रोक्षणगुणग्रहणं नृपसूनु प्रववृत्ते कर्तुंम् ॥६२८॥

नाटक के अंके (ठेकर) के समाप्त हो जाने पर अर गीत एवं संगीत की आवाज के अन्त हो जाने पर राजकुमार ने नाटक के गुणों का बयान करना आरम्भ किया ॥६२८॥

नाट्यप्रयोगतत्त्वे मतमो न विद्यन्ति माधुर्या प्रायः ।

वाहनपानपदादिप्रामादिककार्यदसाहृदयानाम् ॥६२९॥

'हम-त्रैलोक्यी की वाहन, नयारी पैदल भिराही आदि प्रायः आदि क कार्यों में दिल लगाए रहते हैं, बुद्धियाँ प्रायः नाटक के प्रयोग क लक्ष में प्रयेय नहीं कर पाती ॥६२९॥

घ्रास्ते लिखितो ग्रामो गृहाण तं सत्प्रदेशवहुमूमिम् ।

वासय दत्त्वा वासं भवसि तत्तच्छकुरो दिवसे ॥६३०॥

इस (दान-पत्र में) गांव लिख दिया है, अच्छा प्रदेश और बहुत भूमि से सम्पन्न ठहरे गांव को लो लो । वहाँ आवास बनाओ, तब कुछ दिनों में वहाँ के ठकुर हो जाओगे ॥६३०॥

कृतजीवनसंस्यो हि स्वमपि किमर्थं करोपि विपत्तिम् ।

अपय वा यदि नेच्छसि कुर्व स्थितिं हृस्तदानेन ॥६३१॥

जब कि तुम्हारे जीवन की व्यवस्था की जा चुकी है तो क्यों व्यर्थ ही (बिचन-बुद्धि के लिए) विचारन करते हो ! अगर नहीं चाहते हो तो (नीकरी) बरत कर दो और मजदूरी (दम्नान) बरके निराह करो ॥६३१॥

न च पतयो न सन्ति च योप्यजनस्तयाप्यसंतुष्टः ।

सममानोऽपि सदायं चिरंतनत्वाभिमानेन ॥६३२॥

न तो इस किनारी है, न सोहा रणना है और न परिचारक है फिर भी करने पुराने काम के अभिमान से कदा अहन्तुष्ट रहता है ॥६३२॥

विशप्तिकोन्मुत्सर्वं दूरत एवावधारितं भवतः ।

तुष्णोऽक्रियतामस्माच्छोप्यसि कार्यं प्रतीहारात् ॥६३३॥

झिने तो दूर ही से समस्त किया कि धार (बिचन ददाने के लिए) रिश्वति देने के लिए उद्युक्त है कुन एरो, इस प्रतीहार, मे धरना कार्य मुन लो ॥६३३॥

सूर्यं कुटुम्बमध्ये भव गम्यते गोत्रपुत्रसामाजम् ।

आदाय संविभागं गृह एव स्वीयतां ययासांस्यम् ॥६३४॥

सुन लोग तो वरे कुटुम्ब में ही हो वहाँ जान हो । बहुत और बल-बल्ये के साधारण परिवार के लिए तब सार करने पर ही यह सुगन्धक लो ॥६३४॥

अभ्यन्तरव्ययाय प्रविलम्बो यो मया महाद्रुगं ।
तत्रापि तेऽनुबन्धो नो आने किं करोमीति ॥६३५॥

मीनरी लक्ष क लिप बिध महोद्ग^१ को में काम में नहीं लावा उस पर मी
तेरी यह भाग । मेरी समझ में नहीं आता क्या करूं ? ॥६३५॥

प्रथमतःरमेव कल्पितमनल्पहुलजीवनं प्रदेशस्यम् ।
अद्यापि ते न जानं प्रयोगिनां परय मय्यरताम् ॥६३६॥

मैंने सबसे पहले ही जिस प्रदेश में अधिक द्रव्यसाम होता है उसे तुम्हें
लिख दिया है आज भी तुमने उस नहीं अपनाया, अप्सरों (निवीगीजनों)
को डिस्कार्ड तो देतो ? ॥६३६॥

एवंप्रायैरनुदिनलाभोदयमोहकारिमियषने ।
फलशून्यैरनुमीवी प्रतारिता क्व क्रियत्कासम् ॥६३७॥

इस प्रकार की लाभ तथा उदय (पदवृद्धि) के मोह उत्पन्न करने वाली
व्यय की बातों से कोई सेबक कब तक उगा जा सकता है ? ॥६३७॥

१—महोद्ग—सतमुजराय के अनुसार 'महोद्गामो उद्ग' इस समास से
'उद्ग ग' का बगरी विग्रह अर्थ है ।

कर्षटादधमो द्रुगं पतनाहुत्तमश्च साः ।

उद्गद्गप निवेराश्च स ष्व द्रुग इत्यपि ॥ वाचस्पतिव्रेश

सतमुजराय 'वतम' को पञ्चम गांभी बाह्य होता है उससे बना धीर 'कषट' जो
चार मी गांभी बाह्य नगर होता है उससे अक्षर मतर को उद्गद्ग निकल जा द्रु ग
करने है । बगरीशब्द के अनुसार महाद्रु ग पाठ स्वीकृत है जिसका अर्थ ?
कारमीर में कर या बगी लमीलक्ष के सिद्ध भागों पर स्थापित 'कावची के अर्थ में
हामा है जिसका कारमीरी का मूलगत अर्थ 'विलम्ब' है । लक्ष्मी के दान बर में
इ गांधिधारी द्रुगिक, द्रुगिक, द्रुगी प्रकृति शब्द पूर्व राजनरगिणी में इ गेरा
का मार्गेत्त शब्द स्थान है । मानिसर विभिन्नमे से 'सप्तपञ्चमाहृत्य धीर
राज-नरगिणी के सिद्धे प्रयागों के आकार पर इय शब्द का अर्थ 'एक नगर'
लिगा है ।

एतद्विषये नैपुणमत्र तु भूमिपता समाश्रित्य ।
 मुत्तरक्षया वयमामो जटमत्तिसामाजिकाचितं किञ्चिन् ॥६३८॥

यहाँ इस नाट्य के विषय में राजाओं की निपुणता की दृष्टि में गण्य रूप
 म्यप मुत्तर क्षय के कारण सम्पत्ति सामाजिक (समुदाय) जनों के लिए ही उचित
 कुछ बातें हम कहते हैं ॥६३८॥

सप्ताश्रय पश्यामा शारीरन्त्रि प्रमाणपरिणाम ।
 सस्त्राविवयाज्जयेच्छो व्यस्तसमन्वैस्त्रिनिविनिष्पाद्य ॥६३९॥

'नाट्य का यह प्रयोग काल पर आश्रित रहनेवाला १ प्रयत्नों का, शरीर
 द्वारा सम्पन्न, तीनों प्रमाणों के परिमाण का' सत्य के अधिक होने के कारण
 उक्त व्यस्त और समन्वय तीन विधियों से सम्पन्न योग्य ॥६३९॥

सुकुमारविद्वक्त्रिय उपरंजकरंजितो विविधनत ।
 आदेयहेयमध्यैर्भावै सम्पात्तः प्रयोगोज्यम् ॥६४०॥

सुकुमारता से आश्रित किन्तु भी बाला, व्यक्तपूर्ण कठोर म भग्य नाना
 प्रकार की कृतिओं बाला तथा मरुत के योग्य निरन्तर एक विर उभयपक्ष
 भावों से सम्पादित है ॥६४०॥

१—अत्रि से इन दो पद्यों (६३९-६४०) में समन्वय की शैली में जीवामा का
 कथन किया है । जैसे—

मत्ताम्र (मान पर आश्रित रहने वाला)—नाट्य काल में बहुत व्यक्त सम्पन्न
 मध्यम पद्यम पर्यन्त निपाद्य रूप मान समीक्षण का वह मान आदि मत्तचित्त
 मार्गों पर आश्रित ; जीवामात्र में—रम कथित मय मरुत मरुता कस्त्रि
 रितम् इन मान धानुषीं वर आश्रित ।

वशाभा (सु प्रयत्नों वाला)—नाट्य काल में मुत्तर मान मरुत, मपुत्रावर
 सगुण और सम्पन्न मरुत ; जीवामात्र में मय और कथ मय विज्ञान
 कथम् इन बीच दोनों में विद्यते ।

शारीर (शरीर द्वारा मरुत)—नाट्य काल में तीन रूप आदि शरीर द्वारा ही
 मरुत होते हैं ; जीवामात्र काल में शरीरपत्नी ।

विद्यमान—नाट्य काल में नाट्य काल सम्पन्न ।

गम्भीर मधुर शब्दं परिरक्षितगोतविविधभंगयुतम् ।

दर्शयतो वैचित्र्यं न भ्रष्टो वादकस्य लयकाल ॥६४१॥

अितमे गम्भीर और मधुर शब्द हैं एवं बड़े हुए गीत के नानाविध मही
न युक्त हैं, एसी विचित्रता (करामत) दिखाता हुआ वादक लयकाल^१ में
लग्नित नहीं हुआ है ॥६४१॥

सांख्यवेदस्तथाप्यात्मं प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम् ।

लोकप्यात्मपदार्थेषु प्रायो नात्र व्यवस्थितम् ॥

(भरत २५।१२३)

जीवात्मा पद में अत्यन्त अनुमान और शब्द ।

सत्य के अधिक होने के कारण उत्तम—नात्र्य पद में वाद्य प्रयोग में सत्यविरह
(अपतात बरपदवतिगीत्य करबादके भवेत् सत्यम्); जीवात्मा पद में सत्य रज
तम इन तीन गुणों में सत्य को उत्तम मानते हैं ।

व्यस्य और समस्त तीन विधियों से विप्यात्न योग्य नात्र्य पद में समा
ओतोबहा गौपुष्पा इन नामों के तीन शब्दों के आकार और प्रकार विधियों से
सम्पादित; जीवात्मा पद में स्पष्ट सूत्र करबादि समप्यात्मक विराट् द्विरप्य
गम पूर्व प्राश उत्रय और विरबाय नामक व्यप्यात्मक द्वारा विप्यादित ।

मुकुमाराविद्विष्य—नात्र्य पद में गम वाद्य, गृह्य अभिनव आदि क्षेत्र
विधाओं से ओत-ओत; जीवात्मा पद में द्वादि मुकुमार विधाओं से ओत-ओत ।

उपरंजक रञ्जित—नात्र्यपद में व्यंजक या व्यंग्यपूर्ण आख्यायों से युक्त; जीवात्मा
पद में रमणीय शब्द के द्वारा और भोगादि द्वारा रञ्जित ।

विशेषपृत्ति—नात्र्यपद में भारतीय शैलियों की सङ्कती और आरमरी कृत्तियों से
युक्त; जीवात्मापद में काम कोष आदि पृत्ति या चित्तविशार से युक्त—

भादयहेयमर्भ्ये मर्षिः सम्पादितः—

नात्र्यपद में जो समस्त भाव मन में उद्भूय और विलस प्राप्त होते हैं अथात्
वर्धनकारी भावी द्वारा सम्पादित; जीवात्मापद में कोई भाव अर्थात् पदार्थ अनुद्भूत
होने के कारण प्राप्त हात है कोई प्रतिपुल हीन के कारण त्याग हाते है पूर्व
कोई मध्य अर्थात् र्क्षाशानीय मर्दित वृत्तीय हीन है ऐसे भावों द्वारा सम्पादित ।

१—लघुमास—अर्थात् वादक न ताल के बीच समय को गलत दृष्ट म नहीं
दिमाता । 'लय' वह काल है जो ताल के बीच है त मलय और विप्यात्मक भेद है

अपरित्यक्तस्यानकरसकाकुर्व्यजितस्फुटाथपदम् ।

अभिरामाविद्यान्तं पठितं निरवद्यमस्त्रिभाषयुतम् ॥६४२॥

समस्त भाष्यो में उच्चारण्य स स्वानो को न श्येन ह्यु अथात् उनको रखा करते हुए, स्व एवं जनिविकार क द्वारा व्यंजित अथ और शब्द को रूढ़ करत हुए, बिना किसी दोष क अभिराम एवं अविधान्त पाठ किया ॥६४२॥

नियमितदीपनद्यमनं द्रुतमध्यविसम्बितासंयुतम् ।

रसवत्स्वरोपपन्नं कृतसाम्यं साधुगातृमिर्गीतम् ॥६४३॥

मान वाली ने अश्ले ङ्य स गान किया, वह गान स्वर को उतार-चढ़ाव से नियमित, द्रुत, मध्य और विसम्बित, ताल जब लप से पुऽ रचय्य स्वस्व सम्या किए हुए था ॥६४३॥

प्रकृतिविशेषावस्थाप्रतिपादकश्वेदरचनसामप्रधा ।

अनुकरणमभ्यतीर्तं सिद्धिद्वयसम्पदाधारम् ॥६४४॥

स्वभाव-विशेष की अवस्था को स्पष्ट करने वाली श्वेदरचना की सामग्री में प्राप्त दोनों प्रकार की (राग्य और निष्पत्ति) सिद्धियों द्वारा अनुकरण (अर्थात् नाच) में श्रुति का भी अतिक्रमण कर लिया है ॥६४४॥

भरतसुतेर्यद्विष्टं सित्तिपतिनहुपावरोधनारीणाम् ।

मन्ये ता अपि नाट्ये शोभासन्दोहमीरुशं नापु ॥६४५॥

पठपुत्रों ने राजा नहुव क अन्तपुर की नारियों को मन्त्र का उल्लेख किया था, मैं मानता हूँ कि वे भी धरने नाच्य में शोभासन्दोह न प्राप्त कर पायीं ॥६४५॥

हीन प्रकार का होता है। बावजूद भी द्रुत को मध्य या मध्य को द्रुत एवं विलम्बित को द्रुत का मध्य चादि करके वास्तव रंग में बाधन नहीं किया।

१ ललितं अक्षुममन्वित मुग्धलनयर्षयशरत परिष्कृतम् ।

धृतिसुराविबिषवर्णं कथयः पाठे प्रशंसन्ति ॥

२—अप्रकृती राजा नहुव ने स्वर्ग में जाकर अप्सराओं द्वारा अमिमीय नाच

सुरिलसन्धिवन्धं सर्वं सुवर्णयोजितं सुमगम् ।

निपुणपरीक्षकद्वयं राजति रत्नावलीरत्नम् ॥६४६॥

यह रत्नावली कम रत्न की सुनयोजित सन्धिवन्ध से युक्त है, सुन्दर पात्र एक सुवर्ण से योजित एक निपुण परीक्षक द्वारा देखा गया है—श्रीमित हो या है ॥६४६॥

एवंविधगुणकथनप्रसंगिनि विभाषितारमनपत्तनये ।

पठतिस्मार्यामन्य स्मृतिविषयमुपागतां प्रसङ्गेन ॥६४७॥

राजपुत्र दत्तचित्त दोहर इस प्रकार गुणकथन कर ही रहे थे कि किसी ने प्रसंग से ध्यान में आईं आर्यां का पाठ किया ॥६४७॥

‘संप्रामादनपसृतिं प्रेक्षाभिजा सुमापित्ताभिरति ।

आच्छेदनामियोगं कुसविद्या राजपुत्राणाम्’ ॥६४८॥

‘संप्राम से न भागना नारद के विषय में ज्ञान, सुमापित्तों में प्रम और शिंकार त्यक्तने का अन्वय यह राजपुत्रों की कुल विद्या है’ ॥६४८॥

एतद्वस्तुनि या ते श्रुतिमार्गं नृपतिनन्दनो रसत ।

आरब्धकमाच्छेदकमाखेटकवर्णनं चक्रे ॥६४९॥

इस बात के ज्ञान तक पहुँचने पर राजपुत्र ने प्रम से प्रस्तुत नारद के उच्यते की शर्त्ता का विच्छेद करने वाला आखेट-वचन आरम्भ किया ॥६४९॥

असलक्ष्यवेधकीश्लमशवप्रजवे स्थिरासनाभ्यसनम् ।

भूमिविभागज्ञानं भवति मुगयाभियोगेन ॥६५०॥

‘आरट क अम्यात् से अंसल लक्ष्य की वेध देन का शीघ्र, पौड़ के

देया । पृथ्वी पर उगहोने अपनी राजशक्ति से उस देशने की हृदया से देशनाओं ने मार्पना की । देशनाइ हृदय के अनुरोध पर भारत मुनि ने बहुत के अन्त-पुर की सुन्दरियों को आच्छेदना देने के लिए भक्त दिया । अमी समय ने पृथ्वी पर नारद का प्रथम वृषा पैनी आख्या है ।

तत्र रत्नार म शीघ्र पर निरपल दृष्ट म बैठने का सम्पात और पूर्णता का विमायी का रुन प्रात जाने है ॥६५०॥

वहति अवन सुरगे निविठम्वितपादकटकपादाग्र ।

तिर्यग्विनिहितकायो निम्नोन्नतमप्रतो भुव परयन् ॥६५१॥

जब घोड़ा बहुत लम्बी में दौड़ने लगता है तब घन्य शिकारी खरन पर के अगले हिस्से को कभी में कम कर लगा लता है, शरीर टेढ़ा कर लेता है और पचीन को विदमता दगता हुआ ॥६५१॥

यावत्प्राणं धावत्याकुलिते दिरचक्रनिर्भीत्या ।

गोचरपतिते जीवे लघुश्रिम क्षिपति मागणं घन्य ॥६५२॥

शक्ति मर हीड़ता है और शिकारी कुत्तों के डर से अचानक, घाँटों के सामने पड़े जानवर पर सेजी से बाण छोड़ता है ॥६५२॥

मूसे स्थितस्य निमूर्तं मृगमुमिदृच्चाटप दीक्षितं निकटे ।

पातयतो मृगमुत्सुतमव्यपदेशं सुखं किमपि ॥६५३॥

शिकारिया द्वारा उद्वेगित करके निकट में पहुँचाए शीकरी मरत हुए मृग का मारते हुए, पैर के एकान्त मूल में बैठे शिकारी के मृग का वचन नहीं किया जा सकता ॥६५३॥

गीतश्रवणोत्कर्षं निरक्षततृणरुवलगर्भमुत्तरिणम् ।

उपवेष्टितमस्पन्दं स्पृहणीया एव गृह्णाति ॥६५४॥

कानों का उठा कर गीत सुनते हुए, मुँह में निरपल पड़े पत्त रुकना करते, निरपल भाग से बैठे हुए दिरन को रक्षणीय लोभ ही पकड़ा करते हैं ॥६५४॥

धावानलसंतापान्निर्वीतं गहनवोष्पोऽभिमुत्तम् ।

यो निरुणद्धि स घन्यं सूकरमेकप्रहारेण ॥६५५॥

जो शिकारी बनाविन के लताप क मारे निरस्त हुए, पनी शत्रु ही खोर कने जाल हुए वनेसे सुधर को एक ही प्रहार म विचकर लेता है पर घन्य है ॥६५५॥

घनकक्षीवरसुप्तं समुपेत्य स्वैरमकृतपदशब्दम् ।

व्याधवर एव कुष्ठे निर्जीवं ह्ये लया शशाकम् ॥१५६॥

धीरे धीरे धीरे की आगाज किए बिना ही पहुँच कर व्यापकोष्ठी ही घने पेड़
क ग्राहके में बैठे ग्यसोश का अनायाम मात्र गलता है ॥१५६॥

इति विदधति सैहमटावासेटकशक्तिलाघवरलाघाम् ।

हृदयागतमगायत्रसंगतो गोतिकामपर ॥१५७॥

इस प्रकार सिद्धमट का लड़का आपस को शक्ति में तेजी का बलान कर
ही रहा वा कि किनी ने प्रसंग में हृदय में आई इस गीतिका का गान
किया ॥१५७॥

'आस्तां व्यापाररसं प्रवर्तिता संकयापि मृगयाया' ।

अन्तरयति समनसामाहारादिक्रियोक्तिं कालम् ॥१५८॥

'शिकार के व्यापार में जो रहा है उतनी प्रसृत कथा करने को, उतने
मिनका मन रम जाता है उन्हें भोजन आदि के समय का ध्यान नहीं
रहता' ॥१५८॥

अवघायं गीतिकार्यं दानं प्रति घन नियुक्तमभियाय ।

उत्तस्यो समरमटो मंजरिकां समवसोक्यान्प्रेम्णा ॥१५९॥

गति का तात्पर्य समक कर और अपने कागपिकारी को दान देने के
लिए वह कर समरमट मंजरी का प्रेम से दोस्त हुए उठ गया हुआ ॥१५९॥

गत्याय स्वावसयं निर्वर्तितमोजनादिक्रयं ॥

मंजरिकाकृष्टमना अभिदध्यो सधिवसन्निघावेवम् ॥१६०॥

अनन्तर अपने निशात-म्हान पर जाकर भोजन आदि काय सम्पन्न कर
मंजरी क प्रति आरुप्य मन वाला वह घंघी के लपिन इस प्रकार विचार करने
लगा ॥१६०॥

अमुं गस्मितवाग्निमदुद्युक्त्रवचाग्नाहारगमनेषु ।

मुसुमप्रहरण एवो युगपदिहिवाश्रयं कथं तस्या ॥१६१॥

एक आन्देव उग्र मंजरी क अमुं, मुस्कान, दृष्टिगत, मनु एवं बक

पवन, अथर्व-विज्ञान तथा गमन म एक ही समय में ही निवास करता है १ ॥६६१॥

सुन्दोपसुन्दनाथ फणमारमभुवस्तिशोतमासृष्टे ।
अनमृतये तां सृजता द्विं दृष्टं सुरहितं तेन ॥६६२॥

मया का तिलाचमा अक्षय के निष्पाद्य करन का साथ यह मिया कि मुग्ध और उपसुन्द नाम क अमृत मारे गए लेकिन सामो की मृन्मु क लिए उक्त मञ्जरी को रचते हुए उसमें देवताओं का कौन-सा कस्याय देता है २ ॥६६२॥

सुमनोभिं परिकरिता मृगशायकतरलचक्षुपस्तस्या ।
कामोचितफलहेतुर्वेहमृतां धीर्षिना वेणी ॥६६३॥

मृगशिशु की तरल आँखों क समान आँख वाली उक्त मञ्जरी की मन्थी वेणी देहधारियों को कामोचित फल देन वाली है ॥६६३॥

कमलमिव वदनकमलं पित्रिति तस्यास्त्रिविष्टपन्नट्टा ।
सदलिकमपेतदोषं सविभ्रमं मधुमदाताम्रम ॥६६४॥

अलिङ्गपुत्र, शोभरहित, विलासपूर्ण, मधु-भरे एक साथ कमल क समान उमङ्ग मुगकमल को स्वर्ग से श्रुत हुए मायो ही वान करत है ३ ॥६६४॥

१—अर्थात् मञ्जरी के अर्द्ध अर्द्ध अक्षय-अक्षय काम धावना उत्पन्न करन में समर्थ है ।

२—तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार तिलाचमा के अक्षय करन से मुग्ध-उपसुन्द मञ्जरी के मार काम के कारण देवताओं को राहत मिली वसी प्रकार मञ्जरी के कारण जो इतना साग दशमः अक्षय (मृन्मु) तक पहुँचने हैं हमण देवताओं का क्या उपकार हो रहा है ? मुग्ध उपसुन्द की क्या महाभारत के अध्याय (१६—२१३) में बर्णित है और मञ्जरी में क्या परिष्कार में भी मिलती है ।

३—अर्थात् है कि जब पुण्य क्षीण हो जाते हैं तब प्राणी स्वर्ग में पृथ्वी पर पुनः नीर आते हैं (श्रीवे पुण्य मार्गसोऽं विरग्लि) । तात्पर्य यह कि स्वर्गव्रत होता

यः शैसेन्द्रनितम्बं सुरताप्यै सेवते तपोनिरतः ।

सूह्यति सोऽपि नितम्बं सुरताप्यै समयलोक्य तन्वग्या ॥६५॥

जो व्यक्ति सुरतापि के लिए (सुर-माष प्राप्त करने के लिए) तन्वगा में निरत होकर हिमालय के नितम्ब का सेवन करता है वह भी सुरतापि (सुरतापि की प्राप्ति) के लिए कुछ ब्राह्मी वाक्य मञ्जरी के नितम्ब की सूत्रा करता है ॥६५॥

मिकरो मध्यविभागो बाह्यो गलं करद्वयीपेतम् ।

घनमति तदपि भृगाक्षी सहस्रकरतोऽधिकं तापम ॥६६॥

उपरोक्त मध्यभाग तीन करों (कलियों) वाला है और दोहरी शीतों वाले से करों वाली है तथापि वह भृगाक्षी सहस्र करों वाले (सूत्र) से भी बढ़ कर ताप उत्पन्न करती है ॥६६॥

भी पुष्पकान् होने का कारण है। इस प्रकार इन मञ्जरी के कर्मक मरुत सुत्र का पाठ करने वाले पुष्पकान् ही होते हैं। कर्मक पर शिव प्रकार अक्षिमसूत्र बैठते हैं इसके सुत्र-कर्मक पर उसी प्रकार अक्षिम या कूर्मसुत्रक है। शिव प्रकार कर्मक शोषा कर्षण शक्ति के रहते विकसित नहीं होता उसी प्रकार उसका सुत्र भी शोष रहित है। कर्मक कापु से दिसता हुआ विश्वामसुत्र है और सुत्र श्वातसेप्य कर्षण-सुत्र है (बागवतसंस्कृत के अनुभार विद्यमान) का लक्षण—

श्लोकः स्मितं च कुतुमाभरणादियाञ्छा तद्वर्जनं च सहस्रव विमण्डनं च ।
आशुच्य कतिवचनं लपनं सग्रीभिर्निष्कारणस्मितगतेन स विप्रमः स्यात् ॥

मञ्जरी के लक्ष में 'मसु' कर्षण-उपसर्ग 'अपामसु' और कर्मक के लक्ष में मकरम्। सुत्राद्य में 'आनाद्य ईप्सु लक्षण। कर्मकलप में 'आ' उपसर्गात् 'रक्त' कर्षण-लक्षण कोचकम्।

१—'श्व श्वातसेप्य' का पद श्लोक प्राग्विक है —

'मात्सर्यमुत्सार्थं पित्राय कार्यमायां। समर्पादमिहं पशुम् ।

सन्ध्या नितम्ब्याः किमु मूषराशामुत स्वरस्वेरविलासिनीनाम् ॥

सा लम्घरा सुवदना प्रहृषिणी संव सेव तनुमध्या ।
न करोति कस्य विस्मयमिति रुचिरा मञ्जुनायिणा संव ॥६७॥

भावरा, सुवदना प्रहृषिणी तनुमध्या रुचिरा एव मञ्जुनायिणी यह
मञ्जरी किम आश्चर्य में नहीं काम करती ? ॥६७॥

अनुकुर्वत्या मल्यां तथा तथा नायकस्तथा इष्ट ।
येन ज्वरत्स्वप्यटनी घनूपं स्पृष्टा दृष्टार्थवाणेन ॥६८॥

कन्या मलाशयी का अभिनय करती और मालती ने उस उस प्रकार नायक
बन्धुवत्त का दस्ता जिसने कामदेव ने धारण घनूप की बोटि का बृद्धजनो के
लिए भी हाथ किया अथवा बृद्धजन भी काममाहित हो गए ॥६८॥

रूपं यावनधिनिवतमनंगत्रिकृत्तानि नाट्यदीप्तानि ।
शमिनामपि शमगर्थं मुष्णत्यविकल्पितं तस्या ॥६९॥

तबका पीवन-धिरित रूप और नाट्य के अन्तर पर दीप्त काम चम्पक
अधिकृत रूप से शमपानन त्रिन्द्रिय जगो ए मी शमगर्थ का अन्तरण करती
है ॥६९॥

दग्धेऽपि वपुषि भीति न विमुञ्चति नाललाहितसमृत्त्याम् ।
तत्प्रेते षसति यत प्रमदारूपेण शंवरध्वम्ना ॥७०॥

कामदेव धरने शरीर के दग्ध हो जाने पर भी नाललाहित मगगन्तु

१—यहाँ कवि से सम्परा आदि कवि दृष्टो से उमरका अभेद बनाया है । वह
सम्परा अर्थात् शोभन बदन का मुक्त बालों प्रहृषिणी अर्थात् हस या कामन्द करने
वाली तनुमध्या अर्थात् शरीर कविमाग वाली कचरा अर्थात् मनोहरा, मंथु
मदिरिणी अर्थात् मधुर बोधन वाली । सम्परा अर्थात् दृष्टो के लक्षण जैव—

‘शमनामो प्रयत्न इत्युपपत्ति युक्तं सम्परा कर्तितपम् ।

‘स या मत्तं वरुणं विभ्रममनपुता म्या ग सुवदना’ ॥

‘अथवाभि मनत्राता प्रहृषिणी’ । ‘श्री वेत्तुमध्या’ । ‘जगो मञ्जरी गिति
रुचिरा वपुर्गद’ । ‘मञ्जरी जगो च यदि मञ्जुनायिणी’ ।

शङ्कर से उतपन्न मय को नहीं छोड़ रहा है, जिस कारण यह प्रमदा का रूप धारण करके उस मञ्जरी के शरीर में निवास करता है ॥६७०॥

यदि व' परसोकमति' शृणुत श्रेयस्तपोधना मत् ।

उत्सृज्य यात तूर्णं वारवधूदूषितं स्नानम् ॥६७१॥

हे तपस्विनो, यदि तुम्हें परसोक (स्वग) की इच्छा है तो मुझसे कस्यास की बात सुनो सब कुछ छोड़ कर शीघ्र ही बेरसामनों से झलकृत स्नान पर पहुँच जाओ ॥६७१॥

चिरमपि विकल्प्य निरिच्छतिरियमेव स्थाप्यते न गतिरन्या ।

सन्निर्माणे जाता स्वावप्यमया कणा विघेरणव ॥६७२॥

हेर तक सोच-विचार करके हम यह निश्चय करते हैं, कोई दूसरी गति नहीं है कि विधाता ने उस मञ्जरी के निर्माण में शाक्यव के बने हुए कणों को परमाणु बनाया है ॥६७२॥

भासाद्य समुच्छ्रायं तस्या स्तनयुगलमविहृतप्रसरम् ।

क्षपयति यज्जनमेवं क' सप्रक्षयति तद्विवेकवान्पतितम ॥६७३॥

उपति प्राप्त करके अनुदिन बढ़ते हुए उसके दोनों स्तन वा लोगों को बुलत किए जा रहे हैं उन्हें पतित होने पर कोई विवेकशील व्यक्ति कैसे गर्स करेगा ? ॥६७३॥

स कथं न स्पृहणीयो विपयरतैस्तन्निस्तम्बविन्यास ।

शान्तात्मनापि विहितं विश्वसृजा गौरव्यं यस्य ॥६७४॥

विपयारत लोगों द्वारा उनके स्तन की गढ़न क्या न शहरणीय हो

१—यहाँ कवि ने श्रमामोहि क अनुवार मञ्जरी क स्तनयुगल म उम शत्रु कर्मकारी की तुलना की है जो कर्मण उन्नति प्राप्त करके लोगों को पीकित करता है और जब उमका कलम या पदपुति हो जाती है तब उमे कोई भी शरत तक नहीं करता । उमी प्रकार हमी स्तन पीन और उन्नत होकर लोगों को पीकित करते हैं किन्तु पतित होन पर उन्हें कोई शरत न करेगा ।

त्रिभुवनेषु (नन्देन ह्यस्य नन्दे) को उन्मत्त स्वर - १ दिव्य १ स्वर ह्यस्य किं है । १६३॥

स्मरणाद्यस्योत्पत्तिं सुमनस इषवोऽभिलाषया शक्ति ।

सोऽपि व्यंगं प्रहरति घातुरहो चित्रमाचरितम् ॥६३५॥

स्वयं न ही त्रिभुवी उन्मत्त हो जाती है पूरा त्रिभुव वाप है और त्रिभुवी शक्ति अबशास्त्रों पर आभिन रती है यह भी उन्मत्त होकर प्रहार करता है, विधाता का काय किनना आश्चर्यजन है ॥६३५॥

तिष्ठन्स्वल्पे इष्ट्वा सारं जगतस्तदंगनारत्नम् ।

मष्टपञ्चावधानो भवति ब्रह्मा य सनिर्वेद ॥६३६॥

दुर्गे को जाने दो, ब्रह्मा भी भी सत्कार के गारभूत उग घग्ना रत का देलकर वेशध्वन में ध्यान के मष्ट हो जाने स आनी निष्ठा प्राप्त कर। सगेंगे ॥६३६॥

यदि पर्यति तां शवस्तदपररामासमागमाद्भिमुगं ।

निन्दति मूर्धनि सोमं स्मराग्निसंधुक्षणं शरीरं च ॥६३७॥

यदि त्रिभुवी उसे देन लें तब उसके अतिरिक्त दुर्गरी रमणी के समागम से विमुग होकर ध्यान मन्त्र पर वर्तमान, कामाग्नि को बड़ा। बाल पर तथा कामाग्नि के राक्षक लक्ष्मण ध्यान शरीर को निश करने गगन ॥६३७॥

केशव इह मनिहितं सापि मनोहारिण्यसम्पन्ना ।

तद्वक्षारभ्यवनमूर्धं वयमुज्जति सैषवी शंभाम् ॥६३८॥

यह मन्त्री भी मनोहर रूप वाली है उगका यय भी मन्त्री (शामा) के कारण ध्यानमूर्ध है किन्तु स्थिति में केशव (विष्णु) गतिरिहा दोकर है (उग मन्त्री को देन कर उगक) मन्त्री (मन्त्री) शान के धन। धन का गति साग कर मन्त्र है ? । १३८॥

उत्पत्तिं न पहिनानां वयमात्मनि मागुतं गत्रद्रगति ।

यप्रवक्ष्यतां गृणां विमा त्रिधायागमुपगम ॥६३९॥

दुर्गी को जाने जान मन्त्री यह मन्त्री गति-उगता के कोकर है ।

नहीं उद्यम करती ? क्योंकि इसमें नवीन अक्षरया वाले पुस्तकों के क्रियायोग के बिना ही उपसर्ग दिखाए देते हैं । ॥६७६॥

श्रुतिकुवलयमीक्षणतां कुवलयतां वा विलोचनं यायात् ।
हरिणद्वयो यदि न स्यात्कनकौज्ज्वलकेसरं मध्ये ॥६८०॥

यदि सोने के समान पीतवर्ण का केशुर समूह न होता तो उक्त हरिणाक्षी का कर्णस्य नोसोत्पन्न नभ कहा जाने लगता और नेत्र कुवलय कहा जाने लगता ॥६८०॥

लसनास्वदतुल्यसया पुण्या अपि तदुपभोगविरहेण ।
गच्छन्ति शोपमनिधं प्रकृतिद्वयवर्जिता स्वस्या ॥६८१॥

लसनाएँ तो उसकी बराबरी नहीं कर पाती और पुण्या तबका उपभोग नहीं प्राप्त करते, इस प्रकार दोनों निरन्तर (चिन्ता से) क्षीय होने लगे हैं और जो न खी हैं न पुण्या अथात् जो दिग्भे (नपुं संक) हैं वे ही स्वल्प हैं ॥६८१॥

दुषु क्षयोर्न वृत्त रसाभास्पदमेति तत्त्वबोधरयो ।
भी धृत्वामलमूर्ति मध्ये हारं जनस्य मुक्त ॥६८२॥

दुष्ट आभरण वाले उसके स्तन का व्यवहार प्रत्या के योग्य नहीं है क्योंकि वे दोनों स्तन अमलमूर्ति (निर्मल) हार को बीच में करके लोगों का नाश करते हैं ॥६८२॥

१—इस अर्थात् के दो अर्थ हैं पहला क्रियायोग अर्थात् समागत रूप अथवा पुरुष उपसर्ग अर्थात् बीजा । दूसरा 'क्रियायोग' अर्थात् अणुअणु अथवा अणुअणु, अणु 'उपसर्ग' अर्थात् उपसर्ग । यहाँ क्लृप्ताय अर्थ है कि उपसर्ग क्रिया से मिलकर नहीं रहता बल्कि उसके साथ ही रहता है । एक पुराणा श्लोक है—

'उपसर्गाः क्रियायोग पाणिनेरिति सम्मतम् ।
निष्क्रियाऽपि तत्रारतिः शोपसर्गाः सदा क्वम् ॥

भूमण्डलेऽथ सकले नात परमपरमदमुतं किञ्चित् ।

नो जाता यदपार्यां कृषोदरा घातराष्ट्रयातापि ॥६८३॥

घरे पृष्ठी मण्डल में इसका पद कर कोई आश्चर्य नहीं है कि पतलपु (दुर्बोपन) को प्राप्त करने में कुछ ठगर वाली यह बताया (नयीं बताया पत्रको सं रहित) नहीं हुए (परिहार यह कि पतलपु बताया इस के समान गमन करने वाली बताया बताया क्या क्या) ॥६८३॥

कृष एव मध्यदेशस्तन्व्या नाहार्यमण्डनं योऽनुम् ।

शक्त इति कृतं विधिना रोमावलिभूषणं सहजम् ॥६८४॥

इस तन्वी का कृष मध्य भाग आहार्य (आहार्य का धारण क यम्य) आभूषण धारण करने में समय नहीं है इस लिए आराधी में उसके मध्य भाग में स्वाभाविक आभूषण के रूप में रोमावलि उन्नत कर दी ॥६८४॥

सार्वभोज्यर ईक्षणयुगलस्माधोरता भ्रुवोम ग ।

तन्वग्या वसमोऽज्जयसि जगतदपि निश्रेयम् ॥६८५॥

उक्त कृषादी का अर्थ हमारा जानता रहता है आगे कभी रहती है तथा मीने में मद्य है इस तरह का उक्तका एक है तथापि यह सार जगत् पर विजय प्राप्त करती है ॥६८५॥

बहुतु नितम्बं स्यूतो रशनां हारं च कुचयुगं पीनम् ।

तद्वाहुमणालिन्मो सापार्यं वटकयोजनममुतम् ॥६८६॥

उक्तका रूप नितम्ब रशना को और पीन मनपुग हर भी धारण करे किन्तु उक्तकी बातों की मूल-विषयों का अनुपपन्न बटकयोजन (बटक धारण रूप का जगन बटकन में परत क मध्यभाग में एक धारणा) उक्त नहीं ॥६८६॥

बहुलोपायानिगा गुणविषये सततमाहितप्राप्ति ।

बन्धिनं स्थापयति बधे बरमोरविग्रहणं मुहुनेव ॥६८७॥

पुत्र म उपयो को जनन बन्धन गुणों के विषय में उक्तका मीने रगत

वाली वह करमीर अपने कोमल शरीर से ही बहानों को बग में रलती है ॥६८०॥

इति तत्स्तुतिमुखरमुखे राजसुते मीनफेनुनाकुलिते ।
समुपागता प्रगल्भा मंजरिकाशोदिता दूती ॥६८१॥

इस प्रकार काम पीण्डि राजपुत्र मञ्जरी की स्तुति कर ही रहा था कि मञ्जरी की मेजी हुई ढीठ दूती पहुँची ॥६८१॥

सा सप्रणति पुरतः सुमनस्ताम्बूलपटलकं निदधे ।
व्यज्ञापयञ्च तदनु स्वावसरे सहृषरीकार्यम् ॥६८२॥

उधने प्रणति-पुपक आगे पान और फूल की टोकरी रख ही, कम्परात् अक्षर पाकर सहृषरी ने मञ्जरी के काम को निवेदन किया ॥६८२॥

मुररिपुनामिसरोरुहमवतंसीकतु मोहते मूढा ।
नक्षत्रराजमंडसमिच्छति वियतः समावातुम् ॥६८३॥

मूढ मञ्जरी विष्णु के नामि-कम्प को अपने कान का अवतल बनाना चाहती है, आकाश से चन्द्रमण्डल को ग्रहण करना चाहती है ॥६८३॥

निश्चेतनामिकांक्षति पायुषं त्रिदिवसघनामशनम् ।
अमिलपति शयनमुष्ये नवचन्दनपल्लावस्तरणे ॥६८४॥

बड़ बड़ स्वर्ग पाशों के मौजन अमृत की इच्छा करती है, उष्य में नये चन्दन के पल्लवों के बिज्ञान को गत्र बनाना चाहती है ॥६८४॥

विदधाति पारिजातकसुमनोनिपू हृधारणश्रद्धाम् ।
दुष्यवसिता जिघृक्षति नारायणवक्षसो रत्नम् ॥६८५॥

पारिजात (म्यगीय वृक्ष) के फूलों के गुणों के धारण श्रद्धाम् में भद्रा रगती है कष्टकर व्यक्तियों में लगी बड़ नारायण के वक्ष पर रहने वाले कौस्तुभ हस्त का ग्रहण करना चाहती है ॥६८५॥

अनियतपुत्र्यस्युरया पापा वयमन्यया क्व हीनकुला ।

क्व च पूयमिन्द्रकल्या अनल्पमनसो गुणाभरणा ॥६६३॥

कुछ करने लाठ पुरुषों के हाथ ही स्त्रियों के योग्य, पारिवर्ण एवं नीच कुल वाली इन कदा और इन्द्रकल्या नई मन काण एवं गुणों से मूर्ति अत्र हीन कदा ॥६६३॥

दृष्पूकृते प्रकृतिरियं तस्य तु दग्धात्मजमन कापि ।

अगणितयुक्तायुक्तो लगमति चेतो यदस्थाने ॥६६४॥

उक्त सारण स्वभाव वाले जल कामदेव की पर और प्रकृति है कि उचित और अनुचित का विचार किए बिना ही विष को अस्थान में लगा देता है ॥६६४॥

या हसति सरोजवतीं रसान्विता सहजरागरक्तेति ।

ध्यानधिय आत्मवृत्ति निन्दत्येकत्र पुत्र्य आसक्त्याम् ॥६६५॥

जो मञ्जरी आन में श्रेष्ठि पुत्र होकर तदत्र अनुपम शक्तिनी सरोजिनी का उदात्त करती है, एक पुत्र्य (मन इव) में आसक्त योगी की वृत्ति को निन्दा करती है ॥६६५॥

स्निग्धति नाभिनन्दति जम्भयतेनापि सपियो धाराम् ।

पंचाक्षर्युतगति नानर्यंकरमणसंगता स्तौति ॥६६६॥

मैत्रिणे जन्मो म भी स्निग्ध रदन माती मृद की पाण को बद अभिनन्दन नही करती, अनर्यक राग स नही मगन होने वाली पांच कौटिमी वाली पृथ कीदा को पर मणसा नही करती ॥६६६॥

न स्तीति चन्दनसता भुजंगपरिवेष्टिता रसाद्र्ति ।

न शृणोति वीर्यमानो स्वप्नेष्वपि मदनमूर्च्छिता मत्तीम् ॥६६७॥

भुजङ्गी से परिवेष्टित चन्दनसता को रस म अङ्ग मान कर स्तुति नही करती, वीर्यमूर्च्छित मधुर्मी की वीरि मग्न में भी नहीं सुनती ॥६६७॥

विद्वेषि करणमभ्ये रसनां ताम्बूलरागरक्तेति ।

शंसति मतिं मुमुक्षोरविशिष्टां शश्वपाखणपुष्पेषु ॥६६८॥

ताम्बूल के राग से पुक समझ कर इन्द्रियों में रचना से विद्वेष करती है । शश्व वृषभ, चरकजातीक पुष्पों में भेदभाव न रखने वाली मुमुक्षु जन की बुद्धि की मद सराहना करती है ॥६६८॥

नो बहु मनुते रम्मां नलकूबरमभिसृतेति कामार्ता ।

गर्हति च देवगणिकामनुरक्तामुवशीं पुरुरवसि ॥६६९॥

जो काम्यार्ता हाकर भी नलकूबर का अभिलक्षण करने वाली रम्मा को

१—विद्वेष मन्त्र मुमुक्षु माची माझण गौ हाथी कुचे चाखडल खादि में कोई भय-भाव नहीं रहता जब मजरी का भी काम्यत्त्व के अनुसार कर्मादिबलीक पुष्पों में समाप्त कर से अनुसंग है । लक्ष्य—

मृदुचपलसुरालः क्षेमलांगः सुषेपः सकलगुण निधानं चित्तहारी शशोऽसौ ।
वन्ति मधुरवाणीं शूर्यगीतानुरक्ष्ये द्विजसुरसुखसुखे वंसुसुखे/ पलाट्यः ॥

धीजितो गायनरूपेण वारीसत्परः सुरी
पदंगुलशरीररश्च धीमार्श्च शशस्य मतः ॥

उदरच्छटिकशास्यः शीमगायी वतांसः

कमलरुचिरदेहः कष्टघादी वृषोऽसौ ।

असमरूप्यबुद्धिः तीव्रशः धीविलासो

बहुगुणबहुतेजा दीर्घनेत्रोऽमिमानी ॥

उपखरपरो नित्यं तीव्रशः श्लेष्यास्तथा

दशगुलशरीरस्तु मेदस्वी वृषभो मतः ।

उदरच्छटिकशास्यो दीर्घकृतापरोष्ठो

दशनबदननत्रे तस्य दीर्घोऽपि नाभिः ॥

सुम्भरश्च शपणश्च मिक्षपादी च निर्भयः ।

द्वादशगुललिङ्गस्तु वृषोऽपि हयो मताः ॥

मौनमायता स्मरदीपित

बहुमान अर्पित नहीं करती, पुरुषरा में अनुरक्त प्रेमगणि का उभरी की निम्ना करती है ॥१६६६॥

हरति मनो नो ह्यते रंजयति न रज्यते कदाचिन्पि ।

गृह्णाति चित्रचरितैस्सकृत्तिमिगृह्यते न बह्वामि ॥१०००॥

आ (दूधरो के) मन को हर लेती है पर (दुम्हारे प्रति आसक्त होने के कारण किसी के द्वारा उभका मन) हरया नहीं किया जाता, दूधरो का प्रथम करती है पर सुद कभी भी प्रथम नरो हाती धरन मरज निषेण्य विलस्य द्वारा दूधरो को बयीभूत कर लेती है पर दूधरो के बहुत म उभरारो द्वारा भी स्वयं बयीभूत नहीं होती ॥१०००॥

प्रेममयीवामाति प्रेम तु नाम्नीव केवलं वेति ।

कन्दकिंठा भवति रते रसमोगसुखं शृणोति लोकात् ॥१००१॥

प्रेममयी वैसी प्रतीत होती है लेकिन प्रेम को केवल नाम म हा बनती है । यिद्वान में रानासिन हो जाती है पर लोकी म रतिभाग के सुख को धरय करती है ॥१००१॥

कुष्ठे विविक्तचाटून् घिल्पविशेषेण न तु रसावेयात् ।

धनमिमा मदनरजामाकल्पकवेदना समावहति ॥१००२॥

कला के एक मर हान क कारण पत्रिय विग धरन बाजती है न कि प्रेम क आशय स शोभती है उस काम सम्बन्धी रोगों का पता नहीं चलन कामधरय-कामधर्यो विद्वानो (कल्पनादा) की धरन का अनुभव करती है ॥१००२॥

बातिवार्जवरहिता स्फुरतोरवरमेथ्य चन्द्रलेखव ।

हृत्पथनपतिमाहात्म्या प्रवृत्तिरिव रक्षासां पन्पु ॥१००३॥

धरती बासा धरं धरजवरहित (धरन् पत्र) धरन्धर की मर्ति बासा (मोमर धरत की उभ बासी) धरन्धरमा श्री मरगी धरर (धरन्धर पत्र में धरन्धर धरन्धर) की धरन्धर श्रुति हो उठी है, गल्धरन्धर धरन्धर की धरन्धर क

समान बितने बनवति (कुबेर, पक्ष में बनवानों) के माहात्म्य को हरस्य कर लिया है ॥१००३॥

नरनाथ किं ब्रवीमि त्रिपुरान्तकनयनवाहृदग्धोऽपि ।

दुःसाध्यसाधनग्रहमुत्सृजति न पाप्मुसुमास्त्र ॥१००४॥

हे नरनाथ, क्या बहुत, त्रिपुर के नाशक शिवजी की नेत्राम्नि से बला भी पायी कामदेव दुःसाध्य काय के साधन की हठकारिता का त्याग नहीं करता ॥१००४॥

त्वदर्शनावकाशं संप्राप्य यतो दुरत्तमा तेन ।

धिरसम्मूढकोपेन प्रारब्धा सापि हन्तुमिषुघाटे ॥१००५॥

कित्त करवा तुम्हारे दर्शन का अवसर पाकर बहुत दिनों से उन्मिष कोप बाला वह दुरत्तमा उसे भी बाधों की बर्षा से मारने लगा है ॥१००५॥

भवहेलयैव भवता संस्पृष्टा येन वेत्रदण्डेन ।

जातं स एव तस्या भ्रान्त्यभवमागण. प्रथमं ॥१००६॥

घायने किन्तु भी ही त्रिष बत्र दण्ड से उसे शर्य कर दिया है वही उसके शिव काम देव का पहला पाप ही गया है ॥१००६॥

विज्ञानार्जितदर्पो निमृत्तं हृसितं समानधिस्पामि ।

त्वयि सत्कृद्यं सख्या विसंपुले नाट्यनिर्माणे ॥१००७॥

(नाट्य के प्रसंग में) जब वह तुम्हारी और स्थिर हृषि से देखने लगी तब अभिनव का काम विसंपुले गड़बड़ हो गया और नाट्यकला में उलझी बराबर करने वाली औरों ने उसके विज्ञान द्वारा अभिनव रूप का उपहास दिया ॥१००७॥

भवषीर्याचार्यस्य भरतोदितदीपकरणसम्मूताम् ।

विस्तारितं प्रयोगस्त्वदवस्थितियांघ्र्यां तन्व्या ॥१००८॥

भरतमुनि का बनान हुए दोरी के करन में उन्नत भास्वाचार्य के तीन की

परवाह न करक तुम टारे रहो इस शब्दा म छवी ने छरने अभिनय का बिलार कर दिया ॥१००॥

भग्नेऽपि प्रेक्षणके तदन्तरभूमिकाथयावस्या ।

गृह एव निरवसान वितनोति न नापघर्मेण ॥१००॥

नाथ के समाप्त हो जान पर भी उसके बाद की भूमिका की अवस्थाओं को निरन्तर धर ही पर समझ करती है न कि अभिनय या अनुकरण करती है ॥१००॥

ध्यायत एकं पुरुषं परमात्मबिदं शशंस मा न पुरा ।

ताननुकुर्वते सैव ध्यायन्ती त्वां महापुरुषम् ॥१०१॥

वो पहले एक पुरुष (अधिष्ठानभूत) का ध्यान करत हुए अज्ञानी शक्ति की प्रशंसा नहीं करती थी वही अब महान् पुरुष तुमको ध्यान करती हुई उन (ब्रह्मज्ञानियों) का अनुकरण करती है ॥१०१॥

गतमेवमेवमासितमालोक्तिमेवमेवमालपितम् ।

इति विस्मृतान्यकार्यास्मरति कृशाङ्गी स्वदीयलीलानाम् ॥१०१॥

इस प्रकार वे चलते हैं, इस प्रकार घूमते हैं, इस प्रकार बोलते हैं इस प्रकार तुम्हारी सीमाओं को यह कृशाङ्गी तब कुछ भूल कर भ्रम करती रहती है ॥१०१॥

नमस्कृतो वराको रतिरमणो रमण एव किं तेन ।

अनिच्छोऽपि न बुद्धो विदग्धविहितासु सुरतगोठीषु ॥१०१॥

नमस्कृत वराको अनेका हीन है, रतिरमण कामदेव माम मात्र का ही रमण है, उल्लेख क्या होगा ? अनिच्छ भी विदग्ध-बुद्धोचित सुरतगोठियों में पवित्र नहीं है ॥१०१॥

न जयन्तोऽनन्तगुणो न कुमारो मारकमणोज्याह्य ।

येन समर्ता नयामस्तमिति सखी बहति मामसं क्लेशम् ॥१०१॥

अनन्त अनन्त गुणशाली नहीं है एवं कुमार (कार्तिकेय) भी मारकिया म

अनपिह है, तब इस राजपुत्र को गुलना किये करें, इस प्रकार सली मन से
कोश पारस करती है ॥१११॥

भागतभागच्छन्तं पुरतः पार्श्वे प्रसन्नमय कुपितम् ।

परपति भवन्तमेव सङ्कल्पनिवधितं बाला ॥१०१४॥

कमी आय हुए कमी आते हुए, कमी सामने, कमी बगल में, कमी प्रसन्न
और कमी कुपित अपने सङ्कल्प से उपस्थापित एक ही छापको, वह बाला देखा
करती है ॥११४॥

उच्यं शान्तो हृद्यः सुमगः सुखदो मनोहरो रमणः ।

इष्टः स्वामी दयितः प्राणेशः केशिहरणनिपुण इति ॥१०१५॥

मुक्तान्यसमारम्भा वरत्तनुरनुपप्लुतेन विधेयः ।

जपति समीहितसिद्धयै त्वद्वाद्दशनामकं महास्तोत्रम् ॥१०१६॥

वह परतनु अन्य समस्त चेष्याओं को त्वाव करके इष्टसिद्धि के लिए
एकाम विध से 'उच्यं शान्त, हृद्य, सुमग, सुखद, मनोहरण रमण, इष्ट, स्वामी
दयित, प्राणेश और केशिहरणनिपुण' इन वादनामों वाले महास्तन का जप
करती रहती है ॥११५,११६॥

तामेव गच्छ यस्यामासज्य विलम्बितोऽसि गतमज्यः ।

येसामियतीमलमलमेतैरघुना यथानुनयै ॥१०१७॥

'निर्लज्ज, उठी के पाठ जाधी, जितमे प्राप्त होकर देर कर रहे हो, इस
समय इतनी देर तक इन यथ अनुनयी से कोई काम नहीं ॥११७॥

वदयामि सापराधं क्रोधस्फुरदधरमञ्चितभ्रूणम् ।

इति विदयाति सुमध्या हृदयेन मनोरथावृत्तिम् ॥१०१८॥

वह अग्यातपु के अपराधी उभरो कहूँगे, इस प्रकार वह शोभन मध्यभाग
वाणी अपने हृदय में मनोरथों को दुरागी रहती है ॥११८॥

उत्सहते न द्रष्टुं प्रतिविम्बितमाननं कुतः शयिनम् ।

का संख्या मृणाले क्षिपति भुजी सर्वतो व्यपिता ॥१०१६॥

एष्य मे प्रतिविम्बित अरन मुग को दर देगन का उत्सह नही करती, 'निर पन्ना की बात क्या ? व्यपित बर अरनी बर बायो छोर पेंकती छती है, निर मृणाली पर अरनी बरें स्थापित करेगी दर दर नहीं उठती ॥१ १६॥

दूरे बदलीदण्डा ज्वोर्गपि न सहते समारसेपम् ।

करसम्पर्काद्भिमुत्ती विश्राम्यति पल्लवञ्चित विद्धम् ॥१०२०॥

बद अरने ऊदण्डो का मी सम्पर्क सहन नहीं कर पाती ऐसा स्थिति में अरने के दण्डों की बात तो दूर रहे, बर जब कि अरने हाथ फ सम्पर्क में मी विमुग रहती है ता 'पल्लवों पर विश्राम करती है' दर बरत सत्य विद्ध है ॥१०२०॥

अयि मञ्जरि सेव त्वं विदग्धजनमण्डिना पुरी सेव ।

कुसुमायुधं स एव भ्यसनं कुत एतदायातम् ॥१०२१॥

'अयि मञ्जरि, तू बही है, विदग्धजनो स मान्य नगरी बही है अमदेन बही है, फिर यह भ्यसन कहाँ स आया है ? ॥१ २१॥

यस्यां काम कृपणो रागाकृष्टिस्तृणोपनप्रहया ।

सापि गता भूमिमिमां जीवन्त्या नेत्यते किमिह ॥१०२२॥

जिनका कामरूप कृपण है (अर्थात् कुछ भी नहीं कर सकता) जिसका (किसी के प्रति) राग में आकर्षण रूप क कर्मन (गुण्य) है पर भी तू इस अरस्या का पतुंघ जुडी है संसार में जीवन्त प्राणी क्या नहीं देखा ॥१ २ ॥

अभियोगशिक्षितानामशिक्षितानां च मदनचेष्टानाम् ।

सुतनु विरोपग्रहणे सामर्थ्यं तद्विदामेव ॥१०२३॥

हे सुतनु मदनरूपक कोणी दुरे (अर्थात् शक्ति) और सम्पत्ति मदन-

चेष्टाओं में अन्तर समझने की सामर्थ्य उन्हें ही होती है जो उन चेष्टाओं को जानने वाले होते हैं ॥१०२१॥

व्यययत्रपि सञ्छाय परिजनचिन्ताकरोऽपि रमणीय ।

घ्राघत्ते त्वयि लक्ष्मीमभिनवरागाग्रयो राग ॥१०२४॥

यह नये राग से उत्पन्न तेरा शोभ कष्ट देता हुआ भी कान्तिमान लगता है, परिजनों को चिन्तित करने पर भी रमणीय लगता है तथा तुझमें अधिक शोभा का आधान करता है ॥१०२४॥

एक स एव जातो भुवनेऽस्मिन्नसमसायकस्पर्धो ।

तेन शशिविन्वफलके स्वजन्मना श्लेष्ठितं निजं नाम १०२५॥

इस ससार में कामदेव के साथ स्पर्धा करने वाला एक ही यह पैदा हुआ है। उक्त मुद्गम्ल में चन्द्रमण्डल के फलके पर अपना नाम सिरलबाला है ॥१०२५॥

पादस्तेन शलील विन्यस्ता सुभगमानिनां मूर्ध्नि ।

सौभाग्ययथा कुसुमं घनपतिसूनो कदर्थितं तेन ॥१०२६॥

घरने की सुभग मानने वाली के तिर पर उठने परस राग दिशा है तथा उसने घनपति कुबेर के पुत्र नक्तकूबर के शीभाग्य के मण्डपुत्र को मसल डाला है ॥१०२६॥

मरयञ्जनपद्मुदि सम्पादितकपटघाटसङ्घटमा ।

त्वमपि विलासिनि नीता गतिमियती येन सुभगेन ॥१०२७॥

हे विलासिनि, जिस सुभग पुरुष ने लोगों को ठग लेने में समर्थ बुद्धि वाली एवं कपटपूर्ण शिवशक्तियों की पटना रखने वाली तुझे भी इस अयत्ना तक पहुँचा दिया है ॥१०२७॥

सद्दद तस्य स्थानं यतामहे कार्यसाधनायागु ।

कुर्वत एव हि यत्नं निपञ्जना कृच्छ्रसाध्यरोगेऽपि ॥१०२८॥

जो उतथा निराश स्थान बना, हम कार्य-क्रिद्धि के लिए अत्यधिक

कीर्णिय करेगे, क्योंकि वेच लोग कष्टसाध्य रोग में भी बल करते ही हैं ॥१०२८॥

इति गदिते सख्या सा तदभिमुत्तं वक्षुपी समुमील्य ।

वितरति कृन्द्धेण चिराद्भ्राविषमविलप्टहु कारम् ॥१०२९॥

इस प्रकार धनी के रहने पर उठने उठनी ओर धरिं गाल कर, देर तक चुन रह कर कष्ट के साथ पोड़ा 'हुं' कर कर उधर किया ॥१०२९॥

का पुष्यार्थसमीहा शोतयत शवरी शशाङ्कस्य ।

तपयतां भुवमखिलां सनिलमुषां कोऽभिमोक्षितो साम ॥१०३०॥

अत्र जो रात्रि को उद्भासित करता है, इसमें उसे विष पुष्यार्थ को प्राप्त करने की इच्छा है ! धारी भली जो। तुम करने बाल मेंपो का वीन इष्ट साम है ॥१०३०॥

मण्डमितु विमदुदयति पुच्छूतधनुर्बिनेव फलवांध्याम् ।

अनपेक्षितात्मकार्यं परहितकरणग्रहं सखा सहज ॥१०३१॥

बिना पल की इच्छा रखे भी आकाश की शीमा बढ़ाने के लिए इन्द्र धनुष उदय हुआ है, इस प्रकार करने काप की अपेक्षा न करके दूसरे का मत्ता करने का आग्रह लगनों को स्वाभाविक होता है ॥१०३१॥

प्रायेण यस्मिदानं तत्सेवनमुपशमाय रोगाणाम् ।

स्मरमान्छं तु यदुत्थं तदेव रासु भेपजं यतस्तस्य ॥१०३२॥

प्रायः करके रागों का जो निदान (आदि कारण) हाका है उसके सेवन से व रोग दूर हो जाते हैं इसलिए जिसे स्मरमाय का रोग उत्पन्न हुआ है वही उठकी दया है ॥१०३२॥

तेन स्पृहयति सुतनुस्त्यत्पादयुगात्तरेणुसङ्गस्ये ।

आशीर्विपयोपेते सम्भोगसुरोदये तु नावीशा ॥१०३३॥

इसलिए वह सुतनु दूसरे भाग-लगनों की रीत व लगन की गृह करनी

हे, उठे लोगों के आधीबाद से मिलने वाले सम्मोग-सुख को आकांचा नहीं है ॥१०३३॥

प्रमदमुपैति मयूरी परमं शब्देन चारिवाहस्य ।

अनिमिपविलोकितेन प्राप्नोति भयी कृत्तार्थतामेव ॥१०३४॥

मेघ का गजन मुनकर मोरनी परम आनन्द का अनुभव करती है तथा मछली (धिम को) एक एक से देखते रहने से हवाभवा प्राप्त करती है ॥१०३५॥

न वृथास्तुतिमुखरतया न च युष्मल्लोभनानियोगेन ।

विदधामि तद्गुणाख्यां स्वरूपमात्रप्रज्ञेन ॥१०३५॥

न ही वृथा स्तुति करने में मुन्कर होने के कारण अथवा न ही दुर्भ्रं हुमाने के अनिनिवेश से मछली के गुणों का बयान कर रही हूँ, बल्कि उसके स्वभावादि से परिचय बयान के लिए उसके गुणों का बयान कर रही हूँ ॥१०३६॥

सद्भाववदमूले स्मिष्ठदृष्टिन्नूविकारपल्लविते ।

सेवन्ते हृद्यरसा रागतरी मञ्जर्यं धन्या ॥१०३६॥

भाग्यवान् क्षीम सद्भाव रूप सुन्द मूल के ऊपर प्रतिष्ठित स्मिष्ठ, दृष्टि, भूबिलास रूप पञ्चव से समन्वित अनुराग-भूव को हृद्यरसालिनी मञ्जरी का सेवन करते हैं ॥१०३७॥

तिष्ठन्तु सद्गसङ्गो विलोकित्वा येन भगिति वरगाम्नी ।

सत्यान्यो युवतिजनं प्रतिभाति मनुष्यरूपेण ॥१०३७॥

उसके शत्रुओं का विषे सम्यक् हुआ है उसकी यात तो रहन हीजिए, जिसने उठ वरगामी का सिद्ध देग किया है उसे दूसरी स्त्रियाँ पुरुष के आकार की मर्त्यि होती हैं ॥१०३८॥

सकृदपि यैरनुभूतस्वत्तनुपरिरम्भसुखरसास्वादा ।

विद्धि नराधिप तेषां दूरीभूतं प्रजापार्यम् ॥१०३८॥

द नराधिप एक बार भी जिहोंने उसके शरीर के आनिद्रनसुख के रस का आनन्द किया है जानी कि व प्रजा का बाध विपुल छाड़ बटे ॥१०३९॥

आत्मा का सत्त्व तस्या विषयग्रहदुर्बलेषु पुर्येषु ।

यस्या विलासजालमपतितं शकुनायते कपिन ॥१०३६॥

असके विनाशो ऊँ छन्दे में पढ़ करिष्य (मांगल्यशास्त्र के रवधिया) पत्नी की मांछि आचरण करन लगत है विषयो में पड़ रहने में पुनः पुनः को बर मूँ ही समझती है ॥१०३६॥

दग्ध्वा पुनरपि दग्धा नूनमनङ्गो हरेण सां सन्वोम् ।

द्यूवापि येन विवृषि निराकुल स्वस्यवृत्तेन ॥१०४०॥

शिवजी के द्वारा खत किया गया मी अनङ्ग निरन्तर ही फिर से (गुदरे द्वारा) बना लिया गया, अथ कारण उक्त तन्वी को खत कर मी निगनुस रहत हो ॥१०४०॥

अथ विरजोर्का तस्यामृत्लासितमानसं च नृपती च ।

करिषदगामद्गीति स्मृतिसङ्गतिमागतां प्रसङ्गेन ॥१०४१॥

अनन्तर उक्त वृत्ती के बह कर पुन हो अन पर श्री राज के अल्पन्त प्रसन्न होन पर विभी में प्रसंग्य बाद आर गीति का गान किया ॥१०४१॥

अन्योन्यगाढरागप्रयत्नाकृतचित्तजमनामू नोः ।

कालात्ययो मनागपि समागमानन्दविम्वर ॥१०४२॥

'तदप्य श्रीर तन्वी के परस्पर गाढ़े स्नेह के कारण अत्यन्त के प्रसन्न हो जाने पर योई गी समय का अतिरम्य समगम के आनन्द में शिव करन वाला होता है' ॥१०४२॥

युष्वा सिंहमटनुव प्रियाप्रिया प्रातिमान्मिमतप्रयमम् ।

निजगाढ धारुमापिणि गातिरन्वा समयसम्मतं कथितम् ॥१०४३॥

उक्त गीति को सुन कर प्रसन्न अत्यन्त छन्दे शिव का शिव उक्त वृत्ती में प्रसन्न हो रूप शेष—दे पावन-शिव, गीति का म धारुमापिणि का बड़ी है ॥१०४३॥

अग्निन्द्य सा स्येति प्रययौ प्रमदावती निजं भयनम् ।

अकरोन्व विदितकार्या युक्तेष्वसरे मनोरमां गणिकाम् ॥१०४४॥

प्रथम वह वृत्ती उसे 'ठपा' बहन से अग्निन्दन करके अपने पर पत्नी गई और ठीक समय में उस सुन्दरी गणिका को विहायित किया ॥१०४४॥

अथ सा कृतसंकल्पा सत्वरमावाप रुचिरविच्छ्रित्तम् ।

आसाद्य नृपनिघान्तं विवेद्य सञ्चारिकासहिता ॥१०४५॥

अनन्तर उस मञ्जरी ने मन में निश्चय कर लीम ही थोड़ा रुचिर साङ्गिहार कर, राजा के घर पहुँच कर पहुँचाने वाली वृत्ती के साथ प्रवेश किया ॥१०४५॥

विहितनमस्कृति रासनमधितृष्ठी मायकेन निर्दिष्टम् ।

पुष्टे च देहकुशले विनयान्वितमभ्यघादूती ॥१०४६॥

नमस्कार करके नायक के द्वारा निर्दिष्ट आसन पर वह बैठी, फिर नायक ने शरीर का आरोग्य पूछा । वह वृत्ती ने विनय-पूर्वक कहा ॥१०४६॥

थीमन्नद्य श्रेये सम्पन्ना गुरुजनाशिपोऽप्या ।

अथ मदनं प्रसन्नो माम्मघयैरद्य परिणतं फलत ॥१०४७॥

'भीमन्, आज गुरुजनों के समस्त आशीर्वाद सचक हुए, आज कामदेव प्रथम ही एवं हमारे माग्य पत्नीभूत हुए ॥१०४७॥

अथ जननी प्रसूता सौभाग्यगुणोदयोऽथ निष्पात ।

त्वयि वितरति सस्नेहं निरामयप्रश्नभारतो तस्या ॥१०४८॥

आज माता का पैदा करना ठरल हुआ, आज सौभाग्य गुण का उदय हुआ, अब कि आने के ठरके निरामय के प्रश्न की शशी की वितरण किया ॥१०४८॥

उत्कलिकाकुलमनसामुद्रित्तरिरसयामिभूतानाम् ।

धौदासोन्यं भजतां समा यतो भवति नामिका यूनाम् ॥१०४९॥

उत्कलिका कुल म आकुल मन बाने, शत्रु रसलम्भा से अमिभूत दोन पर

अग्ने कवच में उद्यवीन होते हुए मुक्क-मुक्तियों के बीच भी नारी उपस्थित रहती है वह मूछ है ॥१०४॥

धृतसुमनःशरधनुषा सहायथास्तिष्ठ दपितया सार्धम् ।

यामो वयं न राजति विजनस्यितिमिदुनसन्निभाबपर ॥१०५०॥

कुसुमशर कामदेव की धारण की हुई मिरवमा के साथ नहीं ठहरो हम जाते हैं, क्योंकि एकान्त में बीड़ी जीड़ियों के तन्देन वृत्तों आरमी अन्ध्या नहीं लगता ॥१०५०॥

एषा नृस्यमान्ता मदनेनायासितातिसुकुमारा ।

त्वमपि रतिसमरगूर स्वर्गभुवः सन्तु कृणुलाय ॥१०५१॥

यह मञ्जरी नृत्य करने से घनी हुई, मदन द्वारा आयातित एवं अति सुकुमार है, तुम भी रतिपुत्र के शूर हो, ऐसा तुम्हारा कम्पार करें ॥१०५१॥

यावथावदशक्ति प्रथयति सलनाहि मोहनाक्रान्ता ।

तावतावत्पुंसामुत्साहः पल्लयान्समुत्सृजति ॥१०५२॥

मुरत के आनन्द से अमिमूल लजना जैसे-जैसे धरती असमर्थता प्रकट करती है वैसे-वैसे पुंसों का उत्साह पल्लयित होना रहता है ॥१०५२॥

इति शून्योद्धतवेरमनि हरति शनैः सहजर्मशुभं सस्मिन् ।

दक्षितसाध्यसनरजा जगाद सा किं कुरोमीति १०५३॥

जब भागाबाध रिलपुत्र गुना ही गी। तब उन्होंने जब मह्य मान स धीरे से शंभु की इयाया तब मय और लज्जा प्रकट करके गणिका में कहा—'तुम्हें क्या करते हो ॥१०५३॥

अपि मुग्धे सञ्जियते पुरपार्थ सनुष्टयस्य यस्वारम् ।

इति निगदितसम्भरः स्मरविधुरित आवतान रतिवन्हम् ॥१०५४॥

'अपि मुग्ध, यह (माध) करता है जो शायी पुरपार्थों का घर है' यह सुसुरासे हुए वह कर स्मर पीड़ित उक्त राजपुत्र न रतिपुत्र आरम्भ कर दिया ॥१०५४॥

नानासुरतविशेषैराराध्य प्रकारं भुक्तसवस्वम् ।
गणिकासौ राजसुतं त्वगस्त्रिषु मुमोच नातिचिरात् ॥१०५५॥

फिर उस गणिका ने नाना प्रकार के सुरतविशेषों से आराधना करके उसका सबस्व ढँठ लिया और बिना विलम्ब उसे मांस-हड्डी रोप करके छाड़ दिया ॥१०५५॥

तद्य मयोपदिष्टं कामिजनार्थाप्तिकारणं तेन ।
महतीं समृद्धिमेष्यसि कामुकसोकाहृतेन विरोधेन ॥१०५६॥

तो जोकि मैंम कामुक जनों के धन लेने का उपाय बताया है उससे कम्युक जनों के हरण किए हुए धन से ए महती समृद्धि प्राप्त करेगी ॥१०५६॥

इत्युपदेशश्रवणप्रबोधं सुष्टा जगाम धाम स्वम् ।
मालत्यपगतमोहा विकरालापादवन्दनां कृत्वा ॥१०५७॥

इस प्रकार के उपदेश के भवण से उत्पन्न प्रबोध से सन्तुष्ट एवं मोहरहित मालती विकराला की शरणवन्दना करके अपने घर गई ॥१०५७॥

काव्यमिदं यं शृणुते सम्यक्काव्यार्थपालनेनासी ।
नो वक्ष्यते कदाचिद्विद्वेश्याधूर्त्तकुट्टनोभिरिति ॥१०५८॥

इस काव्य को जो व्यक्ति का काव्यार्थ का सम्यक् प्रकार से पालन करते हुए (रख्य करत हुए) भण्य करता है वह कभी विद्व, वैश्या, धूर्त्त एवं कुट्टनी न बोलना नहीं आता ॥१०५८॥

